पंचास्तिकाय प्रवचन प्रथम भाग

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर,इन्दौर

Online Version : 001

Contents

प्रकाशकीय 3

गाथा १ 4

गाथा २ 24

गाथा ३ 28

गाथा ४ 32

गाथा ५ 36

गाथा ६ 42

गाथा ७ 46

गाथा ८ 50

गाथा ९ 55

गाथा १० 59

गाथा ११ 62

गाथा १२ 66

गाथा १३ 70

गाथा १४ 74

गाथा १५ 78

गाथा १६ 82

गाथा १७ 87

गाथा १८ 87

गाथा १९ 88

गाथा २० 89

गाथा २१ 90

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक **'पंचास्तिकाय प्रवचन प्रथम भाग'** अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी की सरल शब्दों व व्यावहारिक शैली में रचित पुस्तक है एवं सामान्य श्रोता/पाठक कोशीघ्र ग्राह्य हो जाती है। इसमें **गाथा १** से **गाथा २१** तक के प्रवचन प्रस्तुत हैं ।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला सदर मेरठ द्वारा पूज्य वर्णीजी के साहित्य प्रकाशन का गुरूतर कार्य किया गया है। ये ग्रन्थ भविष्य में सदैव उपलब्ध रहें व नई पीढ़ी आधुनिकतम तकनीक (कम्प्यूटर आदि) के माध्यम से इसे पढ़ व समझ सकें इस हेतु उक्त ग्रन्थ सहित पूज्य वर्णीजी के अन्य ग्रन्थों को http://www.sahjanandvarnishastra.org/ वेबसाइड पर रखा गया है। यदि कोई महानुभाव इस ग्रन्थ को पुन: प्रकाशित कराना चाहता है, तो वह यह कंप्यूटर कॉपी प्राप्त करने हेतु संपर्क करे । इसी ग्रन्थ की PDF फाइल http://is.gd/varniji पर प्राप्त की जा सकती है।

इस कार्य को सम्पादित करने में **श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास गांधीनगर** इन्दौर का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु श्री **संजयजी शाह, सीएटल, अमेरिका** के द्वारा रु. 2000/- प्राप्त हुए, तदर्थ हम इनके आभारी हैं। ग्रन्थ के टंकण कार्य में **श्रीमती मनोरमाजी, गांधीनगर, इन्दौर** का सहयोग रहा है — हम इनके आभारी हैं। प्रूफ चेक का कार्य मेरे द्वारा ही किया गया है।

सुधीजन इसे पढ़कर इसमें यदि कोई अशुद्धि रह गई हो तो हमें सूचित करे ताकि अगले संस्करण (वर्जन) में त्रुटि का परिमार्जन किया जा सके।

विनीत

विकास छाबड़ा
53, मल्हारगंज मेनरोड़
इन्दौर (म०प्र०)
Phone-0731-2410880, 9753414796
Email-vikasnd@gmail.com
www.jainkosh.org

पंचास्तिकाय प्रवचन प्रथम भाग

प्रवक्ता अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज

गाथा १

इंदसदवंदियाणं तिहुवणहिदमधुरविसदवक्काणं।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं।।१।।

जिनेन्द्रनमस्कार—जो धर्मपुंज शत इन्द्रों द्वारा वंदित हैं अर्थात् भवनवासी देवों के ४० इन्द्र, व्यन्तर देवों के ३२ इन्द्र, कल्पवासी देवों के २४ इन्द्र, ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र सूर्य और चन्द्र, मनुष्यों का एक इन्द्र चक्रवर्ती और तिर्यञ्चों में एक इन्द्र सिंह ऐसे १०० इन्द्रों के द्वारा जो वंदित हैं, वंदनीय हैं, जिनका उपदेश तीन लोक का हित करने वाला है जो कि मधुर एवं स्पष्ट है, जिनमें अनन्तानन्त गुणों का अनन्त विकास है जो संसार से निवृत्त हो गए हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार हो।

ग्रन्थवक्तव्य से धर्मपालन का सम्बन्ध—यह ग्रन्थ पञ्चास्तिकाय है। पूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव ने इस ग्रन्थ की रचना की है। इसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश इन ५ अस्तिकायों का स्वरूप मुख्यता से बताया है और फिर प्रसंग पाकर संक्षेप में जो अस्तिकाय नहीं है ऐसे कालद्रव्य का भी वर्णन किया है। वस्तु के स्वरूप को बताने का प्रयोजन है मोह हटे, रागद्वेष दूर हो। उसका साधक है वस्तुस्वरूप का यथार्थ ज्ञान। जो पुरुष वस्तु का यथार्थ ज्ञान करके उपेक्षा करने योग्य परद्रव्यों से उपेक्षा करते हैं वे विकारभाव से निवृत्त होकर शाश्वत आनन्द का अनुभव करते हैं।

निज को निज पर को पर जानने का लाभ—निज को निज, पर को पर जानने से यह लाभ होता है कि चूंकि पर भिन्न हैं, अहित हैं, असार हैं, पर ही हैं, सो उनसे तो उपेक्षा भाव कर लेना चाहिये, और निज जो अन्तस्तत्त्व है उसमें रुचि जगाना चाहिये। इनसे आत्मा में अनादि से ही बसा हुआ जो सहज आनन्द है और सहज चैतन्य है उसका प्रकाश होता है। जिसके अपने ज्ञान दर्शन का पूर्ण प्रकाश हुआ है वह पुरुष परमात्मा कहलाता है। वह अनन्तानन्त गुणों में विश्राम लिये हुए रहता है। प्रभु सर्वज्ञ, वीतराग व कृतकृत्य हैं तभी हम आपके लिये आदर्श भगवान हैं। भगवान यदि हम आप लोगों के भक्ति को निहारकर तारने लग जायें, बातचीत करने लग जायें, तो भगवान का फिर आदर्श न रहेगा। फिर तो एक प्रकार के भगवान व्यापारी ही कहलाये। यहाँ के छोटे मोटे व्यापारी छोटी सीमा में विकल्प करते हैं, भगवान एक सबसे बड़े व्यापारी कहलाने लगे, जो जगत को, लोक को रचे, विधि बनाए। परन्तु प्रभु किसी पर नाराज होकर उसका विनाश करते नहीं आते। प्रभु का स्वरूप है—सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन। प्रभु समस्त ज्ञेयों के जाननहार हैं, फिर भी आत्मीय आनन्दरस में लीन रहा करते हैं। यही है प्रभु स्वरूप। यह विकास हमारा आपका सबका हो सकता है, और ऐसा ही करें सो ही बुद्धिमानी है।

व्यर्थ का समागम व्यामोह—यह जगत का समागम प्रथम तो भिन्न है, अहित है, असार है, उसकी आकांक्षा न करो। फिर दूसरी बात यह है कि यह समागम आपके मानने से आता भी तो नहीं है, आप तो केवल अपना भाव भर बनाते हैं। उस भाव के बनाने के बाद निमित्त नैमित्तिक योग से यह सब कार्य परम्परा चलती रहती है। समागम इष्ट मिले इसमें निमित्त कारण है पुण्य कर्म का उदय। उस पुण्य कर्म का उदय आये तब ही ना, जबकि उसका बंध हो। पुण्यकर्म का बंध हो उसका निमित्त कारण है शुभ परिणाम। शुभ परिणामों का कर्ता यह जीव था। निमित्त परम्परा में तो उसका कारण भाव बना। लेकिन भाव साक्षात् धन को कमा ले, इकट्ठा कर ले सो नहीं होता। आत्मा के भावों का धन आदिक वैभव में

स्पर्श भी नहीं होता। जो पुरुष अपने स्वरूप को सम्हालते हैं वे ऐसे परमात्मतत्त्व का विकास प्राप्त करते हैं।

स्याद्वादपद्धति से सम्यक् परिज्ञान—वस्तुस्वरूप का सम्यक् परिज्ञान स्याद्वादपद्धति से ही हो सकता है। जैन दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता है वस्तु के स्वरूप का यथार्थ प्रतिपादन। स्वरूप प्रतिपादन की यथार्थता का कारण है स्याद्वाद का आश्रय लेना। स्याद्वाद का अर्थ है अपेक्षावाद। अर्थात् अपेक्षा लगाकर स्वरूप को कहना जैसे एक पुरुष का परिचय दिया जाय तो कहते हैं कि यह अमुक का पिता है, अमुक का पुत्र है, अमुक का मामा है, अमुक का भांजा है, उस एक ही आदमी में पिता पुत्र आदिक अनेक रिश्ते बताए गए और वह सब बताना अपेक्षा लगाकर हुआ है। यदि कोई अपेक्षा को तो छोड़ दे और कहे कि यह पिता है, थोड़ी देर में कहे कि यह पुत्र है तो यह विवाद का विषय बन सकता है। कदाचित् कोई कहे कि यह पुरुष पिता भी है, पुत्र भी है, तो ऐसा कहने से बीच में अपेक्षा आ गयी, मन में अपेक्षा लगाने से विवाद मिट गया, पर अपेक्षा तो जरा भी न लगाये या अपेक्षा उस सबकी एक ही लगाए तो विवाद हो जायेगा। जैसे मानो मोहन सोहन का पिता है और यह कहें कि यह सोहन का पिता है और पुत्र भी है, तो विवाद हो गया कि नहीं। जितने धर्म बताये जायें उतनी ही अपेक्षा लगायी जाती हैं तब यथार्थ ज्ञात होता है।

स्याद्वादपद्धति का संक्षिप्त विवरण—अपेक्षा लगाकर धर्म लगाये तो यह स्याद्वाद की शैली कर सही रूप होता है। जैसे कहें कि यह सोहन का पिता ही है तो बात सही हो गयी। दूसरे का नाम लेकर बता दिया कि उसका पुत्र ही है, बात सही हो गयी। अपेक्षा लगाकर बात को दृढ़ता से कहना उसका नाम स्याद्वाद है जैसे जीव द्रव्यदृष्टि से नित्य ही है। कोई यदि कह दे कि जीव द्रव्यदृष्टि से नित्य भी है तो गलत हो जायेगा। क्योंकि इसका अर्थ यह निकलेगा कि द्रव्यदृष्टि से नित्य भी है और अनित्य भी है। द्रव्यदृष्टि कहते हैं—पदार्थ का जो सहज स्वत: सिद्ध स्वरूप है, जिससे रचा हुआ है उस स्वभाव पर दृष्टि देने को। जैसे दृष्टान्त में मिट्टी का घड़ा ले लो। यह मोटा दृष्टान्त दिया जा रहा है। दशा की मोटी दृष्टि से घड़े के पर्याय की दृष्टि करना सो पर्याय दृष्टि है। यह मिट्टी की दृष्टि से सदा रहेगी, घड़े की दृष्टि से सदा न रहेगी। यों ही द्रव्य दृष्टि से जीव सदा रहेगा, पर्याय की मुख्यता की दृष्टि का जीव सदा न रहेगा। तब द्रव्यदृष्टि से जीव नित्य भी है यह कहना गलत है। द्रव्यदृष्टि से जीव नित्य ही है, यह कहना सही है। और यह जीव पर्यायदृष्टि से अनित्य ही है यह भी सही है तो अपेक्षा लगाकर स्वरूप को बताना स्याद्वाद है।

स्याद्वादपद्धति में विरोधपरिहार—स्याद्वाद को शैली में वस्तुस्वरूप का यथार्थ परिज्ञान होता है। यहाँ यह स्पष्ट ज्ञान में आया कि यह स्याद्वादसिद्धांत समस्त एकांतवादियों का विरोध मिटाने में समर्थ है। एक प्रसिद्ध दृष्टांत है। चार अन्धे किसी हाथी का स्वरूप समझने गये। एक अन्धे के हाथ में सूंड आयी वह तो सोचता है कि हाथी मूसल की तरह होता है, एक के हाथ में पैर आये सो वह कहता है कि हाथी खम्भे की तरह होता है। एक के हाथ में पेट आया तो वह सोचता है कि हाथी ढोल की तरह होता है। एक के हाथ में कान आये तो वह सोचता है कि हाथी सूप की तरह होता है। अब वे आपस में एक दूसरे से झगड़ने लगे। एक सूझता पुरुष आया, उसने पूछा—तुम क्यों लड़ रहे हो? उन्होंने बताया कि हाथी के स्वरूप पर यहाँ विवाद हो रहा है हम लोगों में। अच्छा, अपनी-अपनी बात बताओ तो सही। सबने अपनी-अपनी बात बतायी। तो वह सूझता पुरुष बोलता है कि तुम सब सही कह रहे हो, झगड़ा न करो। हाथी के कान देखो तो उसकी दृष्टि से सूप जैसा होता है, सूंड पकड़ो तो उसकी दृष्टि से मूसल जैसा होता है। अरे तुम्हारी सब बातों को मिलाकर जो हो सो हाथी है। ऐसे ही जानो स्याद्वाद की पद्धति सब एकान्त धर्मों का विवाद मिटाने वाली है।

विरुद्ध अभिमत में भी अविरोध की दृष्टि—बौद्ध लोग कहते हैं कि जीव अनित्य ही है, वेदान्ती कहते हैं कि जीव अपरिणामी नित्य ही है। उन सबका समाधान जैन दर्शन देता है। दृष्टियां लगाकर वस्तुस्वरूप के प्रतिपादन की विशेषता जैन दर्शन में है। कैसा यह सर्वपालक दर्शन है।

ज्ञान की अप्रसिद्धि का कारण—जैन दर्शन में चरित्र की आधारशिला सत्य व अहिंसा है जो सारे विश्व को शान्त और सुखी करने में समर्थ है। लेकिन समय का प्रभाव है कि भले पदार्थ को भला न देखकर उसकी बुराई ही नजर आती है, और चूंकि इस जैन दर्शन के मानने वाले जो लोग है, कषाय तो जैसी सबमें बसी है, प्राय: वैसी उनमें भी बसी है। अन्याय और बेईमानी तो जैसे अन्य जन करते हैं वैसे ही ये भी करते हैं क्योंकि कषायें पड़ी हुई हैं। लेकिन जो इस जैन शासन को मानते हैं यदि औरों की ही तरह बेईमानी दगा आदि खोटा कुछ काम करने लगे तो जैन दर्शन के मानने वालों की बदनामी शीघ्र होगी, क्योंकि इनका दर्शन इनका सिद्धांत पवित्र है। इससे जरा भी चलित होने पर धर्म की अप्रभावना जल्दी हो जाती है, एक यह भी कारण है जिससे कि यथार्थ दर्शन लोगों को दुर्गम हो गया है।

जैनदर्शन की वर्तमान अख्याति के अन्य कारण—दूसरा कारण यह है जैनदर्शन की अप्रसिद्धि का कि यह जिस उपाय पर चलाना चाहता है प्रत्येक जीव को विषय कषाय की वासना बनी हुई है अत: ये ज्ञान ध्यान के नियम कठिन मालूम होते हैं, इस कठिनाई के कारण भी लोगों ने इस दर्शन का साथ छोड़ दिया है, आदिक अनेक कारण हैं जिससे आज इसकी प्रभावना, मान्यता, प्रसिद्धि इस परिचित दुनिया में कम है किन्तु जैन दर्शन तो वस्तु के स्वरूप को बताता है, जो वस्तु में धर्म हैं उस ही को जिनेन्द्रदेव ने बताया है इस कारण नाम जैन धर्म पड़ गया, किन्तु वास्तव में उसका नाम है वस्तुधर्म। जब वस्तु कभी मिट नहीं सकती, वस्तुधर्म भी कभी मिट नहीं सकता। जैसे कोई पुरुष अपने आपके आत्मा को मना करे कि मैं नहीं हूं अरे वही तो मैं हूं मैं आत्मा नहीं हूं ऐसी जानकारी जिसमें हो रही है, ऐसी कल्पना जिसमें उठ रही है वही तो आत्मा है। तो जैसे अपने आपकी मनाई करने से अपने आपका अभाव नहीं हो जाता ऐसे ही वस्तुधर्म अथवा जैनदर्शन की मनाई करने से वस्तुधर्म अथवा जैनदर्शन समाप्त नहीं हो जाता। चाहे उसके जानने मानने वाले यहाँ एक भी न रहें, फिर भी वस्तुधर्म सदा ही अच्छा चलता है।

यथार्थ ज्ञान का प्रताप—अपेक्षावाद करके जो यह सिद्धांत पद्धति चलती है उस पद्धति से वस्तुस्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है और उस ज्ञान के फल में मोह हटना, कषाय हटना, यह संभव हो जाता है। भला थोड़ी देर को आप अपना ऐसा उपयोग बना लें कि यह देह भी मैं नहीं हूं। यह देह जड़ है मैं आत्मा चेतन हूं। इस देह को मैं छोड़ दूंगा। देह यहाँ पड़ा रह जायगा। लोग इसे गाड़ देंगे, जला देंगे या पशुपक्षी चौथ लेंगे। यह मैं आत्मा सुरक्षित हूं, परिपूर्ण हूं, इस देह से अत्यन्त न्यारा हूं, और जब देह से भी न्यारा हूं तो अन्य वैभव परिजन आदिक से भी प्रकट न्यारा हूं, मेरा कोई भी काम किसी पर में नहीं जाता। यह मैं आत्मा अपने आपके भाव बनाया करता हूं। भावों के अनुसार ही सुख दु:ख आनन्द भोगता हूं। मेरा किसी भी पर पदार्थ से सम्बन्ध नहीं है। मैं किसी पर का कर्ता नहीं, भोक्ता नहीं। यों अपने एकत्व की रचना जीव में है।

मोहविनाश की यथार्थज्ञानसाध्यता—इस लोक में सग्रन्थदशा में वर्तमान आवश्यकताओं के अनुकूल किसी से राग करना ही पड़ता रहेगा लेकिन मोह करना ही पड़ेगा यह लाजमी नहीं है। भीतर में ज्ञान जगे और वस्तु की स्वतन्त्रता का सही पता हो जाय, ये वस्तु अपने स्वरूप से अपने में ही है, मैं सत् अपने स्वरूप से अपने में ही हूं जहां ऐसा भान हो फिर यह विकल्प कैसे हो सकता है कि यह पदार्थ मेरा है। मोह मिट गया समझिये। लोग शान्ति के लिए अधिकाधिक सर्व प्रकार के प्रयत्न कर रहे हैं। यह एक सम्यग्ज्ञान का प्रयत्न नहीं किया गया। यह ज्ञान पुरुषार्थ इतना ऊँचा प्रयत्न है कि इस जीव का कल्याण केवल इस पुरुषार्थ पर निर्भर है।

यथार्थ ज्ञान होने पर ही अज्ञान की अज्ञानता का प्रकाश—दुनिया की बढ़ाई, दुनिया की इज्जत अथवा किसी प्रकार की स्थिति बने, पर ये सारी बातें इस जीव को कुछ भी साथ न देंगी। ये तो सब स्वप्न जैसी बातें हैं। जैसे स्वप्न में देखी हुई बातें सच होती हैं, जगने पर पता चलता है ओह ! वह तो सब झूठ था, ऐसे ही मोह के स्वप्न में सारी बातें यहाँ सच हो रही हैं यह मेरी स्त्री है, यह मेरा वैभव है, ये मेरे परिजन हैं, पर जब ज्ञान जगता है तो ये सारी बातें झूठ मालूम पड़ने लगती हैं। अज्ञान अवस्था में यह मानता था कि यह मेरा वैभव है, ये मेरे परिजन हैं इत्यादि। पर जब ज्ञान जगा, अज्ञान निद्रा का भंग हुआ तो वस्तु के स्वरूप का यथार्थ परिचय हो जाता है। ओह ! यह मैं अनादि काल से ऐसी भूल ही भूल करता चला आया। यह सब झूठ है। तो सम्यग्ज्ञान में यह चमत्कार है कि मोह को मिटा दे। मोह न रहे तो समझो कि हम धर्मपालन कर रहे हैं।

वस्तुस्वरूप के यथार्थ प्रतिपादन का ध्येय—इस ग्रंथ के रचयिता पूज्य श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य देव ने आत्मपवित्रता व जीवलोक पर करुणा के ध्येय से ऐसे ग्रंथ को रचा है अत: इस ग्रंथ में पदार्थों के स्वरूप का व्याख्यान किया गया है क्योंकि समस्त दु:खों के दूर होने के उपाय में यह सर्वप्रथम आवश्यक है कि हम पदार्थों का स्वरूप ठीक-ठीक जान लें। जितने भी क्लेश हैं वे सब मोह के हैं। मोह का अर्थ है एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ से सम्बन्ध मानना। संबन्ध मानने की कल्पना ही तब मिट सकती है जब यह ध्यान आ जाय कि किसी पदार्थ का दूसरे पदार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है और वास्तव में प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूप में है। इस कारण किसी का किसी अन्य से सम्बन्ध है ही नहीं। इस बात का परिज्ञान हो तो मोह मिटे। मोह मिटे तो क्लेश मिटे। इस कारण इस ग्रंथ में पदार्थों की व्याख्या की जावेगी।

सम्यक् व्याख्यान में निश्चय व व्यवहार का प्रवेश—यह व्याख्या दो नय के आधीन रहेगी। निश्चयनय और व्यवहारनय, क्योंकि दोनों नयों के आधार से किया हुआ व्याख्यान ही सम्यग्ज्ञान की निर्मल ज्योति को विकसित करने में समर्थ है। जैसे इस देह में विराजमान भी आत्मा को यह आत्मा है, यों केवल आत्मा को ही निरखना सो तो निश्चय का काम है और देह का आत्मा का सम्बन्ध देखना व्यवहार का काम है। अच्छा यह बताओ कि यह मेरा आत्मा देह के बंधन में है या नहीं। अब इसका उत्तर जानने के लिए दोनों नयों का आश्रय करना होगा। यदि हम निश्चय करके एकान्त करके यह जान लें कि आत्मा में आत्मा है, आत्मा देह में नहीं है। यद्यपि यह बात सही है आत्मा अपने स्वरूप में है देह में नहीं है। फिर भी एकान्त मान लिया जाये कि किसी भी प्रकार इस आत्मा का देह से सम्बन्ध नहीं है तो यह बात सत्य न होगी, क्योंकि यह आत्मा देह में बंधा है, देह से बाहर कहीं जा नहीं पा रहा है। देह को छोड़कर आगे भी जायगा तो किसी देह में बंधेगा और सुख दु:ख कल्पनाजाल जितने भी क्लेश हैं वे सब इस देह के सम्बन्ध से हैं, तो देह के बंधन से कैसे मुकरा जाय। अथवा अब यही मान लिया पहिले से ही सर्वथा कि मैं देह से सर्वथा ही न्यारा हूं तो अब मोक्ष की क्या अटकी है? जब यह बन्धन में है ही नहीं तो मोक्ष किसका कराना है और मोक्षमार्ग भी क्या हुआ? इस कारण मात्र व्यवहार से या मात्र निश्चय के आश्रय से किया हुआ व्याख्यान सम्यग्ज्ञान का निर्मल प्रकाश नहीं फैला सकता है। केवल व्यवहारनय का आश्रय करके इस सम्बन्ध में यह जाना जायगा कि यह आत्मा देह में बंधा है, देह में बद्ध है, और साक्षात् करके यह मान लिया जाय कि आत्मा देह में फंसा ही है इसके विपरीत, जैसा कि आत्मा स्वतन्त्र है अपने स्वरूप में है, न माना जाय तो इस परिचय में भी मुक्ति का मार्ग नहीं मिल सकता है। यह मैं आत्मा तो देह से बंधा हूं, देह के परतन्त्र हूं, देह जो कराये सो करना पड़ता है तो इस परतंत्रता के भाव में मुक्ति का उत्साह कहां रहा। जिसे मुक्त करना है, जब तक उसकी असलियत न जान ली जाय, उसका एकत्व न परिचय में आये तो मुक्ति कैसे मिल सकती है। तो इस ग्रंथ में सम्यग्ज्ञान के निर्मल प्रकाश को उत्पन्न करने वाला व्याख्यान दो नयों के आश्रय से किया जायगा।

समय का स्वरूप—पदार्थ का नाम समय है। समय के मायने समस्त पदार्थ। लोकरूढ़ि से समय का अर्थ काल कहा गया है, पर समय का शब्दार्थ क्या है। सम् अय। सम् उपसर्ग है, अय धातु है। सम् एकत्वेन अयते गच्छति परिणमते इति समय:। जो अपने आपमें अपने एकत्वरूप से परिणमा करे उसे समय कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपना-अपना भिन्न-भिन्न अस्तिकाय लिये हुए है, और सभी पदार्थ केवल अपने में अपना परिणमन करते हैं। जैसे मानों दो भाइयों में बड़ा स्नेह है तो वहाँ यह नहीं हो सकता कि किसी एक भाई का स्नेह दूसरे भाई में पहुंच गया हो। वे दोनों अपनी-अपनी जगह में रहकर अपने ही स्वरूप में बसकर कल्पना जगाकर अपने में स्नेह परिणमन कर रहे हैं। कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थ में अपना परिणमन नहीं करता है। प्रत्येक पदार्थ अपने ही एक स्वरूप में परिणमा करता है, अतएव पदार्थ का नाम समय है।

शब्दभेद की विलक्षणता—भैया ! जितने शब्द होते हैं उतने ही उसमें अर्थ हैं। भले ही अनेक शब्द एक ही पदार्थ के वाचक हों लेकिन शब्द भेद जितने हैं उतनी ही विशेषताओं से पदार्थ को देखा जाता है। जैसे मनुष्य, मानव, जन अनेक नाम है एक आदमी के वाचक, पर जो कम दिमाग के हैं उनको मनुष्य न कहेंगे। मनुष्य उसे कहेंगे जो उत्कृष्ट मन वाला हो। जो मन से बड़ी-बड़ी समस्यायें हल कर सके उसका नाम है मनुष्य। मानव मनु की संतान को कहते। एक साधारण बात आयी है कि पूर्वकाल में जो १४ मनु हुए हैं उनके बीच में जो थे, उनकी परम्परा से हम आप है। जन कहो इसका अर्थ इतना ही है जो जन्मे पैदा हो चाहे धनी हो, गरीब हो, मूर्ख हो, सब कहलाते हैं। एक ही आदमी के वाचक अनेक शब्द हैं, पर वे अपना भिन्न–भिन्न अर्थ रखते हैं। ऐसे ही पदार्थ के वाचक शब्द अनेक हैं पदार्थ, द्रव्य, वस्तु, समय, सत्। जितने भी नाम हैं उन सब नामों का जुदा-जुदा प्रकाश मिलता है। पदार्थ का अर्थ इतना ही है जो पद है उसका वाच्य, वह है पदार्थ। वस्तु का अर्थ है जिसमें गुण बसे हों अथवा जिसमें अर्थक्रिया होती हो। जैसे गाय वस्तु है, गाय से दूध मिलता है, अर्थक्रिया होती है, और गाय जाति वस्तु नहीं है। वह अनेक वस्तुभूत गायों के समुदाय में कल्पना किया हुआ शब्द है। जाति से काम नहीं निकलता। काम निकलता है व्यक्ति से, वस्तु से। जिसमें अर्थक्रिया हो उसे वस्तु कहते हैं। द्रव्य का अर्थ है जो भूत काल में अपनी पर्यायों को प्राप्त करता रहे, आगे करता रहेगा, वर्तमान में पर्यायों को प्राप्त कर रहा है उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य शब्द से एक त्रैकालिक पर्यायों रूप सत् है यह विशेषता ज्ञात हुई। यहाँ समय शब्द कहा जा रहा है। इसकी यह विशेषता है कि यह शब्द बतलाता है कि प्रत्येक पदार्थ अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में रहता हुआ अपने में ही परिणमा करता है किसी दूसरे में नहीं।

कल्याण में सम्यग्ज्ञान का नेतृत्व—भव्य जीवों का उत्कृष्ट होनहार सम्यग्ज्ञान में है। सब कुछ मिल जाय वैभव धन सम्पदा परिवार इष्टजन यश और एक आत्मा में सच्चा ज्ञान न जगे तो उसका सब कुछ पाना व्यर्थ है। यह कितने दिनों का मौज है। फिर वही संसार का भटकना, अब भी वही भटकना। शान्ति न उसे इस समय है न अगले समय में है। कोई बालक युवक पुरुष अच्छे काम में रहा करे, भगवान की भक्ति की ओर ध्यान रहे, साधुसेवा में चित्त रहे, परोपकार आदिक में भावना बनी रहे, धर्मकार्य में उत्साह रहे तो ऐसा जो उसका सत् आचरण की ओर झुकना है यह झुकाव करोड़ों और अरबों की सम्पत्ति से बढ़कर भी सम्पदा है। कोई बहुत बड़ा सम्पन्न हो और उसका झुकाव व्यसनों की ओर हो तो उसका जीवन चिन्तामग्न हुआ करता है। व्यसनों में परजीवों से सम्बंध जोड़ना पड़ता है और परजीव अपने आधीन है नहीं, वह अपनी कषाय के अनुसार अपना परिणमन करता है तब यहाँ मन के अनुकूल बात न होने पर व्यग्रता रहा करती है। अच्छे विचार बनाना, अच्छी ओर झुकाव रहना यह बहुत बड़ा वैभव है। वैभव का फल लोग शान्ति ही तो चाहते हैं, पर शान्ति ज्ञान के अनुसार होती है। आनन्द का सम्बंध धन में नहीं है धन विशेष हो तो आनन्द मिले ऐसा नियम नहीं है, किन्तु आनन्द ज्ञान के ही आश्रित है। हम

जैसी कल्पना करें, ज्ञान बनाए उस आधार पर सुख दु:ख अथवा आनन्द होता है। समय शब्द इस बात का प्रकाश देता है कि तुम समस्त पदार्थों को स्वतंत्र निरखो। ये सभी पदार्थ अपने-अपने स्वरूप में एकत्व में रहा करते है। ऐसे इस समय की व्याख्या इस ग्रंथ में की जायगी जिससे मोह दूर हो, परद्रव्यों से उपेक्षा हो, ज्ञानमात्र निज अन्तस्तत्त्व का आलम्बन हो।

ग्रन्थ के प्रथम अधिकार में—इस ग्रन्थ में तीन अधिकार किए जायेंगे। प्रथम अधिकार में ५ अस्तिकायों अथवा ६ द्रव्यों के रूप से मूल पदार्थों का वर्णन चलेगा। मोही जन मूल पदार्थों से अपरिचित रहते हैं और जो परिणमन है साफ है उससे यों परिचित रहते हैं कि यही सब कुछ है। जिसे मूल बात का परिचय हो उसके विवाद और व्यामोह नहीं रहता। जैसे लोक और समाज पद्धति में ही इस बात को देखो कोई सा भी विवाद या झगड़े का साधन हो, व्यवस्था प्रबंध समारोह आदि का साधन हो और उस प्रसंग में मूल बात का ठीक निर्णय रहे तो विवाद नहीं हो सकता। जैसे हम आप सब लोग मिलकर एक धर्मपरम्परा बना रहे, यदि यह भान रहे कि हम लोग तो तीर्थंकर भगवान के एक छोटे-छोटे मुनीम लोग हैं, क्लर्क लोग हैं हम कोई अधिकारी नहीं हैं, जैसे कि कुछ कमेटी के रूप में अधिकारी के रूप में और उसी समय में हठ बन जाती है, अपने विजय के थापने की जिद्द हो जाती है, सबकी बात टालकर अपनी ही बात रखने की मन में आती है। ये सब क्यों आते हैं? मूल बात को भूल गए। अरे काम तो इतना ही है कि जिस प्रकार हो वस्तुस्वरूप के यथार्थ प्रतिपादन करने वाले इस जैनशासन की लोक में ज्योति आये, लोग समझें, हमारा कल्याण तत्त्वज्ञान में है, इसके ही लिये तो हम आपने यह परम्परा बनायी है।

अवैयक्तिक कार्य में कार्य की प्रधानता—हम आपका कोई महत्त्व है क्या इस पर्याय के रूप में? जैसे कोई सरकारी काम किया जाता है तो उसमें काम करने वाले अफसर लोग क्लर्क लोग सबको अपनी करतूत की हठ नहीं होती है कि मैंने कहा इसलिये ऐसा होगा। यदि कोई हठ करे तो वह उस कार्य का कर्ता नहीं है। वह तो यह जानता है कि मैं अलग से कुछ चीज नहीं हूं, सरकार है सरकार का काम है। मुझ जैसे अनेकों हैं काम चलाना है। ऐसे ही हम आप सोचें कि हम आपका अलग से इस मामले में कोई अस्तित्त्व नहीं है। जब णमोकार मंत्र में भी तीर्थंकरों का नाम नहीं है जिनकी हम आराधना करते हैं उनके व्यक्तित्व का भी जब कोई स्थान नहीं है और हम और आप जरा-जरासी बातों में अपने व्यक्तित्व की हठ पकड़ जायें तो समझिये कि कितना पद से विमुख चल रहे हैं। मूल तत्त्व का बोध न होने से अनेक विसम्वाद हो जाते हैं। इस ग्रन्थ के प्रथम अधिकार में ५ अस्तिकाय अथवा ६ द्रव्यों के रूप से मूल पदार्थों का वर्णन किया जायगा।

ग्रन्थ के द्वितीय व तृतीय अधिकार में—जब मूल पदार्थ विदित हो जायगा यथार्थतया, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ प्रकार के द्रव्य हैं। इनमें जीव तो जीव है और शेष अजीव है तब दूसरे अधिकार में जीव और अजीव इन दोनों पदार्थों के पर्यायरूप से ९ पदार्थों की व्याख्या विदित हो गयी तो उस मार्ग पर चलेंगे जिससे यह उत्कृष्ट मोक्ष का लाभ हो सके। मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूत ७ तत्त्वों का परिज्ञान करके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप आत्मपरिणमन के मार्ग से यह कल्याणमय मोक्ष प्राप्त होगा। उसकी और प्रतिपादित समस्त विषयों की चूलिकाओं में यह वर्णन चलेगा।

मूल उपदेष्टा की लोकोत्तरता—अपूर्व कल्याणकारी महान् वक्तव्य को प्रारम्भ करने से पहिले कुन्दकुन्दाचार्य देव मंगलाचरण में कह रहे हैं कि शत इन्द्रों से वंदनीय और तीन लोक का हित करने वाले, मधुर स्पष्ट जिनका उपदेश हैं तथा जो अनन्त गुणों के पुंज हैं, जिन्होंने इस संसार को जीता है उन जिनेन्द्र भगवान को मैं नमस्कार करता हूं। आज भी जितना यह परमागम है इसका मूल स्रोत जिनेन्द्र देव हैं। पाणिनीय व्याकरण में सबसे पहिले यह बताया है कि इस व्याख्या की रचना और उद्भव के मूल ये १४ सूत्र है अ इ उ ण् ऋ ल क् आदि। ये १४ सूत्र महादेव के डमरू से निकले ऐसा उनका कहना है।

उससे यह बात प्रकट हुई है कि कोई मनुष्य अपने मुख से बात कहे और उससे पहले कोई स्रोत न हो तो मुख से कही हुई बात प्रामाणिक नहीं होती। कोई प्राकृतिक विलक्षण प्रामाणिक ढंग से बात हो, फिर उसके आधार से मुख से कितने ही बार उसको लोग बोलें, ठीक है वह सब प्रामाणिक हैं। १४ सूत्रों को महेश्वर के डमरू से निकला बताया गया है। अब जरा परमागम की ओर दृष्टि दो जिससे ये समस्त निष्पक्ष वीतराग मार्ग का प्रकाश करने वाला जो कुछ शास्त्र का समूह है इसका मूल में आने का स्रोत क्या था? तो वह है जिनेन्द्र देव की दिव्य ध्वनि। ये जिनेन्द्र देव वीतराग, इन्द्रवन्द्य, अनन्तज्ञानी व हितोपदेशी है।

उपदेश की प्रामाणिकता—कोई पुरुष यों ही बोलकर उपदेश शुरू करे और उससे पहिले उपदेश का और कोई विलक्षण स्रोत न हो तो उसमें प्रामाणिकता नहीं आती। जिनेन्द्र देव चार घातिया कर्मों से रहित वीतराग निष्कषाय केवलज्ञान से सर्व लोकालोक को जानने वाले हैं। साथ ही उन्होंने साधु अवस्था में या इससे पहिले जो संसार के प्राणियों के उद्धार की भावना की थी उससे जो पुण्यबंध हुआ था उसकी प्रेरणा से और भव्य जीवों के सौभाग्य से जिनेन्द्र देव के सर्व अंगों से एक ऐसी विशिष्ट ध्वनि निकलती है कि उस ध्वनि को झेलने वाले सर्वोत्कृष्ट लोक के ज्ञानी गणधर देव ही झेलते हैं, और उस परम्परा से चला आया हुआ जो यह उपदेश है यह निर्बाध रहता है। इसी कारण मंगलाचरण में ऐसे उपदेष्टा जिनेन्द्रदेव को प्रथम नमस्कार किया है और चार विशेषण देकर उनकी प्रामाणिकता जाहिर की है। शत इन्द्रों द्वारा वंदनीय भगवान जिनेन्द्रदेव का उपदेश हितकारी है। उनमें अनन्त गुण हैं और उन्होंने संसार पर विजय प्राप्त कर ली है ऐसे जिनेन्द्रदेव को नमस्कार हो।

अनादिनियोग—अनादि से चले आ रहे शत इन्द्रों द्वारा वन्दनीय, अनादि से चले आ रहे जिनेन्द्रदेव को हमारा शत-शत नमस्कार हो। इस लोक में धर्म और अधर्म सभी प्रकार का प्रवर्तन अनादि काल से चला आ रहा है, यह संसारी जीव जैसे मोह मद आदि कलुषित आशयों से परिणमते चले आ रहे हैं ऐसे ही धर्मात्माजन धार्मिक मार्ग के नेता ये भी अनादि काल से चले आ रहे हैं, संसार अनादि काल से चला आ रहा है। तीर्थंकर प्रभु भी अनादि काल से होते चले आ रहे हैं, और उन तीर्थंकर भगवंतों का विनय करने वाले इन्द्रादिक देव भी अनादि से ही इनकी पूजा करते चले आ रहे हैं। वस्तुधर्म जैनधर्म अथवा आत्मधर्म कहो, वह भी अनादि काल से चला आ रहा है।

धर्म और धर्मनेता की परम्परा—धर्म नाम है स्वभाव का। पदार्थ में जो स्वभाव है उस स्वभाव का नाम धर्म है, और उस स्वभाव मात्र वस्तु को जानने का नाम है धर्मपालन। ऐसा धर्म कब से चला आ रहा है। वस्तु अनादि से है और इस धर्म का पालन भी अनादि से चला आ रहा है। यह जिनेन्द्रदेव यह व्यक्तिगत नहीं है, किन्तु जो रागद्वेष मोह को जीते सो जिन है। ये जिन अनादिकाल से चले आ रहे हैं और ये इंद्र जो कि इनकी वंदना करते हैं वे भी अनादिकाल से प्रवर्तमान परम्परा में चले आ रहे हैं। इस गाथा में जो इंदसदवंदियाणं विशेषण दिया है जिनेन्द्रदेव का, उसमें इतना ही जानना कि सदा काल अनादि से अनन्त काल तक जीवों के देवाधिदेव ये जिनेन्द्र देव हैं, और इनको सभी इन्द्र साधारण रूप से विशेष रूप से नमस्कार करते हैं और ये समस्त लोक के द्वारा नमस्कार किये जाने योग्य हैं।

भगवत्तत्त्व—अभी नाम तो लो नहीं किसी भगवान का, किन्तु भगवान की विशेषता व स्वरूप ही बताते जावो तो सब लोगों को रुच जायगी वह विशेषता और जहां किसी भगवान का नाम ले लिया महावीर ऋषभदेव आदि, तो कुछ तो पक्ष में रहेंगे जो उनके मानने वाले हैं, बाकी सब हट जायेंगे। यह तो एक मजहब की बात है। जरा नाम तो लीजिए नहीं कुछ, किन्तु बताते जाइये हमारे आदर्श वे हैं, जिनमें

रंच भी रागद्वेष मोह नहीं रहा और जिनके ज्ञान इतना विराज रहा है कि समस्त विश्व को एक साथ जानते हैं। जो शुद्ध विकासरूप हैं, परम ज्योतिस्वरूप हैं, अनन्त आनन्दमय है ऐसा भगवान हम लोगों का आदर्श है पूज्य है उसकी भक्ति से ही सारे संकट टलते हैं। सब लोग बड़े प्रेम से सुनेंगे और इनकी ओर भक्ति जगेगी। अच्छा नाम तो लीजिए नहीं और वर्णन करते जाइये हमारा भगवान बड़ा खिलाड़ी है, अनेक स्त्रियों में रमता है और रस रसायन चुरा-चुराकर खूब मस्त होकर खाता है नाम न लीजिए किन्तु केवल बात ही बतावो तो उसे सुनना लोग पसन्द न करेंगे। तो जो गुणविकास है, जो निर्दोषता है वह उपासनीय है और ऐसा उपास्य देव ही वास्तव में देवाधिदेव है, असाधारण है, नमस्कार के योग्य है।

सत्य की अमिट सत्यता—जो तत्त्व उपास्य है उसका नाम तो कुछ रखना पड़ेगा। शरीर का नाम नहीं, ऋषभ, महावीर, राम, हनुमान ये नहीं फिर भी कुछ तो कहना पड़ेगा। प्रभु कहो, भगवान कहो, जिन कहो। कुछ-कुछ शब्द तो बोले जायेंगे। अब पक्ष में आकर उन ही शब्दों को कोई रागद्वेष में ढाल दे तो उसका इलाज क्या। प्रभु का अर्थ क्या है? जो उत्कृष्ट रूप से हो उसे प्रभु कहते हैं। प्र उपसर्ग है भू धातु है। जो उत्तम विकासरूप से है, चरम विकासमय है उसका नाम प्रभु है। अब प्रभु किसी का नाम नहीं हुआ। भगवान का अर्थ ज्ञानवान है जो उत्कृष्ट ज्ञान वाला हो उसे भगवान कहते हैं। यह कुछ व्यक्ति का नाम नहीं हुआ। जिन किसे कहते हैं? जो रागद्वेष मोह को नष्ट कर डाले उसका नाम जिन है। जिन किसी व्यक्ति का नाम तो नहीं हुआ, और जो रागद्वेष मोह को जीत चुका उस जिन ने जो मार्ग बताया उसका नाम है जिन मार्ग, जिनधर्म, इसमें भी कोई व्यक्ति का नाम नहीं हैं, किन्तु ऐसा साधारण भी मार्ग किसी नाम से तो पुकारा ही जायगा, पर उसे एक विशिष्ट समूह वाला मान बैठें कोई तो यह सब मोह का ही विलास है।

वीतरागता, सर्वज्ञता व हितोपदेशिता—यह प्रभु, यह जिनेन्द्र, यह रागद्वेष मोह के विजय का उपाय और ये रागद्वेष के जीतने वाले अनादि काल से होते चले आ रहे हैं। ये देवाधिदेव ही असाधारण नमस्कार के योग्य हैं। जिनेन्द्रदेव में तीन विशेषताएं संक्षेप रूप से बतायी गयी हैं। वे वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं और हितोपदेशी हैं याने निर्दोष हैं, पूर्ण गुणसम्पन्न हैं और हित का मार्ग बताने वाले हैं। इस ही आधार पर णमोकार मंत्र में सर्वोत्कृष्ट परमेष्ठी सिद्ध भगवान से भी पहले णमो अरिहंताणं कहकर अरहंतों का स्मरण किया है। प्रभु समस्त जीवलोक के लिए समस्त संसारी प्राणियों के लिए आत्मतत्त्व की प्राप्ति का उपाय बताते हैं इसलिए वे हितोपदेशी है।

उपदेश की सार्वता—प्रभु का उपदेश एक शुद्ध आत्मतत्त्व की प्राप्ति कराने के लिए है। तीन लोक के समस्त ऊर्ध्व लोक में देवता जन हैं, मध्य लोक में तिर्यञ्च और मनुष्य हैं, अधोलोक में भवनवासी व व्यन्तरदेव तथा और नीचे नारकी जीव हैं। इन समस्त जीवों के लिए इनके भले के लिए बाधा रहित ज्ञानस्वरूप मात्र आत्मतत्त्व का उपदेश किया है। देवता लोग तो समवशरण में आकर भगवान की दिव्यध्वनि का उपदेश सुनते हैं। नारकी जीवों को यहाँ के जीव जाकर, जिन नारकियों से स्नेह है और जिस देव को उसके उद्धार की वाञ्छा है तो वह जाकर सुनाता है। यों प्रभु का उपदेश समस्त जीवों के हित के लिये है और वह उपदेश मधुर है। जो परमार्थ तत्त्व के रसिया हैं जिन्हें विकल्प परिहार करके निर्विकल्प निज ज्ञानस्वरूप की दृष्टि में सहज आनन्द आता है उन पारमार्थिक रसिक पुरुषों के मन को हरण करने वाले वचन हैं, इस कारण प्रभु का वचन मधुर है, साथ ही उनके वचन अत्यन्त विशद हैं, स्पष्ट हैं, उसमें शंका आदिक कोई दोष का स्वभाव नहीं है।

भगवद्वाणी की चरम गंभीरता—भगवान का वचन हम आप लोगों की तरह किसी पुरुष का लक्ष्य रखकर और किसी एक प्रकरण को क्रम में रखकर नहीं होता है। इस प्रकार के व्याख्यान तो जिसके कुछ न कुछ राग हो वही कर सकता है। किसी की बात सुनना और उसके प्रश्न का उत्तर देना यह राग बिना

सम्भव नहीं है। भला राग है, धर्म का अनुराग है, पर राग का कुछ अंश हो तब उसके प्रश्नोत्तर हो पाते हैं और तब ही वचन विन्यास करके शब्द वर्ण का क्रम बनाकर बोला जाता है। प्रभु अरहंतदेव वीतराग और सर्वज्ञ हैं। उनके अब मन भी नहीं रहा। भले ही शरीर में द्रव्यमन रहे, किन्तु केवलज्ञान होने पर केवलज्ञान के द्वारा समस्त विश्व को एक साथ स्पष्ट जानते हैं। मन का भी काम नहीं होता। तब उनके तो उपदेश देने की भी इच्छा नहीं है। वह उपदेश देना नहीं चाहते। इस सम्बंध में कोई विकल्प ही नहीं है, पर तीर्थंकर प्रभु ने पहिले समय में पूर्व जन्म में या पूर्व काल के संसार के समस्त प्राणियों के उद्धार की वाञ्छा की थी, इन प्राणियों को अपने आपके स्वरूप का बोध हो और संसार के समस्त संकटों से ये दूर हो जायें ऐसी जो निरन्तर वाञ्छा बनायी थी उसमें इन्हें विशिष्ट पुण्यप्रकृति का बंध हुआ था। जो दूसरों के उपकार की इच्छा रखता है उसके पुण्य का बंध होता है, यों समझ लीजिए कि जो दूसरों के उपकार का आशय रखता है उसकी महिमा फैलती है। समस्त जन उससे स्नेह करते हैं, उसका आदर करते हैं, यही तो पुण्य हुआ। तो प्रभु के ऐसा विशिष्ट पुण्य का उदय हुआ था कि अब वीतराग होने पर भी उस पुण्यप्रकृति के उदय से उनके समस्त शरीर से मुख से भी एक मधुर कर्णप्रिय ध्वनि निकलती है और उस ध्वनि को सुनकर लोग अपनी-अपनी भाषा में अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार धर्मतत्त्व का ज्ञान करते हैं, तिर्यञ्च भी तो तत्त्वज्ञान कर लेते हैं दिव्यध्वनि को सुनकर और मनुष्यों में चाहे वे किसी भी भाषा को बोलने वाले हों दिव्य ध्वनि को सुनकर अपनी योग्यतानुसार उसकी महिमा और मर्म पा लेते हैं। प्रभु के वचन तो मधुर हैं।

मधुरता व हितकरता का समन्वय—देखिये हम आप लोगों को आज के पाये हुए ठाठबाठ समागम या प्रेमी जनों से वार्तालाप इनमें ही समय न खोना चाहिये। यह वार्तालाप हितरूप नहीं है और वास्तव में मधुर भी नहीं है, कड़वा है। कोई ऐसी औषधि हो कि खाते समय तो मीठी लगे पर थोड़ी देर बाद मुंह कड़वा हो जाये, ऐसे ही जानों कि ये सांसारिक सुख हैं। यह प्रेमी जनों से जो वार्तालाप होता है प्रेम का परस्पर वार्तालाप होता है प्रेम का परस्पर आदान प्रदान होता है ये सब कटु चीजें हैं, मधुर नहीं हैं। कुछ काल को तो भले ही सबको प्रिय लगती है। किन्तु इनका परिणाम कठोर है। इस ही भव में अनेक घटनायें भोगनी पड़ती है और परभव में भी इस प्रीति के कारण यातनायें भोगनी पड़ती है। ये वचन हितकर नहीं हैं किन्तु प्रभु के वचन जो निष्पक्ष है, प्रकृति की प्रेरणा से उत्पन्न हुये हैं, भव्य जीवों के भाग्य से हुये हैं वे वचन मधुर हैं। उनके तो दिव्यध्वनि है। जो सर्वसाधारण के नहीं पाया जाता है। उनके वचन समग्र वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने वाले हैं।

वस्तुस्वरूप का वर्णन—जैन मार्ग में किसी की ओर से कोई विधान नहीं बनाया गया, किन्तु वस्तुवों में जो बात, जो स्वरूप पाया जाता है उसका प्रतिपादन है, और कहो यह आत्मा अपने इस आत्मस्वरूप में आ जाये, मग्न हो जाय परम समाधि प्राप्त हो जाय उसके उपाय में पर की अपेक्षा और निज का आलम्बन जैसे बने उस विधि का वर्णन है। यहाँ पक्ष का तो कहीं रंच भी नाम नहीं है, किसी भी मनुष्य को यथार्थ मार्ग बतावो, समझावो सबको रुचेगा, अरुचिकर कोई बात ही नहीं है, और साथ ही शंका संदेह उत्पन्न करने वाली भी कोई बात नहीं है। ऐसा हितकारी निर्मल स्पष्ट जिसका उपदेश है ऐसे जिनेन्द्रदेव को भक्तिपूर्वक नमस्कार हो।

आत्मतत्त्व के नाते शान्ति का प्रयत्न—हम आप आत्मा हैं, हम आपको शान्ति चाहिए, तो आत्मा के ही नाते से शान्ति के मार्ग में हमारा प्रयत्न हो इस दिशा में कोई विवेकी अपने उपयोग का कदम बढ़ाये तो वह यथार्थ स्वरूप का ग्रहण करके रहेगा। जहां मूल में ही यह आशय बनी हो कि मैं अमुक मजहब का हूं, अमुक कुल का हूं, अमुक धर्म का हूं उसको अब आत्मा से नाता नहीं रहा, पर्याय से नाता हो गया, और पर्याय का नाता रखकर ऐसा निष्पक्ष जैन धर्म भी पाये तो भी वह लाभ नहीं उठा सकता।

आत्मा का नाता रखकर चाहे कोई किसी भी कुल धर्म मजहब में उत्पन्न हुआ हो वह संतोष मार्ग को आखिर ग्रहण करके ही रहेगा। जिन्हें कल्याण की वाञ्छा है उनका यह कर्तव्य है कि पर्याय के नाते को भुला दें, धर्म ग्रहण करने की प्रतीति में और आत्मा का ही नाता लगाकर उसमें बढ़ें।

अनन्त गुणमयता—ये प्रभु जो आत्मकल्याण पा चुके हैं ये अनन्त गुणमय हैं, इनके गुणों का अन्त नहीं आ सकता। कैसा है इनका चैतन्यस्वभाव। यह शुद्ध ज्ञानप्रकाश चैतन्य शक्ति का विलास किसी क्षेत्र की सीमा को नहीं रखता। यह ज्ञान यहाँ तक ही जाने इससे आगे न जाने ऐसी सीमा भगवान के ज्ञान में नहीं है। जहां कर्म, शरीर, इन्द्रियां इन सबका अभाव हो गया और जो केवल ज्ञानस्वरूप रह गया। ज्ञान का काम निरन्तर जानते रहने का है। तो उस ज्ञान में यह सीमा कौन डालेगा कि यह केवलज्ञान यह ज्ञानप्रकाश सिर्फ इतने क्षेत्र तक जानेगा आगे न जानेगा ऐसी सीमा हो ही नहीं सकती ज्ञान में। हम आप लोगों के जो ज्ञान की सीमा बनी हुई है, इतनी दूर तक की देखें सुने, जाने यह सीमा ज्ञान के नाते से नहीं बनी है, किन्तु ज्ञान में बाधा डालने वाले जो रागद्वेष हैं उनके कारण बनी है। प्रभु के ज्ञान में क्षेत्र की सीमा नहीं है। प्रभु के ज्ञान में काल की भी सीमा नहीं है, जैसे हम आप लोग गुजरे हुए समय की कितने दिन की बात जानें इसकी सीमा है। किसी का ज्ञान विशिष्ट है वह १८, २० वर्ष की जानता कोई दो वर्ष की जानता, कोई पिछले वर्ष की भी भूल जाता। हमारे आपके ज्ञान में समय की सीमा है क्योंकि रागद्वेषमय वाञ्छाएं हैं, उसमें उपयोग चला जाने से यह ज्ञान शुद्ध विकास में नहीं रहता है। यह औपाधिक भावों का आवरण है, अत: हम आपके ज्ञान की कला की सीमा लग गयी है लेकिन प्रभु के ज्ञान में समय की सीमा नहीं है।

असीम ज्ञातृत्व—ज्ञान का काम जानना है और जानना सत् पदार्थों का होता है। जो भी सत् हो वह जिस प्रकार भी पहिले रहा हो, जिस प्रकार आगे रहेगा, जिस प्रकार वर्तमान में रह रहा है उस सबका सम्पूर्ण ज्ञान एक झलक में जान लेता है। इससे पहिले की बात जाने, इससे और पहिले की बात न जाने ऐसी सीमा केवलज्ञान में नहीं होती है। यह काल सीमा से भी परे है, यों उत्कृष्ट चैतन्यशक्ति का उत्कृष्ट विकास किसमें है और इस ही प्रकार आनन्द दर्शन शक्ति समग्र गुण असीम विकसित हो गए हैं, ऐसे जिनेन्द्रदेव को यहाँ नमस्कार किया है। देखिये कितनी निर्मल दृष्टि लगी है प्रभु भजन में। कोई व्यक्ति भी नहीं देखा जा रहा है, किन्तु एक शुद्ध ब्रह्म विकास ही निरखा जा रहा है। जो परिपूर्ण ब्रह्म विकास है वह हमारा प्रभु है। इन लगन को प्रभुभक्ति में लगायें।

प्रभुभक्ति का जयवाद—अब आजकल जैन शब्द संकुचित बन गया है। चीज वही है जो जिनेन्द्र का स्वरूप बताया जा रहा है, और हम भी वही हैं जिसे जैन कहकर पुकारा जा रहा है, पर हम किसी भी शब्द का आलम्बन न लें, अपने आपको जैन हैं इसका भी विकल्प त्याग दें और निरखें अपने आपमें कि यह मैं ज्ञानपुंज आत्मा हूं और मेरा आदर्श मेरा सुधार ज्ञानपुंज है यों यह ज्ञान की भक्ति करता है। और इस प्रकार वह देव और यह भक्त कितना निकट आ जाता है। ऐसी भक्ति लोक में जयवंत हो। यह प्रभु परम अद्भुत ज्ञान के विकास वाला है अत: योगियों के द्वारा भी वंदनीय ये हैं ऐसे देवेन्द्र योगीन्द्र नरेन्द्र सभी के द्वारा वंदनीय ये जिनेन्द्रदेव हैं इनकी उपासना के प्रसाद से भव-भव के पाप कट जाते हैं, अपने आपमें निर्मलता प्रकट हो जाती है। यह सब चिन्ता शोक का बोझ समाप्त हो जाता है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव इस ग्रन्थ रचना के प्रारम्भ में मंगलाचार में ऐसे निर्दोष सर्वगुणसम्पन्न जिनेन्द्रदेव को नमस्कार कर रहे हैं।

जितभवता—कुन्दकुन्दाचार्यदेव मंगलाचरण में जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करते हुए अंतिम विशेषण कह रहे हैं यह जिनेन्द्र जितभव हैं। जिसने यह संसार को जीत लिया है, जन्म मरण रूप भव को विनष्ट कर दिया है वह जितभव कहलाता है। करने योग्य कार्य केवल शुद्ध ज्ञाता द्रष्टा रहने का है। यह कार्य ये कर

चुके हैं। शुद्ध ज्ञाता द्रष्टा निरन्तर रहा करते हैं। तो जो कृतकृत्य रह गया हो उसका ही तो शरण अकृतकृत्यपने को व्यक्त हो सकता है। हम आप संसारी प्राणी अकृतकृत्य हैं। जो करने योग्य कार्य हैं उसे नहीं कर पाये हैं। ऐसे जीवों का शरण जो कृतकृत्य हो वही हो सकता है। जो जितभव हो, कृतकृत्य हो उसको एक इस दृष्टि से देखो, इन्होंने वस्तुस्वरूप का यथार्थ ज्ञान पाया और उस शुद्ध ज्ञान का ही उपयोग बनाया इससे ये कृतकृत्य हुए हैं।

स्वतन्त्रता का निर्णय—प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, सहज स्वरूप में यह ज्ञायकस्वरूप, यह पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और यह कालाणु है, ये सब अपने स्वरूप से हैं और पर के स्वरूप से नहीं हैं। ये प्रत्येक पदार्थ अपने आपके कर्ता हैं, किसी पर के कर्ता नहीं हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूप के स्वामी हैं, किसी पर के स्वामी नहीं हैं, ऐसी यथार्थ ज्ञानदृष्टि के बल से जिसके यह निर्णय और पुरुषार्थ बन गया है अब उसे किस भी पर पदार्थ में कुछ काम करने को पड़ा ही नहीं है। जहां यह दृष्टि बनी ऐसा निर्णय बनाया कि मैं तो केवल अपने में अपना परिणमन किया करता हूं। मुझे पर में कुछ करना योग्य है ही नहीं। बस यही कृतकृत्य बनने का एक मूल साधन है। जो पुरुष इस ज्ञान की कृतकृत्यता के प्रसाद से यथार्थ कृतकृत्य हो गए हैं वे प्रभु ही संसारी प्राणियों के लिए शरण कहे गए हैं।

इंदसदवंदियाण—यों ग्रन्थकर्ता ने जिनेन्द्र भगवान को 4 विशेषणों से याद किया है। यह प्रभु जो इन्द्रों के द्वारा वंदनीय है। इस विशेषण से कई बातें जाहिर होती हैं। एक तो विशिष्ट पूजा के योग्य ये जिनेन्द्रदेव ही हैं यह सिद्ध होता है, दूसरे जिसके चरणों में सब जाति के इन्द्र वंदना करते हैं उनके प्रति सब जीवों का झुकाव अपने आप होता ही है। इसमें भक्ति में विशेषता बतायी गयी है।

तिहुवणहिद मधुरविसदवक्काणं—दूसरा विशेषण दिया गया है त्रिभुवनहित मधुरविशद वाक्य। तीन लोकों के लिए हितकारी मधुर और विशद जिनका उपदेश है, तीन लोक के लिए उनका उपदेश हितकारी इसलिए है कि उनके उपदेश में उस शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति का उपाय कहा गया है। आत्मा स्वभावत: सहज आनन्दमय है। इस शुद्ध आत्मा की दृष्टि जगे यही शुद्ध आत्मा के आश्रित हुआ ज्ञान ही इस ज्ञानमय को पायगा। ज्ञान भी ज्ञानस्वरूप है और जिसे पाता है वह भी ज्ञानस्वरूप है। उसकी दृष्टि होना, इस ज्ञानस्वरूप का ज्ञान होना यही शुद्ध आत्मा की प्राप्ति कहलाती है। इसका समस्त उपाय बताया है और इस शुद्ध आत्मा की प्राप्ति के द्वारा यह कभी सर्व प्रकार से शुद्ध हो जाय, शरीर के सम्पर्क से भी मुक्त हो जाय, भावकर्म से भी मुक्त हो जाय, द्रव्यकर्म से भी मुक्त हो जाय ऐसी सर्वथा शुद्ध आत्मा की प्राप्ति का उपाय जैन दर्शन में कहा गया है, इस कारण यह जिन उपदेश हितरूप है।

प्रभुवाणी की विशदता—प्रभु का वचन अत्यन्त विशद है। बड़े-बड़े ग्रन्थों में सभी दर्शन के ग्रन्थों में जब कोई प्रवेश करता है तो उसे यह समझ में आ जायगा कि अहो यथार्थ तत्त्व का निरूपण जैन दर्शन के शास्त्रों में कितनी सरल शैली से कहा है। कठिन समास और अप्रसिद्ध शब्दों के द्वारा न कहकर जैन शास्त्रों में सरल से सरल शैली में बताया गया है। जैन ऋषि संत जीवों की करुणा से ओतप्रोत थे। उनका केवल यही भाव था कि जनता को समझ में आ जाय तत्त्व और कुछ चाह न थी, ठोस तत्त्वज्ञान भी था। ज्ञान का विषयभूत जो कुछ पर में है वह भी ठोस विदित था। इस तत्त्वज्ञान का फल है अपूर्व परम आनन्द होना। इस तत्त्वज्ञान के प्रसाद से रागद्वेष रहित विकल्प रहित केवल ज्ञाताद्रष्टा रहने रूप समाधि उत्पन्न होती है। इस समाधि से जो सहज अपूर्व आनन्द जगता है उस आनन्द के रसिक जो भव्यजन है उनके मन को प्रसन्न करने वाला प्रभु का उपदेश है। यह उपदेश बहुत विशद है, साफ स्पष्ट है। न इसमें कहीं संशय है, इसमें कोई विपर्यय है और न इसमें किसी प्रकार का अनिश्चय है।

शुद्ध जीवास्तिकाय की ख्याति—प्रभु के उपदेश में मुख्यतया क्या बात बतायी गयी है। शुद्ध जीवास्तिकाय शुद्ध पुद्गल अस्तिकाय, धर्म, अधर्म, आकाश ये सदा शुद्ध ही हुआ करते हैं। इन पंच अस्तिकायों का वर्णन है, और पंच अस्तिकायों के वर्णन का प्रयोजन है एक शुद्ध जीवास्तिकाय का दर्शन होना। यह मैं आत्मा अपने आप अकेला अपने सत्त्व के कारण कितने स्वरूप हूं इसी को शुद्ध जीव स्वरूप कहा करते हैं। इसमें मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूत सात तत्त्वों का वर्णन है। प्रभु के उपदेश में जीव, अजीव, आस्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष व्यवहार व परमार्थ दोनों विधियों से है। जीव उसे कहते हैं जिसमें चेतना हो, जिसमें ज्ञान दर्शन हो। जो जानता देखता है उसका नाम जीव है, और इस प्रसंग में अजीव का मतलब है कर्म। आस्रव बंध आदिक यह जो पर्याय बताता है उसके मूल में दो तत्त्व कहे हैं—जीव और अजीव का अर्थ है यहाँ कर्म। ये दो मूल बातें हैं। जीव में कर्म आ जायें उसका नाम आस्रव है, और जीव में आये हुए कर्म बहुत दिनों तक जीव के साथ रहे, उनकी स्थिति पड़ जाय, इसका नाम बंध है। जीव में कर्म न आ सकें। कर्मों का आना रुक जाय इसका नाम सम्वर है और पहिले से बंधे हुए कर्म जीव से अलग हो जायें, झड़ जायें इसका नाम निर्जरा है, और समस्त कर्मों का जीव से सर्वदा के लिए न्यारा हो जाना इसका नाम मोक्ष है। मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूत ये ७ तत्त्व हैं। ७ तत्त्वों के श्रद्धान को सिद्धान्त ग्रन्थों में सम्यग्दर्शन कहा है।

आत्महित—जीव का पूर्ण हित मोक्ष में है, अर्थात् जो दंद फंद लिपट गए हैं इस जीव के साथ जीवातिरिक्त अन्य चीजें जो लग गयी हैं ये अन्य चीजें जुदी हो जायें बस इसी में इस जीव की भलाई है। धर्म पालन करने का उद्देश्य भी यही है कि हम इन औपाधिक तत्त्वों से दूर हो जायें। हम जैसे स्वयं अपने आप हैं सहज वैसे ही रह जायें यही जीव की सबसे बड़ी भलाई है। जब अज्ञान मोह सताता है तो इस जीव के परद्रव्यों के प्रति दृष्टि अधिक गढ़ जाती है और पर की चिन्ता, पर का शोक, पर की लगन इनमें ही उपयोग गुजरता रहता है, किन्तु यह तो बतावो कि कितने अनेक पर पदार्थ हम आपने भव-भव में पाये होंगे, आज जो कुछ पाया है और जितना वैभव की हम अपनी इच्छा में निदान बनाते हैं इतना और मिल जाय, उससे भी कई गुणा वैभव हम आपने भव-भव में पाया है। जितने चला, लोक में कीर्ति आज चाह रहे हैं। उससे भी कई गुना अधिक कीर्ति, चला हम आपने अनेक भव में पायी हैं। जब वह भी साथ नहीं रहा तो वर्तमान का समागम वैभव चला मेरे काम क्या आयगा। इस विनश्वर तत्त्व की दृष्टि में हित नहीं हैं, हित तो मोक्ष में है।

संकट व संकटनिवर्तन—यह वैभव गोरखधंधा है, सार कुछ नहीं है। फंसे तो फंसना बढ़ता ही जाता है। सुलझाना कठिन हो जाता है। पर ज्ञान में सब सामर्थ्य है। हम आप सबके पास ऐसी उत्कृष्ट निधि मिली है कि जिसके कारण हम आपको चिन्ता करने की बात नहीं रहती है। किसी भी दिन, किसी भी समय कितनी भी कठिन परिस्थिति आ जाय और कल्पना में कितनी भी बड़ी विपदा मान ली जाय, फिर भी इस विवेचक ज्ञानी में इतनी सामर्थ्य है कि उन विभावों को क्षणमात्र में हटाया जा सकता है। जैसे बहुत संचित बड़े ईंधन को जलाकर भस्म कर देने की सामर्थ्य एक अग्नि कणिका में है इस ही प्रकार समस्त संसार के संकटों का ईंधन जला देने में समर्थ हमारा ज्ञान है।

संकट और संकटविनाशक ज्ञान—हे शान्ति के इच्छुक पुरुषों ! इस महाकल्याण निज ज्ञान के निकट आवो, किसी परवस्तु के निकट रहने से तो कुछ आनन्द न मिल पायगा। एक अपने ज्ञानस्वरूप के निकट रहे तो इसमें आनन्द मिलेगा। ज्ञान में ऐसा चमत्कार है कि सर्व विपदावों को दूर कर सकता है। अरे इतना ही तो जानना है कि वह मैं आत्मा अपने गुण पर्यायोंरूप हूं अपने ही निज प्रदेशों में हूं। केवल अपने भाव परिणमन का ही कर्ता हूं और ज्ञानशक्तिमय हूं। यह मैं आत्मा अपने स्वरूप में परिपूर्ण सत् हूं। इसकी कहीं अरक्षा नहीं है। यह पूर्ण सत् है। जो सत् होता है वह कभी मिट नहीं सकता। मिटने का

ख्याल ही मत लावो। हम कभी मिट न सकेंगे। जो पर चीज है वह कभी रह न सकेगी। जो मेरा स्वरूप है वह कभी मिट न सकेगा। ऐसे शुद्ध परिपूर्ण अकिञ्चन्य ज्ञानमात्र अपने आपका बस जाना, इससे संकट नहीं रहते हैं। संकट तो विकल्पों में हैं, कल्पना में हैं और कल्पना में ही आकुलता है। भव-भव में बांधे हुए कर्मों के उदय आते हैं, और उन उदयों का निमित्त पाकर यहाँ विभावों की सृष्टि होती है तिस पर भी ज्ञान का सबसे अनूठा न्यारा काम रहा करता है। यदि हम इस उपयोग के फंद में उपयोग को न फंसायें और ज्ञान को जागरूक बनायें रहें तो कोई क्लेश अनुभव में न आ सकेगा। घर में १० प्राणी हों तो दसों के साथ कर्म लगे हुए हैं। किसी के विपरीत कोई दूसरा कर नहीं सकता। जिस जीव का जो सांसारिक होनहार है वह उस जीव के कमाये हुए पाप पुण्य के अनुसार होता है, इस बात पर श्रद्धा हो तो किसी भी स्थिति में व्यग्रता नहीं आ सकती है।

अपूर्व लाभ का विवेक—जो बात अन्य भव में नहीं हो सकती है उसकी सिद्धि कर लेना ही तो यहाँ का विवेक है। आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चार संज्ञाएं और इनकी वेदना को शमन करने के उपाय ये अनेक भवों में मिल जाते हैं। पशु पक्षी क्या पेट भरकर मौज नहीं मान पाते। वे भी मौज मानते हैं। भरे पेट वाले गाय अथवा भैंस बैठे-बैठे अपना मुंह चलाकर कैसा अपना मौज मानते हैं। सभी पशु पक्षी भरे पेट की हालत में कैसी लीला करते रहते हैं। यह आहार का सुख तो पशु पक्षी को भी प्राप्त है। भय संज्ञा भी सबके है। यह मनुष्य भय को दूर करने का प्रयत्न करता है और दूर करने के प्रयत्न में सफलता हो जाय तो मौज मानते हैं। ऐसे ही ये पशु पक्षी भी हैं, पर कोई भय आ जाय तो इस भय को मिटाने का यत्न करते हैं और वहाँ यत्न बन जाय तो ये भी अपने अन्तरङ्ग में खूब मौज मानते हैं। मैथुन की बात भी अन्य प्राणियों में भी है, मनुष्यों में भी है। उस सम्बंध में कोई सिद्धि पा ले तो इससे क्या हो जायगा? अरे जो बात अन्य भवों में न मिल सके और मनुष्य भव में ही मिल सकती है उसके ही करने का लक्ष्य रखना।

नि:संगबुद्धि का लाभ—परिग्रह संज्ञा प्रत्येक भव में रहती है। मनुष्य जरा विशिष्ट बुद्धि वाला है सो परिग्रह को अनेक ढंगों से रखता है। इसके लिए बैंक है, घर है, व्यापार है, अनेक तरह की प्रक्रियाएँ है। यह परिग्रहों का संचय कर लेता है। पशु-पक्षियों में जितनी योग्यता है उतने ही रूप में वे संग्रह कर पाते हैं, बन्दर इतना ही संचय कर पाते हैं कि जल्दी-जल्दी मुख में भर लिया और एक हाथ में भर लिया तीन पैरों से भागते जाते। इतना ही संचय कर पाते हैं बन्दर। मनुष्य ज्यादा संचय कर लेता है। पशु भी केवल खाते समय जो सामने है उसको बचाते हैं, कोई दूसरा जानवर बिगाड़ने आ जाये, खाने आ जाये तो थोड़ा सींग भी मारने का यत्न करते हैं वे इतना ही परिग्रह रख पाते हैं और कीड़ा मकोड़ा पेड़ वगैरह जो सामने आया बस उसी का परिग्रह कर पाते हैं, पर परिग्रह संज्ञा से छूटा कोई नहीं है, यह चीज भी भव-भव में मिल जाती है, इसके बढ़ावे में भी क्या बड़प्पन है। बड़प्पन तो अपने उस तत्त्व में है जो यहाँ ही सिद्ध हो पाता है अन्य भव में नहीं, वह तत्त्व है शुद्ध जीवस्वरूप का गाढ़ परिचय होना, और पर द्रव्य की उपेक्षा कर लेना। यह बात यदि न प्राप्त कर सके तो दु:खी कौन होगा? यह खुद ही दु:खी होगा।

सुगम सत्य मार्ग का ही शरण—भैया ! होनहार ठीक है तो सबको सीधे सच्चे रास्ते पर आना पड़ेगा। जैसे लोक में कोई पुरुष हठ करे तो वह आखिर कब तक यों करेगा? उसे भी सीधे रास्ते पर आना पड़ता है और तब ही उसका गुजारा और शान्ति हो सकती है ऐसे ही यहाँ पर वस्तुओं की चिन्ता, शोक, अधम, उद्दण्डता हो तो कहां तक यह जीव इनको निभा सकेगा। अन्त में सीधे सरल सत्य मार्ग पर इसे आना ही पड़ेगा जब यह सुखी हो सकता है। प्रभु का उपदेश ऐसे ही सप्ततत्त्व और ९ पदार्थ आदि के वर्णन का पूरक है और इस ही तत्त्वज्ञान से हम आप शान्ति लाभ ले सकते हैं। अत: यह समस्त कथन विशद है और सर्व जीवों के लिए हितकारी है। जीव में ये कर्म आते हैं तब यह जीव मोह राग और द्वेष

करता है। जितनी डिग्री में जितनी तीव्रता में यह जीव मोह राग द्वेष करता है उतनी ही अधिक स्थिति के कर्म बंधते हैं, जिन्हें कर्मबन्ध न चाहिए उनका कर्तव्य है कि वे सम्यग्ज्ञान बनाए और कषाय बंद करें। इससे कर्मों का सम्वर होगा, कर्म का आना रुक जायगा और इस ही अपने शुद्ध आत्मतत्त्व के उपयोग से पहिले के बंधे हुए कर्म खिर जायेंगे। खिरते-खिरते निकट ही कोई समय ऐसा आयगा इस सम्यग्दृष्टि जीव का कि सारे कर्म दूर हो जायेंगे।

पूजा और अभिप्राय का समन्वय—भला बतलावो तो सही जो कर्मों से अत्यन्त दूर है। निष्कर्म है, अकिञ्चन है ऐसे भगवान को तो हम पूजा वंदना करने आयें और चिन्ता यह बढ़ाये कि कैसे मेरा घर बढ़े, परिजन बढ़े, इज्जत बढ़े, यश बढ़े तो यह कितना विरुद्ध काम है। यह सब ढोंग धतूरा हुआ कि नहीं? पूजते तो हैं निर्मल को और मल संचय की धुन बनाये हैं तो वह पूजना किस काम का हुआ? कुछ तो ध्यान दीजिए। इसके पूजने का यही तो प्रयोजन है कि यह भावना बनाए कि हे प्रभो ! अपूर्व शान्ति और आनन्द की स्थिति तो तुम्हारी है। मुझे यह स्थिति कैसे कब प्राप्त होगी। शुद्ध देव की पूजा अपनी शुद्धता के लिए है यही लक्ष्य बनायें प्रभुदर्शन में। हे प्रभो ! सत्य आनन्दमय तुम ही हो। मेरे में यह आनन्द शीघ्र प्रकट हो। मेरी ऐसी ही सद्बुद्धि बने कि मैं मोह रागद्वेष से रहित होकर ऐसे ही उत्कृष्ट आनन्द को पाऊँ। इन सब परमार्थभूत तत्त्वों का उपदेश प्रभु ने किया है। उनके निर्मल और स्पष्ट वचन हैं। ऐसे तीनों लोक का हित करने वाले उपदेश के नायक जिनेन्द्रदेव को मेरा बारम्बार नमस्कार हो। इस प्रकार मंगलाचरण में कुन्दकुन्दाचार्य देव निर्दोष प्रभु का ध्यान कर रहे हैं।

सर्वभाषामयता—भगवान की वाणी स्पष्ट रहा करती है। मुख्य भाषाएं ६ हैं। कर्नाटिकी, मागधी, माड़वी, लाट, शौण और गुजरात। इन ६ भाषावों में जरा विशेष-विशेष फर्क डालकर इनमें सम्बंधित तीन भाषाएं और हो गयी हैं। जैसे कर्नाटिकी, तैलगू और तमिल आदि मिलती जुलती हैं, ऐसी प्रत्येक बड़ी भाषा में तीन-तीन भाग हैं, यों १८ तो महा भाषायें हैं और १८ मुख्य भाषावों में सम्बंधित छोटी-छोटी ७०० भाषाएं हो गयी हैं। इन ७०० भाषावों के अन्दर बहुत सी भाषावों के रूप में एक साथ सभी जीव अपने-अपने भव में भगवान की वाणी का स्पष्ट अर्थ ग्रहण करते हैं इसलिए प्रभु की वाणी अत्यन्त स्पष्ट है। भाषाएं कभी-कभी समय पाकर इतना अदल बदल बना देती हैं कि एक नई भाषा बन जाया करती है।

सर्व भाषा में स्पष्टता—आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व की यह बात कही जा रही है कि ऐसी-ऐसी भाषाएं थी, और किसी-किसी के मत से तो भगवान महावीर स्वामी को हुए १४-१५ हजार वर्ष हुए। भगवान महावीर स्वामी के समय के सम्बन्ध में दो तीन धारणाएं हैं जैसे धवला में उल्लेख किया है, एक सिद्धान्त से तो १४-१५ हजार वर्ष हो जाया करते है। इस सिद्धान्त से तो ५-६ हजार वर्ष रह गये हैं पंचम काल के। और मुख्य तो ढाई हजार वर्ष ही प्रसिद्ध है। अब तो नई-नई प्रत्येक भाषाएं हो गयी हैं। सर्वजीवों को भगवान की वाणी उन-उनकी भाषा में स्पष्ट ज्ञान कराती है इसलिए प्रभु का वाक्य स्पष्ट है।

सर्वहितकारिणी वाणी—प्रभु की वाणी तीन लोक का हित करने वाली मधुरता को लिए हुए है। प्रभु की वाणी सब आत्मावों के हित के लिए है जहां मनुष्यों को उपदेश देकर ज्ञान और वैराग्य की बात में बढ़ाकर मनुष्यों के हित की बात भरी है वहाँ मनुष्यों को दया का उपदेश देने के कारण जो कीड़ा मकोड़ा और स्थावरों की भी रक्षा होती है तो भगवान की वाणी उन कीड़ों मकोड़ों के हित के लिए भी हुई। यों प्रभु की वाणी समस्त आत्मावों के लिए हितकारी होती है। भगवान की दिव्यध्वनि में वर्ण और अक्षर हम आप जैसे नहीं निकलते हैं। ऐसे वर्ण अक्षरों का निकलना राग और विकल्प बिना सम्भव नहीं है। इसलिए प्रभु की वाणी निरक्षर बतायी गयी है। 'जिसकी धुन है ओंकार रूप, निरअक्षरमय महिमा अनूप' जिसकी ध्वनि में गम्भीर ॐ की आवाज है।

प्रभु की वीतरागता—कहां तो प्रभु की इतनी वीतरागता दर्शायी गयी है और कहां लोग यह कहते हैं कि प्रभु लोगों के पीछे भागते फिरते हैं, उनको प्रभु बचाते हैं, उनकी रक्षा करते हैं। कहीं छिपे-छिपे कर रहे हैं, कहीं प्रकट कर रहे हैं, ये सब खेल कराये जाते हैं। भगवान ऐसे कोई खेल नहीं करते हैं पर भक्तजन कल्पना में भगवान के ऐसे खेल कराया करते हैं। प्रभु में तो इतनी उत्कृष्ट वीतरागता है कि वह हम आपकी तरह वचन अक्षरों से बोलते तक भी नहीं हैं। वाणी से अक्षरों से बोले तो उसमें राग और विकल्प सिद्ध होता है। कोई प्रश्न करे और प्रभु उस प्रश्न का उत्तर दें तो यह तो एक राग की बात हुई। जब किसी चर्चा में आनन्द माना है तभी तो सुनेंगे और फिर उसका जवाब दें तो कुछ प्रेम है आपसे प्रीति है, वात्सल्य है तभी तो जवाब देते हैं किन्तु प्रभु में न राग है न द्वेष। अब वे न किसी का प्रश्न सुनते हैं और न किसी को उत्तर देते हैं। प्रभु का स्वरूप तो यों समझो जैसे हम मन्दिर में पाषाण आदिक की मूर्ति देखते हैं तो वह मूर्ति न कुछ बोलती है न उठती है, हम आपको ऐसी मूर्ति दिखती है जैसे मानो कुछ चेष्टा न करती हो, ऐसे ही प्रभु भी कोई राग भरी चेष्टा नहीं करते। सिर्फ इतना अंतर समझ लो कि मूर्ति से दिव्यध्वनि नहीं खिरती और प्रभु के दिव्यध्वनि खिरती है।

प्रभु की चरम निर्दोषता—प्रभु से कोई कुछ बात करें, निजी व्यवहार करें ऐसा नहीं है, पुराणों में जो आता है—श्रेणिक ने भगवान से यों प्रश्न किया और उन्होंने यह उत्तर दिया, तो ऐसा नहीं होता। श्रेणिक ने प्रश्न किया गौतम गणधर से। उत्तर दिया गौतम गणधर ने। किन्तु जिसकी समाज में कोई पहुंच है नाम उसी का लिया जाता है जो बड़ा है, जिसका मंडप है, जिसकी सभा है, उसमें भगवान के गणधर से कोई पूछे तो कहा यों जायगा कि भगवान से पूछा और भगवान ने उत्तर दिया, एक बात। दूसरी बात यह है कि श्रेणिक ने भगवान से ही प्रश्न किया हो तो वहाँ भगवान की दिव्यध्वनि सुनकर श्रेणिक को अपने आप अपनी भाषा में उत्तर मिल जाता है किन्तु यह कहा जा सकता है कि श्रेणिक ने भगवान से प्रश्न किया और प्रभु ने उत्तर दिया। वीतरागता में आंच रंच भी नहीं आ सकती। ऐसे ही अपने को उनके बारे में सोचो तो बात ठीक बैठ सकती है।

प्रभुदेह की सहज ध्वनि—प्रभु की ध्वनि जब खिरती है उस ध्वनि में जैसे अन्य अंगों से ध्वनि निकलती है इस ही प्रकार मुख से भी निकलती है। वह ओंठ चलाए, ओंठों से बोलें, मुंह चलाए यह बात नहीं होती। उनका उपदेश किसी वाञ्छा को लेकर नहीं होता अथवा वे उपदेश किसी इच्छा से नहीं किया करते हैं। उनकी वाणी में पूर्वापर कहीं दोष नहीं है। कोई यथार्थ घटना का वर्णन करें तो उसे कहीं न हिचक आयेगी, न सोचना पड़ेगा और न कभी पूर्वापर विरोध आयेगा। कोई किसी छोटी घटना को किसी अन्य रूप में पेश करना चाहे तो उसे कोई जगह अटक भी आयेगी। सोचना पड़ेगा और उसमें पूर्वापर विरोध भी आयगा। पहिले क्या कहा था और अब क्या कह रहे हैं। प्रभु वीतराग हैं वैसा ही उनकी दिव्यध्वनि में वर्णन है, इस कारण कोई दोष नहीं हैं। जैसे हम आपकी वाणी में स्वासोच्छ्वास के कारण कहीं क्रम रुक जाता है। कोई लगातार ५ मिनट बोल नहीं सकता, आधा मिनट बोलें फिर रुके फिर बोले बिना श्वास के बाहर किए कुछ भी बोला नहीं जा सकता। केवल बोलते रहने में एक मिनट में ही दम घुटने लगती है। श्वास ले ली फिर ३०-४० सेकण्ड तक बोलते रहते हैं। पर भगवान के तो दिव्यध्वनि खिरते रहने का ६ घड़ी लगातार, मेघगर्जनावत् प्रभु की दिव्यध्वनि खिरती रहती है। ६ घड़ी सुबह, ६ घड़ी दोपहर, ६ घड़ी सायं और ६ घड़ी रात को भी दिव्यध्वनि खिरती है। अगर रात को भी दिव्यध्वनि खिरती है तो वह उनके बोलने का दोष नहीं है क्योंकि उनके तो सर्वांग ध्वनि खिरती है। उनके तो शरीर का लगाव नहीं रहा, यहाँ तो शरीर का बन्धन है। भव्य जीवों की भक्ति है और पुण्य प्रकृति का उदय है।

प्रभुदर्शनमहिमा—जहां प्रभु विराजे हुए हैं उस स्थान के निकट जो जीव पहुंचता है, वह समस्त संकटों से छूटकर एक आनन्द के स्थान में पहुंचता है उसे चिन्ता आदि नहीं रहते हैं, और कोई साधारण रोग हो, बुखार हो, सिर दर्द हो तो भी दूर हो जाता है। अब किसी की टाँग टूटी हो, सम्भव है कि वह भी ठीक हो जाती हो। तो जिसकी इतनी महिमा है, जिसकी वाणी में इतना ओज है कि जिसका ध्यान करके भक्ति का प्रारम्भ ही किया जाये तभी से अनेक चमत्कार होने लगते हैं। ऐसी प्रभु की वाणी विशद है। तीन लोक का हित करने वाली है और मधुर है।

सर्वज्ञता—प्रभु अनन्त गुण सम्पन्न है, हमारे ज्ञान गुण की सीमा है कि कितना भूतकाल और भविष्यकाल की जान सके, कितने क्षेत्र तक की जान सके। यह सीमा है, क्योंकि आवरण साथ लगा है रागद्वेष साथ है। कर्मोदय साथ है, किन्तु प्रभु भावकर्म और घातियाकर्मों से दूर हो गये हैं। अत: उनका ज्ञानगुण असीम हो गया है। वह तीन काल की समस्त बातें जानते हैं। देखिये जानने का जब हम उद्यम करें तब कुछ हो जाय प्रकट, मगर पूर्ण प्रकट नहीं हो सकता। हम जानने का उद्यम छोड़ दें पूरी तरह से तो ऐसी स्थिति में हमारा ज्ञान हमारे केन्द्र पर आ जायगा और उस पुरुषार्थ में यह बल है कि मेरा ज्ञान असीम फैल जाता है। भगवान को अनन्त ज्ञानगुण वाला बताने से यह जाहिर हो जाता है कि प्रभु की सेवा में बड़े-बड़े ऋद्धिधारी गणधरदेव आदि इन्द्र भी पहुंचते हैं और उनकी वंदना करते हैं। ऐसे ये संसार से विमुक्त हुए जिनेन्द्रदेव की हम आपको शरण है। जिनेन्द्र किसे कहते? संसार के अनेक समस्त विषय व्यसन विपरीत संकटों को जो जीतते उसे जिन कहते हैं, और जिन को जिनेन्द्र कहते हैं। इस गाथा में प्रभु जिनेन्द्र को नमस्कार किया गया है।

प्रभुवन्दन में नयदृष्टियां—मैं भगवान को नमस्कार करता हूं ऐसी दृष्टि में उस भक्त और भगवान इन दो का सम्बन्ध बना है और दो का सम्बन्ध बनकर जो कथन होता है उसे व्यवहारनय कहते हैं। व्यवहारनय से भक्त भगवान का वंदन करता है और निश्चयनय से क्या करता है? निश्चयनय एक को निरखता है, व्यवहारनय दो को निरखता है। निश्चयनय से भक्त क्या कर रहा है इसका उत्तर पाने में यह कोशिश न करें वर्णन करने का कि वह भगवान का कुछ कर रहा है यों तो व्यवहारनय बन जायगा। यह भक्त भगवान के सम्बन्ध में अपने ज्ञान परिणमन से ज्ञान की महिमा जान रहा है और उस गुण महिमा को जानकर अपने में एक अद्भुत आह्लाद उत्पन्न कर रहा है। भक्त सुख उत्पन्न कर रहा है तो उसमें जो प्रमोद हुआ उस आनन्दरूप परिणमन कर रहा है। यह है अशुद्ध निश्चयनय से भगवान की वंदना। अशुद्ध निश्चय क्यों कहा कि वह जो खुशी होती है, गुणों में प्रमोद होता है वह प्रमोद भी अशुद्ध अवस्था है। शुद्ध अवस्था तो रागद्वेष रहित केवल ज्ञानप्रकाश की होती है और उस समय किसी सम्यग्दृष्टि भक्त के जिस अंश में यह शुद्धोपयोग प्रकट होता है इस शुद्धोपयोग में बने रहने का नाम है एक देश शुद्ध निश्चयनय की वंदना। इन तीन प्रयोग से तो वंदना की बात कही जाती है और जो सर्वदेश शुद्ध निश्चयनय है उसमें वंदना ही नहीं है, क्योंकि सर्वदेश शुद्ध हैं अरहंत भगवान। वे वंदना का कहां विकल्प करते हैं। परम शुद्ध निश्चयनय में भी वंदना नहीं है। परम शुद्ध निश्चयनय वस्तु के स्वभाव को देखता है, उसमें विकल्प ही नहीं हैं। वहाँ वंदना ही क्या होगी। नयों की दृष्टि से वंदना इस तरह होती है। इस वंदना से हम यह भाव ग्रहण करते हैं कि जैसे अनन्त ज्ञान आदिक गुणों से युक्त प्रभु कृतकृत्य और आनन्दमय हुए हैं और उनका जैसा शुद्ध जीव हित कार्य है, जैसी उनकी आत्मभूमि है यह ही वास्तव में उपादेय है, और ऐसा होना हमारे स्वभाव में पड़ा हुआ है।

वक्तव्य का दिग्दर्शक प्रारंभिक बोध की आवश्यकता—मंगलाचरण में केवल मंगल की ही बात नहीं निरखना चाहिए, किन्तु इसमें यह भी देखो कि इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में जो मंगलाचरण रूप की बात कही

गयी है उनमें इतनी बात भी जाहिर होती है इसमें निमित्त क्या है, इसका हेतु क्या है इत्यादि। जैसे इस ग्रन्थ का प्रारम्भ किया है तो आपको जब तक ग्रन्थ के निमित्तं हेतु नाम, परिमाण व कर्ता कौन है, क्या है, बात न ज्ञात हो तो इस ग्रन्थ के बारे में कुछ विशद परिज्ञान नहीं हो सकता। जैसे अपने शरीर के बारे में जितनी अधिक बातें ज्ञात हो उतना ही भेद विज्ञान में इसे मदद मिलती है। मल, मूत्र, हड्डी, पीप, कैसे-कैसे नसाजाल, अंग अवयव ऐसी विचित्रता अच्छी प्रकार ज्ञात हो तो लो ऐसे इस ढांचे से भिन्न यह ज्ञान प्रकाशमात्र जीव द्रव्य है ऐसा सोचने में विशेष स्पष्टता होती है। यों ही किसी उपदेश के बारे में मंगल सहित और बातें ज्ञात हों तो उस ग्रन्थ की महिमा और उस ग्रन्थ का वक्तव्य जानकर स्पष्टता रहती है। इस बात का भी वर्णन किया जायगा।

मंगल—अब प्रथम मंगल की बात देखिये। मंगल नाम है जो मंग को ला देवे। मंग मायने सुख। जैसे लोग कहते हैं हम तो चंगे मंगे हैं। चंगे मायने स्वस्थ, मंगे मायने सुखी। जो मंग को ला देवे उसे मंगल कहते हैं, अथवा जो पापों को गला देवे पाप गालयति इति मंगल। लोग नमस्कार करते हैं तो तीन प्रकार के देवतावों में से नमस्कार करते हैं। कोई देवता इष्ट है, कोई अधिकृत है, कोई देवता अभिमत है। इष्ट देवता के मायने वह जो जिसे अपने सुख में रुच गया है, जो इसे लाभप्रद है वह है इष्ट देवता। अधिकृत देवता का अर्थ है कि जो अपनी कुल परम्परा से चला आया है। लोक परम्परा में प्रत्येक घर से कोई एक विशिष्ट देवता मान लिया जाता है कि पहिले उसकी मनौती कर लें वह अधिकृत देवता है और अभिमत देवता वह है जिसे श्रद्धापूर्वक मानते हैं अपने कल्याण के लिए। मानों जीवों को तो जिनेन्द्रदेव ही इष्ट देवता हैं। यह ही अधिकृत देवता हैं और यह ही अभिमत देवता हैं।

मंगलाचरण का प्रयोजन व विधान—ग्रन्थों की आदि में मंगलाचरण करने के अनेक प्रयोजन होते हैं। प्रथम तो यह है कि यदि किसी प्रभु का स्मरण किया तो इसमें नास्तिकता नहीं रहती। श्रद्धा तो है, किसी देव की ओर दृष्टि तो है, जो यथार्थ देव हो उस पर दृष्टि पहुंचे तो नास्तिकता दूर हो जाती है। दूसरी बात शिष्टाचार की पूरी होती है। तीसरी बात पुण्य की प्राप्ति होती है, और चतुर्थ बात है उस कार्य की निर्विघ्न प्राप्ति होती है। यद्यपि अच्छा काम करने के लिए कोई मंगलाचरण भी करे तो करे तो भी ठीक है। कुछ गलत नहीं है, क्योंकि अच्छा काम तो स्वयं मंगलरूप है, उस मंगल के लिए क्यों मंगलाचरण करना। लेकिन जब श्रद्धा विशेष होती है तो मंगलों का काम करने के लिए भी मंगलाचरण किया जाता है। जैसे सूर्य स्वयं प्रतापी और तपस्वी है लेकिन नन्हासा दीपक जलाकर सूर्य की आरती लोग उतारते हैं। कोई पूछे कि भाई सूर्य तो स्वयं तेजस्वी है। तुम उसके आगे जरासा दीपक क्यों जलाते हो? श्रद्धा तपस्वी सूर्य के आगे भी दिया जलवा देती है। समुद्र पानी से भरा हुआ है। फिर भी लोक समुद्र के बीच समुद्र का ही जल समुद्र को ही चढ़ाकर पूजा करता है तो वह भक्ति की बात है। तो ऐसे ही मंगलीक जितने कार्य हैं उन कार्यों में भी मंगलाचरण किया जाता है। तो यह ग्रन्थ सारा मंगलरूप है, क्योंकि इसमें मोह संकटों से छूटकारा पाने का उपाय बताया है। इस ग्रन्थ को बनाने के पहिले आचार्यदेव यह मंगलाचरण कह रहे हैं।

त्रिविध नमस्कार—यहाँ जिनेन्द्रदेव को ग्रन्थकर्ता ने नमस्कार किया है। नमस्कार तीन तरह से होता है—एक आशी: नमस्कार, एक वस्तु नमस्कार और एक नमस्कार के रूप में नमस्कार। आशी: नमस्कार तो आशीर्वाद लेने अथवा आशीर्वाद देने का नमस्कार है। पर आशीर्वाद देने की हालत में जिनके प्रति पूज्यता और बड़प्पन का भाव रहता है उनको नमस्कार किया जाता है। हे जिनेन्द्र ! जयवंत हो। तो भगवान को अपने लोग आशीर्वाद दे रहे हैं हे भगवान ! जयवंत हो। भगवान तो जयवंत हैं ही, उनको जयवंत होने का जो आशीर्वाद जो भक्त देता है, वह पूज्यता से प्रभावित होकर देता है, छोटा मानकर नहीं देता है। उनके गुणों को निरखकर मन ही मन प्रसन्न होना यह भी नमस्कार है और हाथ जोड़कर सिर नवाकर वचनों द्वारा विनय प्रकाशित करना यह भी नमस्कार है।

मंगलाचरण में अनेक प्रतिबोधन—मंगलाचरण से अनेक बातें और भी स्पष्ट हो जाती हैं। यह ग्रन्थकर्ता किस पद्धति से किस विषय को कहेगा यह बात उसके मंगलाचरण में ही झलक जाती है। जिस देवत्व को नमस्कार किया जा रहा हो उसके अनुकूल ही व्याख्यान होगा, यह बात पहिले से जंच जाती है। मंगल दो तरह के होते हैं—एक मुख्य मंगल और एक गौण मंगल। मुख्य मंगलाचरण तो जो मंगलमय आत्मा है, संतोष पूर्ण विकासमय उन दोनों के बीच विनय स्मरण ये सब मुख्य मंगल है और लोक में जो बात मंगलरूप से प्रसिद्ध है, जैसे मंगल कलश रखना, वंदनवार दरवाजे पर बनाना ये सब गौण मंगल है। जैसे पूजापाठ विधानों के अवसर में लोग मुख्य मंगल भी अनेक करते हैं। सजावट करना, मंगलकलश उत्पन्न करना आदि ये गौण मंगल भी होते हैं, और मुख्य मंगल तो है ही। मुख्य मंगल न पाकर तो इस गौण मंगल की कीमत नहीं है।

मंगलाचरण के लाभ—मंगलाचरण मंगलरूप अपना आचरण या मंगलमय प्रभु का स्मरण यह तो ग्रन्थ की आदि में ही क्या करना, मध्य में भी करना, अन्त में भी करना, जब चाहे तब करना, और मंगलाचरण की जरूरत उत्कृष्ट धार्मिक कार्यों में उतनी अधिक नहीं है जितनी अन्य कामों में प्रसंग में है। धार्मिक कार्य तो स्वयं मंगलरूप हैं। घर गृहस्थी के अनेक काम—दुकान करना, मकान बनवाना, विवाह कार्य प्रारम्भ करना और घर में अनेक काम होते हैं उन सब कामों में उस प्रभुस्मरण की अत्यन्त अधिक आवश्यकता है। मंगलमय का आश्रय होने से अनेक विघ्न दूर हो जाते हैं, क्षुद्र देव वहाँ विघ्न नहीं कर सकते हैं। अभीष्ट तत्त्व की प्राप्ति होती है प्रभु के गुणों का कीर्तन करने से। कोई छात्र विद्याभ्यास करता है तो उसे विद्या प्रारम्भ के पहिले भी मंगल करना चाहिए, जिससे कि उसके कार्य में कोई विघ्न न आये। मध्य-मध्य में भी मंगलाचरण करना चाहिये ताकि प्रगति हो और जब विद्या का फल पाया है तो उस कृतज्ञता में भी मंगलाचरण करना चाहिए।

मंगलाचरण का उद्देश्य व प्रतीक—मंगलाचरण का उद्देश्य है कि उस मंगलमय ज्ञायकस्वरूप निज अंतस्तत्त्व को पहिचानूँ, उसकी ओर दृष्टि बनाऊं, यही मात्र एक मुख्य प्रयोजन है, जो इस प्रयोजन की ओर ले जाने का प्रतीक हो, जिसके देखने से हमें अपने आत्मा की सुध हो वह सब लोक के मंगल कहे जाते हैं। जैसे पूर्ण कलश पानी से भरा हुआ हो वह घड़ा यह याद दिलाता है कि जैसे यह जलपूर्ण कलश भरपूर बीच में जहां रंच भी शून्य नहीं रहा इस प्रकार भरा हुआ है ऐसे ही यह आत्मा ज्ञानरस से पूर्ण भरा हुआ है, बीच में एक प्रदेश मात्र भी शून्यता नहीं है तो आत्मा की सुध दिलाने का कारण हो सकने से यह जल से भरा हुआ कलश माना जाता है।

मंगल वन्दनमाला—वंदन माला जो घर पर लटकायी जाती है वह शब्दमात्र से स्मरण दिलाती है। उस वंदनमाला के नीचे से जाय अर्थात् घर में प्रवेश करे तो जिनेन्द्र देव का वंदन करें। जब नीचे से निकले तब प्रभु की वंदना करना चाहिए और जब घर से बाहर निकले तो वंदनमाला के नीचे से ही निकलना होगा तब प्रभु की वंदना करना चाहिए, इसी कारण अपने घर के मुख्य दरवाजे पर वंदनमाला लटकाने का अब तक रिवाज है। अब आधुनिक ढंग में तो लोग नहीं लटकाते हैं, उससे पत्ते गिरेंगे, कभी कुछ कूड़ा होगा या कोई भाई पुराने टाइप के लोग कहेंगे बुद्धू कहेंगे इससे अब दरवाजे पर वंदनमाला नहीं लटकाते, पर यह पुराना रिवाज है और यह स्मरण कराती है कि तुम घर में प्रवेश करो तो प्रभुवंदन करके करो। घर से बाहर निकलो तो प्रभु वंदन करते हुए निकलो।

छत्रादिक मंगल—छत्र को भी लोग मंगल कहते हैं। यह छत्र हमें सिद्धालय स्मरण कराती है। सिद्धशिला का आकार छत्राकार है और उसके ऊपर सिद्ध भगवान विराजे हैं, तो सिद्ध प्रभु के स्मरण का एक जरिया होने से क्षेत्र भी लोक में मंगल माना जाता है। किन्तु यह सब गौण मंगल है। मुख्य मंगल तो

अपनी आंतरिक श्रद्धा से जो प्रभु के गुणों का स्मरण होता है वह कहा जाता है, उसमें भी प्रयोजन प्रभु का स्मरण है। और साक्षात् मंगल भी करते हैं उसमें भी प्रयोजन प्रभु के स्मरण का है।

निबद्ध मंगल—इस ग्रन्थ में जो यह मंगलाचरण है यह निबद्ध मंगल हैं। किसी ग्रन्थ को बताने से पहिले नवीन बनाकर भी किया जा सकता है। या अन्य प्रसिद्ध किसी ग्रन्थ का मंगलाचरण करके भी ग्रन्थ प्रारम्भ किया जा सकता है। जो स्वयं मंगलाचरण बनाकर ग्रन्थ का प्रारम्भ किया जाय उसे निबद्ध मंगल कहते हैं, और जो किसी ग्रन्थ का मंगलाचरण करके अपनी रचना की जाय उसको अनिबद्ध मंगल कहते हैं।

मंगलाचरण की आवश्यकता—कोई जिज्ञासु ऐसा प्रश्न कर सकता है कि मंगलाचरण करने की जरूरत क्या है? जो बात कहना है, उसे तुरन्त शुरू कर देना चाहिए। उसके उत्तर में कुछ लोग यह कह सकते हैं मंगलाचरण करने से विघ्नों का नाश होता है। इस पर शंकाकार कह रहा है कि कोई मंगलाचरण करते हैं तो उनको भी विघ्न आ जाता है और कोई मंगलाचरण न करे तो उनको भी विघ्न नहीं आता जिस काम को उन्होंने ठाना है उसमें वे सफल हो जाते हैं इसलिए नमस्कार मंगलाचरण करने की क्या जरूरत है? समाधान उसका यही है कि मंगलाचरण में पुण्य की वृद्धि है और कषायों पर विजय होती है जिससे समता भाव प्रकट होता है और उस समता परिणाम के साथ जिस रचना का हम प्रारम्भ करेंगे उसमें विघ्न न आयेंगे। विघ्न प्राय: दूसरे लोगों से नहीं आता है, किन्तु खुद के चित्त में अधीरता हो जाय, खुद का ही चित्त किसी कषाय से भर जाय तो विघ्न आया करते हैं। तो मंगलाचरण से कषायों की मंदता और समता का विकास पैदा होता है, इस तरह मंगलाचरण विघ्नों का नाशक है, फिर मंगलाचरण करके तो पुण्यबंध किया। अब कदाचित् किसी कार्य में विघ्न आ जाय तो वह पूर्वकृत पापों का ही प्रसाद है। यों तो देव नमस्कार और पात्र दान पूजा आदि कर्तव्यों के करने पर भी विघ्न हो जाते हैं। वहाँ यह जानना चाहिए कि यह पूर्वकृत पापों का ही फल है, धर्म दोष नहीं है। और जब नमस्कार दान पूजा आदि किसी भी प्रकार का धर्म न किया जा रहा वहाँ भी उनका कार्य निर्विघ्न होता हुआ दिखता है तो समझना चाहिए कि उनका पूर्वजन्म कृत धर्म का फल है पाप का फल नहीं है। यों मंगलाचरण आवश्यक है। उसी लोकनीति को लेकर कुन्दकुन्दाचार्य देव ने भी इस शास्त्र की आदि में यह मंगलाचरण किया है।

ग्रन्थ का निमित्त—हाँ यह संकल्प किया गया था कि ग्रन्थ के बारे में ६ बातों पर प्रकाश अवश्य होना चाहिए। एक मंगल दूसरा निमित्त, तीसरा हेतु, चौथा परिमाण ५वां नाम और छठवां कर्ता। इन ६ बातों में से मंगल का तो वर्णन किया गया है, अब निमित्त का वर्णन सुनिये। यह ग्रन्थ रचना जो की जा रही है। इस शास्त्रों की जो रचना की जा रही है इसका निमित्त क्या है? वीतराग सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि भी एक शास्त्र है, वह महाशास्त्र है, उसका कारण तो है भव्य जीव का पुण्य और उनकी ही बाँधी हुई जो तीर्थंकर प्रकृति आदिक पुण्य वर्गणाएं हैं उनका उदय। तो मूल निमित्त तो भव्य जीव का पुण्य है और हम लोगों के बीच जो शास्त्र आए हैं इन शास्त्रों का निमित्त गणधरदेव हैं। उनका निमित्त है भगवान की दिव्यध्वनि। इस तरह से इस विशुद्ध निमित्त की परम्परा है।

ग्रन्थ का हेतु—इस ग्रन्थ की रचना में कारण क्या है? तीसरी बात पूछी जा रही है, तो कभी ऐसा होता है कि कोई साधु महाराज किसी साधु पर या श्रावक पर प्रसन्न होकर उसके उद्धार के अर्थ, उसके प्रतिबोधन के अर्थ शास्त्र की रचना करते हैं वे भी लाभ उठाते है। यह पंचास्ति नामक ग्रन्थ कुन्दकुन्दाचार्य देव ने शिवकुमार महाराज को समझाने के लिए बनाया है। जैसे ज्ञानार्णव की शास्त्र की रचना भर्तृहरि के प्रतिबोध के लिए शुभचन्द्राचार्य ने बनाया है, तो यह इसका निमित्त हुआ।

ग्रन्थ का फल—अब इसके बनाने का प्रयोजन अथवा फल क्या है? फल २ प्रकार के हुआ करते हैं—एक प्रत्यक्ष फल और एक परोक्ष फल। ग्रन्थ का प्रत्यक्ष फल तो यह है कि अज्ञान दूर हो जाय। ग्रन्थ का वक्तव्य सुनने से उसी समय क्या मिलता है? अज्ञान दूर हो गया। वस्तु के स्वरूप का वर्णन किया तो वस्तु के विषय में जो अज्ञान लगा था वह मिट गया। यह तो प्रत्यक्ष फल है और परोक्ष फल अर्थात् आगे होने वाला फल मोक्ष और स्वर्ग आदिक है। किसी को स्वर्ग की प्राप्ति होती है किसी को मोक्ष की प्राप्ति होती है। जिसको अब स्वर्ग की प्राप्ति हुई है उसको कुछ समय बाद मोक्ष की प्राप्ति हो जायगी। यह तो मोक्ष हैं परोक्ष फल और केवल स्वर्ग की प्राप्ति ही फल नहीं। मनुष्यों में भी सम्राट चक्री ऊंचे-ऊंचे कोई नायक हो जाना यह भी इस ज्ञान का फल है। इस तरह हेतु का वर्णन हुआ।

ग्रन्थ का परिमाण और नाम—परिमाण क्या है, अर्थात् कितने श्लोकप्रमाण इस ग्रन्थ की रचना है। इस पंचास्तिकाय में कुल १७५ गाथाएं हैं। १७५ गाथा प्रमाण इस ग्रन्थ का प्रमाण है, इस ग्रन्थ का नाम रक्खा है पंचास्तिकाय। नाम दो प्रकार से रक्खे जाते हैं। जिसका नाम रक्खा जा रहा है उसमें जो गुण हों उस गुण के अनुरूप नाम रखना और एक अपनी इच्छा से नाम रख देना। जैसे कोई है तो बड़ा कमजोर और नाम रख दिया बहादुर सिंह तो यह इच्छा से रक्खा हुआ नाम है। जैसे गुण है वैसा नाम धरना अन्वर्थक है। जैसे सूर्य का नाम तपन रक्खा है। सब कुछ उससे तप जाता है, सड़क, मकान आदि सो यह अन्वर्थक नाम है। कोई है तो भिखारी और नाम रख दिया लक्ष्मी चंद अथवा कोई हे तो धनिक और नाम रख दिया फकीर चंद तो यह अन्वर्थक नहीं हैं। इस ग्रन्थ का नाम है पंचास्तिकाय। यह इच्छानुकूल रक्खा हुआ नाम नहीं है, किन्तु अन्वर्थक नाम है, इसमें ५ अस्तिकायों का मुख्यरूप से वर्णन है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश इनका मुख्यरूप से वर्णन है, कालद्रव्य का भी इसमें वर्णन हैं पर मुख्यरूप से जीव के लिए वर्णन करना था जीव अस्तिकाय है। अत: इसका नाम सब द्रव्यों का वर्णन करके भी अस्तिकाय की मुख्यता से पंचास्तिकाय है।

ग्रन्थ का कर्त्ता—अब छठवीं चीज है कर्त्ता। इसका कर्त्ता कौन है। कर्त्ता ३ प्रकार के होते हैं। मूल कर्त्ता, उत्तर कर्त्ता और उत्तरोत्तर कर्ता। मूल कर्त्ता तो इस काल की अपेक्षा श्री वर्द्धमान भगवान है। आज जो कुछ भी जैन शासन का तीर्थ चल रहा है यह सब महावीर प्रभु का है। कर्त्ता महावीर स्वामी हुए। करीब ढाई हजार वर्ष हो गए हैं तथापि जब तक ऐसा यह धर्म चलेगा तब तक तीर्थ महावीर स्वामी का कहलायेगा। यह पंचम काल है इसके अन्त तक जैन शासन रहेगा।

कुशल—इसके बाद छठा काल आयगा। छठे काल में लोक में बिल्कुल अनाचार फैल जायगा। अग्नि नहीं रहेगी। रोटी बनाने का सिस्टम खतम हो जायगा। फिर लोग कैसे गुजारा करेंगे? तो पशु लोग कैसे गुजारा कर लेते हैं। क्या कभी गाय, बैल अपना पेट भरने के लिए रोटी पकाते है? तो जैसे पशुवों का जीवन चलता है वैसे ही मनुष्यों का जीवन चलेगा। मारना खाना बस यही जीवन रहेगा और इस जीवन का प्रारम्भ तो अब से ही चालू है देखिये मछलियों को, बकरा बकरियों को यों ही पकड़कर लोग मार देते हैं। ये सारी चीजें छठे काल के स्वागत की तैयारी की सूचक है। यह पंचमकाल है। इस काल के पहिले चतुर्थ काल के अन्त में महावीर स्वामी हुए, और उनकी देशना की परम्परा में यह जैन शासन चल रहा है, तो मूल कर्त्ता तो समस्त दोषों से रहित केवलज्ञान, दर्शनज्ञान, अनन्तसुख, अनन्तशक्ति से सम्पन्न भगवान महावीर हैं, और उत्तर कर्त्ता श्री गौतम स्वामी गणधर देव हैं। यह गणधर देव चारों ज्ञान के धारी थे, सातों ऋद्धियों के धारी थे। उत्तरोत्तरकर्त्ता तो अनेक आचार्य हुए हैं। इस ग्रन्थ के रचयिता श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव उत्तरोत्तर कर्त्ता कहलाते हैं। इस प्रकार इन ६ ज्ञातव्यों का वर्णन में अन्तिम ज्ञातव्य कर्त्ता का व्याख्यान किया है।

कर्त्ता की प्रमाणता से वचन की प्रमाणता—कर्ता के प्रमाण से उसके वचन भी प्रामाणिक है। कोई किसी पुस्तक को लेकर पढ़ने बैठता है तो पढ़ने वाला उस पुस्तक के पढ़ने के पहिले यह जानने की जिज्ञासा करता है कि इस पुस्तक को लिखा किसने है। बिना इस बात को जाने उसे उस पुस्तक के पढ़ने में मन नहीं लगता है। पुस्तक के ऊपर किसी अच्छे लेखक का नाम पढ़ लिया तो वह उस पुस्तक को बड़ी उत्सुकता से खरीद लेता है, क्योंकि उसके मन में बैठ जाता है कि यह अच्छी ही पुस्तक होगी। ऐसे ही धार्मिक ग्रन्थों के कर्ता का नाम मालूम हो कि इसे किसने बताया है तो यदि किसी योग्य प्रमाणिक व्यक्ति का नाम पड़ा है तब तो वह उस ग्रन्थ को छुवेगा, उसे पढ़ेगा और यदि योग्य प्रमाणिक व्यक्ति का नाम उसमें नहीं पड़ा है तो वह उसे न पढ़ेगा। कर्ता को प्रमाणिकता आने से वचनों में भी प्रमाणिकता आती है। इस प्रकार नमस्कार के रूप में यह प्रथम गाथा सम्पूर्ण हो रही है। इस मंगलाचरण के बाद अब आचार्यदेव किस बात का वर्णन करेंगे, उस वक्तव्य विषय का संकेत देते हुए द्वितीय गाथा को कह रहे हैं।

गाथा २

समणमुहग्गदमट्ठं चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाण।
एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि।।२।।

सद् वचन रत्न—वीतराग सर्वज्ञदेवों की दिव्यध्वनि परम्परा से वीतराग श्रमणजनों के मुख से निकले हुए अर्थ को अर्थात् वस्तु के प्रत्येक प्रतिपादित वचनों को सिर से प्रणाम करके मैं इस समय को कहूंगा, हे भव्य जीवो ! तुम उसको ध्यान पूर्वक सुनो। यह ऋषि संतों का वाक्य चार गतियों के दु:ख का निवारण करने वाला है, और निर्वाण की प्राप्ति का उपायभूत है। प्रणाम करने के लिए वही कहा जाता है अथवा पूजा जाता है जिसके मार्ग के अनुसार चलकर अपने को सफलता प्राप्त होती है। ये प्रभु वीतराग सर्वज्ञदेव जिनकी मूर्ति स्थापित करके हम रोज पूजते हैं, अभिनन्दन करते हैं उन्होंने जो मार्ग अपनाया था अहिंसा महाव्रत, सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत और परिग्रहत्याग महाव्रत, इन ५ महान् व्रतों से और अनेक तपश्चरणों से अपने आत्मा को संयत करके अपने स्वरूप को केन्द्रित करके जिसने आत्मविकास पाया है उन प्रभु के मार्ग पर जो चलेगा वही निहाल होगा।

सर्वज्ञोपदेश में हितकारिता के कारण—आप सर्वज्ञदेव का उपदेश इसलिए हितकारी है कि उनके उपदेश में वही बात कही गयी है जिस बात का पालन करके उन्होंने स्वयं विकास पाया है। कोई नदी को पार करके दूसरे पार पहुंच जाय तो उसको अधिकार है कि वह उस पार खड़े हुए लोगों को मार्ग का इशारा करे। इस रास्ते से चलना तो तुम इस पार आ जावोगे। जो नदी में कभी घुसा भी नहीं, देखा भी नहीं, उसे क्या अधिकार है कि मुसाफिरों को बताये कि देखो इस रास्ते से निकलना, तुम उस पार पहुंच जावोगे। प्रभु अरहंत देव और वीतराग श्रमण साधुसंत जन यह मार्ग अपनाकर उस पार पहुंच चुके व जा रहे हैं उनको अधिकार है कि हम सब संसारी प्राणियों को एक मार्ग बताये कि इस मार्ग से जावो। श्रमणों के महाश्रमण तो हैं सर्वज्ञ वीतराग और साधुसंतजन भी श्रमण कहलाते हैं। यह आगम वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन करता है। यह यद्यपि अनेक शब्द रचनावों से भरा हुआ है तो भी इसके बताने का मर्म केवल वस्तु स्वरूप है।

आप्तवचनों के आश्रय का महत्त्व—जो इस आगम के अनुसार अपनी प्रवृत्ति करते हैं उनके नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव चार गतियों का निवारण हो जाता है। अत: आगम का अध्ययन सफल है। साक्षात् फल तो यह है कि जब वस्तु स्वरूप पर दृष्टि पहुंचती है तो परतन्त्रता दूर हो जाती है, और शुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि रूप निर्वाण की प्राप्ति होती है, स्वतन्त्रता मिल जाती है। आचार्य देव कह रहे हैं कि इस ग्रन्थ में पदार्थों का स्वरूप बतावेंगे। जिस स्वरूप को सुनकर आपका उपयोग ऐसा निर्मल होगा, ऐसे विविक्त आत्मतत्त्व की ओर अभिमुख होगा कि चार गतियों का भोगना छूट जायगा। आगम में मुक्ति

का उपाय दिखाया गया है। इस आगमद्रव्य को प्रणाम करके तुम सुनो। इस शास्त्र को प्रणाम करके मैं कह रहा हूं।

समय की त्रिविधता—समय का प्रतिबोध तीन प्रकार से है शब्दसमय, अर्थसमय और ज्ञानसमय। समय का मतलब है वस्तु। वस्तु इतना शब्द बोल दिया जाय तो यह हुआ शब्दसमय। जिस समय वस्तु शब्द एक कागज पर लिखकर पूछें कि बतावो यह क्या है? तो आप क्या कहेंगे? यह वस्तु है। पर वह वस्तु तो नहीं है। वह तो लिखा हुआ है। वह शब्द वस्तु है। चीज उठाकर पूछें कि यह क्या है? तो आप कहेंगे कि यह वस्तु है। यह है अर्थ वस्तु। और वस्तु के सम्बंध में जो ज्ञान किया जाता है वह है ज्ञानवस्तु। प्रत्येक बात तीन प्रकार से होती है, शब्द, अर्थ और ज्ञान। जैसे घर, घर भी तीन प्रकार से हैं। शब्द घर, अर्थ घर और ज्ञान घर। घ और र ऐसे दो वर्ण लिखे जायें कागज पर और पूछा जाय कि बतावो यह क्या है? आप कहेंगे घर है? तो रह लो उस घर में, रोटी बना लो। अरे ! वह तो शब्द घर है, और यह जो मिट्टी पत्थर का बना हुआ है यह क्या है? यह है अर्थ घर, इसमें अर्थ क्रिया होगी। रह लो, ठहरा लो यह सब कुछ इस घर में होगा, और इस घर के बारे में जो समझ बनी है कि यह घर है ऐसी समझ का भी नाम घर है। यह समझ है ज्ञान घर।

अपना सम्बन्धित समय—अच्छा भैया ! यह बतलावो कि आपका प्रेम शब्द घर से होता है यह या अर्थ घर से होता है, या ज्ञान घर से होता है। वह प्रेम आपका शब्दघर में है क्या जो कागज में घ और र लिख दिया इसमें प्रेम हे क्या? इस शब्दघर से कोई प्रेम नहीं करता तथा वह ईंटें चूने से उठा हुआ जो घर है इस घर से तो प्रेम कोई कर ही नहीं सकता। यह आपका भ्रम है जो मानते हो कि हमारा घर से प्रेम है, इस ईंटें पत्थर से आपका प्रेम हो ही नहीं सकता, क्योंकि आप पृथक् एक आत्मपदार्थ हैं। यह घर पृथक् पौद्गलिक स्कंध है। एक पदार्थ का काम दूसरे पदार्थ में नहीं होता, आपकी जो प्रेम पर्याय है, जो भीतर में प्रेमरूप परिणमन होता है यह प्रेम रूप परिणमन आपमें हो सकता है, आपकी कोई परिणति, आपका कोई प्रेम आपको छोड़कर दूसरे वस्तु में नहीं जा सकता है। यह पदार्थ के स्वरूप की विशेषता है। तो आप अर्थ घर में प्रेम कर ही नहीं सकते। तब जितना भी आप प्रेम कर रहे हैं वह ज्ञान घर में कर रहे हैं, अर्थात् घर के बारे में जो अपने में कल्पना बनायी है उस कल्पना से आप प्रीति कर रहे हैं। ऐसे ही सभी में घटा लो। पुत्र तीन तरह के होते हैं—शब्द पुत्र, अर्थ पुत्र, ज्ञान पुत्र। जो दो टाँग का है आपके घर में, जो उछलता, मचलता है वह है अर्थपुत्र। और पु और त्र एक कागज पर लिख दिया जाय तो वह हुआ शब्द पुत्र और पुत्र के बारे में जो आपकी कल्पना हुई है, यह मेरा पुत्र है, इस प्रकरण का जो ज्ञान बना है वह है ज्ञान पुत्र। अब यह बतलावो आपको प्रेम किसमें है? शब्द पुत्र में तो है नहीं जो कागज में लिखा है, और अर्थ पुत्र से तो आप प्रेम कर ही नहीं सकते। यह आपका भ्रम है कि जो यह मानते हो कि में अर्थ पुत्र से प्रेम कर रहा हूं। आप एक स्वतंत्र पदार्थ है। यह आत्मा एक स्वतंत्र पदार्थ हैं। आपकी कोई भी परिणति, आपका द्रव्य, आपकी शक्ति, आपकी पर्याय कुछ भी आपके प्रदेश को छोड़कर बाहर नहीं जा सकती है। यह है वस्तु का अटल स्वरूप, तो आपमें जो प्रेम होता है वह प्रेम आपके चारित्र गुण की विकृत पर्याय है। वह प्रीतिरूप परिणमन आपमें ही समायेगा। आपसे बाहर किसी भी जगह आपका प्रीतिरूप परिणमन नहीं पहुंच सकता है। आप अर्थ पुत्र से कभी प्रेम कर ही नहीं सकते। चाहे आप कितना ही विकल्प करें और कितना ही आप अपना भाव बनाएं, अर्थ पुत्र में आपका प्रेम कभी हो ही नहीं सकता। फिर आप कहेंगे—वाह सारी दुनिया पुत्र से प्रेम कर तो रही है? कोई नहीं कर रहा है। एक किसी पदार्थ का ख्याल बनाकर अपने आपमें जो कल्पना जाल रचा है उस कल्पना जाल में प्रेम किया जा रहा है, दूसरे में कोई प्रेम कर ही नहीं सकता।

ज्ञान की निकटता—भैया ! आपका निकट सम्बंध इस ज्ञान से है, न शब्द से है न पदार्थ से है, पर काम तीनों से पड़ता है। शब्द घर के माध्यम से अर्थ घर बताया जाता है ज्ञानघर की प्रसिद्धि के लिए। याने उसे कल्पना जाल कैसा रुच रहा है इस बात के बताने का माध्यम शब्द है और वस्तु की ओर संकेत है। ऐसे ही इस शास्त्र में अर्थ समय का व्याख्यान होगा अर्थात् जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल इन ६ द्रव्यों का वर्णन चलेगा। किसलिए? इस एक ज्ञान की सिद्धि के लिए? हम वस्तु के स्वरूप का सही ज्ञान करें और यथार्थ जानकर परद्रव्यों से उपेक्षा करके अपने आपके निज अंतस्तत्त्व की अनुभूति करें, इस वास्ते इस ग्रन्थ में ५ अस्तिकायों और ६ द्रव्यों का वर्णन चलेगा।

आगम का प्रसाद—इस आगम के प्रसाद से हम अपने यथार्थ मर्म को जानने में समर्थ हो जाते हैं और फिर रागद्वेष रहित होकर निर्विकल्प ज्ञानस्वभाव में ठहरकर चारों गतियों के दु:खों को दूर कर देते हैं, उससे निर्वाण की प्राप्ति होती है, निर्वाण में ही अनन्त आनन्द है, इस कारण अनन्त आनन्द का कारणभूत होने से इस जैनशासन को नमस्कार करना बिल्कुल युक्त है। हमें प्रभु की भक्ति में प्रभु में साक्षात् भक्ति तो करना ही है, पर प्रभु का जो उपदेश आदिक है उसे रुचिपूर्वक सुनना यह भी प्रभु की भक्ति है और प्रभु के मार्ग पर जो चल रहे हैं ऐसे साधुसंतों की सेवा करना यह भी प्रभुभक्ति ही है, हम आपको चाहिए कि प्रभु की वाणी का प्रतिदिन कुछ न कुछ स्वाध्याय करें, सुनें और जो ग्रन्थ हमारी समझ में सुगमतया आ जायें उन ग्रन्थों का स्वाध्याय करें। क्योंकि ग्रन्थ को लेकर बैठ जाने से कोई सिद्धि न होगी, आपका दिल उचट जायगा, आप उसमें फिर उत्साहहीन हो जायेंगे। आप ऐसे ग्रन्थों का स्वाध्याय करें जिससे आपको तत्काल बोध हो और सन्मार्ग के लिए प्रेरणा मिले।

सद्वचनश्रवण का लाभ—एक कोई पुरुष जैन धर्म से ईर्ष्या रखने वाला यह नियम बनाये था कि मैं कभी भी जैन ग्रन्थों की बात न सुनूँगा। अपने घर से बाजार के रास्ते में जाने से एक जैन मंदिर पड़ता था। वहाँ प्राय: सुबह के समय शास्त्र होता था। एक दिन वह बाजार जा रहा था तो जैसे मन्दिर के सामने कानों में अंगुलि लगाकर निकलता था वैसे ही उस दिन भी निकल रहा था, ताकि कोई शब्द न सुन पड़ें। समय की बात कि उसके पैर में एक कांटा लग गया। उस कांटे को हाथ से निकालने के लिए वह बैठ गया। कानों से अंगुलि हटा ली तो उसे कुछ शब्द सुनने में आ गए—क्या? देवतावों के शरीर की छाया नहीं पड़ती है। भूतप्रेत आदिक भी देवता हैं इनके शरीर की छाया नहीं पड़ती। जैसे अनेक लोग धूप में प्रकाश में चलते हैं तो छाया पड़ती है ऐसी छाया उनके नहीं पड़ती, इतनी बात उसने सुन लिया और आगे बढ़ गया। भाग्य की बात कि उसी दिन रात में उसके घर चार चोर आए चोरी करने और वे भूतप्रेत जैसा चेहरा बनाकर आये यह जताते हुए कि हम भूत हैं। पहिले तो वह डरा लेकिन बाद में उसने देखा कि इतनी तो छाया पड़ रही है, ये भूत नहीं हैं, ये तो चोर हैं। वह बलवान तो था ही। डंडा उठाया और सब चोरों को भगा दिया। तो वह सोचता है कि एक दिन जैन शास्त्र के कुछ शब्द कान में पड़े तो उसके फल में आज हमने अपनी सम्पदा की रक्षा कर ली, नहीं तो आज पूरे लूट जाते। हम तो भूत के डर से घर छोड़कर बाहर होते और ये सब कुछ लूट ले जाते। तो जैनशास्त्रों को हमें प्रतिदिन सुनना चाहिए उससे हमें अनेक लाभ होंगे। फिर उसने जैन शासन ग्रहण किया और प्रतिदिन शास्त्र सुनने लगा।

जिनशासन का अपूर्व लाभ—अब आप पूछेंगे कि जैन शासन के जैन आगम के सुनने से और अधिक लाभ क्या होगा, दुकान चल रही है, सब काम अच्छे चल रहे हैं, और लाभ क्या होगा, अरे और लाभ यह होगा कि आपको अपने आत्मा के यथार्थस्वरूप का भान होगा, परद्रव्यों से उपेक्षा होगी, अपने आपमें

आत्ममग्नता होगी। भव-भव के कर्म झड़ेंगे, पुण्यरस बढ़ेगा, पापक्षय होगा। स्वर्ग और मुक्ति के निकट पहुंचेंगे। शान्ति, सन्तोष आनन्द से भरपूर हो जायेंगे, इससे बढ़कर और क्या चाहिये है।

दु:ख का मूल कारण—जीव को दु:ख का कारण केवल एक मोह है, यह मोह अनेक विषयों में हुआ करता है। किसी का घर में मोह है, किसी का इज्जत, नाम में मोह है, किसी का यश कीर्ति में मोह है, किसी का काम काज में मोह है, लेकिन ये समस्त मोह इस मोही जीव को बरबाद करने पर तुले हुए हैं। प्रथम तो हम आपका इस शरीर में मोह है। एक इस शरीर में मोह न रहे तो आपको किसी भी वस्तु में मोह न रहेगा।

शरीर त्याग में भी शरीरमोह की संभवता—यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि जो सुभट जन बिना वेतन वाले खुशी-खुशी एक अपनी किसी की भक्ति से संग्राम में लड़ते हैं, पुराणों में बहुत-बहुत लिखा गया है। बड़े-बड़े संग्राम हुए, राम रावण के समय में अनेक राजा अनेक सेवक मिल गये थे, क्या उन्हें वेतन दिया जाता था? वे उल्टा अपना ही खर्च करते थे। सेवा सहित आकर किसी पक्ष में मिलकर वे लड़ाई लड़ते थे, संग्राम करते थे। संग्राम में अपनी जान तक गवा देते हैं। उन्हें तो शरीर का मोह नहीं है ना। उन्हें भी शरीर के मोह के कारण ही मोह होता है। वे अपने बारे में शरीर में दृष्टि लेकर ऐसा बराबर समझ रहे हैं। संग्राम में यदि जान चली जाय तो जाय, पर नाम तो अमर रहेगा। किसका नाम? इस शरीर को ही दृष्टि में लेकर नाम की कल्पना की तो शरीर का ही तो सम्बंध हुआ।

देशप्रेम में बलि होने में शरीरमोह की संभवता—अच्छा यह भी बात नहीं हो, किन्तु यह हो कि हमारा देश सुरक्षित रहेगा, हमारे देशों पर किसी शत्रु का अधिकार क्यों हो, इस ख्याल में भी सोचिए कि मूल में शरीर का किस प्रकार से मोह है—यह हमारा देश है, यह भाव तभी बनेगा जब इस शरीर को मानेंगे कि यह मैं हूं। देश के पीछे भी कुरबानी करने में शरीर के मोह की बात आ ही गई है। जिसका जितना भी मोह किया जाता है वह सब शरीर के मोह के आधार पर है। शरीर का मोह न रहे तो फिर किसी भी वस्तु में मोह नहीं हो सकता है। इस कारण इस मोह के महान् संकटों को मिटाने के लिए शरीर के मोह के त्याग करने का यत्न करें।

मोहत्याग की भेदविज्ञानसाध्यता—मोह का त्याग भेदविज्ञान से ही हो सकेगा। यह शरीर जड़ है। अनेक परमाणुवों से बना हुआ है। अपरमार्थ है, मैं आत्मा इस अमूर्त शरीर से न्यारा अमूर्त केवल ज्ञानघन हूं। ऐसा अपने आपमें ज्ञानस्वरूप की प्रीति करना यह उपाय है शरीर का मोह त्यागने का। ये कामादिक चाहे करने पड़े, चाहे किसी ढंग से रहना पड़े, प्रत्येक परिस्थिति में यह कर्तव्य है कि शरीर और उन वस्तुवों से काम मोह छोड़कर अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूप को देखो और उसे यह मैं आत्मा हूं ऐसा मानो। ज्ञानभावना के बिना यह मोह संकट दूर नहीं हो सकता है इसलिए इस ज्ञानभावना को तब तक भाते जाइए तब तक इन शरीरादिक परद्रव्यों से न्यारे न हो जावो।

अमृत तत्त्व—यह भेदविज्ञान एक अमृत है। लोग कहा करते हैं कि अमृत पी लो तो अमर हो जावोगे। वह अमृत कैसा होता होगा, कोई पेय पदार्थ पानी जैसा है या सतुवा जैसा है, न जाने कैसा होता होगा। लोग कहते हैं कि उसके खा लेने से अमर हो जावोगे। अरे उसे खा लिया गया तो वह तो खुद मर गया। जो खुद मर जाये वह दूसरे को क्या अमर करेगा। अमृत मायने जो खुद न मरे। अरे अमृत कोई अन्य चीज नहीं है। अमृत तो एक ज्ञानभावना है। मैं ज्ञानमात्र हूं, ऐसी बराबर भावना करके अपने आपको मात्र ज्ञानस्वरूप की अनुभवना इस ही का नाम है अमृत का पीना, जो मरे नहीं वह है अमृत, अ और मृत, इसी को मिलाकर अमृत बना है। जो मर जाय उसका तो नाम मृत है और जो न मरे वह अमृत है। मेरे आत्मा का जो सहज ज्ञानस्वरूप है वह ज्ञानरूप कभी भी नहीं मरता है। वह

अनादि अनन्त सदा एक स्वभाव रूप रहता है, ऐसे अविनाशी एक स्वभावरूप ज्ञानतत्त्व का अनुभव करना यही वास्तव में अमृत का पान करना है। इस अमृत तत्त्व का पान इस ग्रन्थ से कराया जायगा। एक निज शुद्ध ज्ञानस्वरूप की भावना का उपदेश होगा। अत: ऐसा अपूर्व लाभ देने वाले इस जिनेन्द्र उपदेश को मन, वचन, काय शुद्ध करके ध्यान पूर्वक सुनो ऐसा आचार्यदेव इस द्वितीय गाथा में कह रहे हैं।

गाथा ३

समवाओ पचण्हं समउ त्ति जिणुत्तमेहिं पण्णत्तं।
सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ खं।।३।।

शान्ति और अशान्ति का साधन—संसार के प्रत्येक जीव शान्ति चाहते हैं। शान्ति का जो सत्य उपाय है उस ही का नाम धर्म है। शान्ति का सत्य उपाय हो सकता है इस सम्बंध में इस तरह विचार करो कि आखिर अशान्ति क्यों है। किन कारणों से हमें अशान्ति है? उन कारणों को न होने देना यही तो है शान्ति का उपाय और यही है धर्म। जीवों को अशान्ति जो बात जैसी है उसको वैसा न मानकर उल्टा मानने के कारण है। अशान्ति का उपाय मिथ्याज्ञान है। पदार्थ मेरा नहीं है उसे मानें कि यह मेरा है तो वह तो मेरा रहने का है नहीं क्योंकि मेरा है ही नहीं। भिन्न द्रव्य है, स्वरूप न्यारा है, यहाँ हम मान बैठे हैं कि मेरा है, तो जब उसका विपरीत परिणमन हुआ तो हम दु:खी होंगे ही। दूसरी बात यह मन, यह उपयोग किसी पर पदार्थ में जाय तो इतने ही मात्र से दु:ख होने लगता है। पर पदार्थों में अपना उपयोग गया इस ही में दु:ख हो गया, वे चाहे अपने अनुकूल भी रहें पर उस उपयोग का जाना दु:ख का कारण है। हमें ऐसा साधन मिले, ऐसी बुद्धि जगे कि पदार्थ जैसे हैं वैसे ही हमारे ज्ञान में रहे, बस यही धर्म है, इसका विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है।

वस्तु स्वातन्त्र्य—संसार में जितने भी पदार्थ हैं जो भी सत् हैं वे अपने ही स्वरूप से सत् हैं, किसी दूसरे पदार्थ का गुण शक्ति परिणाम उधार लेकर कुछ सत् नहीं होता, जो भी है वह अपने ही कारण अपने ही स्वरूप से अपने ही आपमें परिपूर्ण रूप से है, यही है वस्तु का स्वरूप। मैं आत्मा हूं तो अपने ही अस्तित्त्व के कारण अपने ही स्वरूप से अपने आप हूं। किसी दूसरे पदार्थ की आशा और दया पर मेरा अस्तित्व नहीं है, ऐसे ही हम आप सब जितने भी जीव हैं इनका सत्त्व अपने आपके कारण अपने आपमें परिपूर्ण रूप से है।

पुद्गलों की स्वतंत्रता—ऐसे ही जगत में दिखने वाले ये भौतिक पदार्थ जिनका नाम पुद्गल है वे सब स्वयं सत् हैं। पुद्गल शब्द का अर्थ है जो मिल करके पूर जाय, बड़ा हो जाय और बिछुड़ करके गल जाय, खण्ड-खण्ड हो जाय, छिन्न-भिन्न हो जाय उसे पुद्गल कहते हैं। ये दृश्यमान सभी पदार्थ मिलकर बड़े हो जाते हैं बिछुड़कर खण्डित हो जाते हैं। ये सब पुद्गल हैं। इनमें वास्तविक चीज एक-एक अणु है जो कभी मिटता नहीं है। ये सफल संयोग समूह स्कन्ध तो मिट जाते हैं ये पदार्थ नहीं हैं। इनमें रहने वाले जो एक-एक अविभागी अणु हैं वे पदार्थ हैं, वे प्रत्येक परमाणु अपने ही स्वरूप से अपने आपमें परिपूर्ण रूप से हैं ऐसा पदार्थ का स्वतन्त्र स्वरूप है, इसी कारण किसी पदार्थ का कोई पदार्थ मालिक नहीं। कोई भी जीव किसी भी पदार्थ का कर्ता एवं भोक्ता नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूप में अपना ही काम करते हैं।

पर के भोक्तृत्व का अभाव—जिस समय हम आप भोजन करते हैं भोजन के समय में जो भोजन के रस का ज्ञान हुआ उस रस में है हमारा अनुराग सो हम उस रस के ज्ञान के कारण खुश हो रहे हैं। यहाँ हमने अपने ज्ञान को भोगा, भोजन को नहीं भोगा है, क्योंकि मैं आत्मा अमूर्त हूं, आकाश की तरह, उसमें

भोजन चिपकता भी नहीं है। यह तो उस समय केवल ज्ञान का करने वाला रहता है। यह मीठा है, यह खट्टा है ऐसी यह केवल कल्पना बनाता है, साथ ही लगा है इसके अनुराग जो उस राग से उस कल्पना का सुख भोगता है, चीज का सुख नहीं भोगता है, प्रत्येक जीव केवल अपने भाव को करते हैं और अपने भाव को भोगते हैं। कितना वैभव हो यह जीव वैभव को नहीं भोगता, किन्तु पूर्वकृत पुण्य का उदय है यह वैभव समागम निकट आया है, इस स्थिति में वैभव के सम्बन्ध में जो यह जीव कल्पना बनाता है, उचित है, बहुत है, कम है, मेरा है, उन कल्पनावों का कर्ता यह जीव है, बाह्यपदार्थों का कर्ता नहीं है। इन ही कल्पनावों को भोगने वाला यह जीव है, धन वैभव सम्पदा का भोगने वाला यह जीव नहीं है।

स्वातन्त्र्यविज्ञान से मोहविनाश—प्रत्येक पदार्थ जिस रूप भी परिणमता है वह अपने स्वरूप में परिणमता है, ऐसी स्वतंत्रता का जब ज्ञान होता है तो वहाँ मोह नहीं रहता है। मेरा दुनिया में क्या है? यह देह तक भी मेरा नहीं है। ये राग और द्वेष जो मुझमें उत्पन्न होते हैं ये भी मेरे नहीं हैं, होते हैं और मिट जाते हैं। मैं तो शाश्वत रहने वाला सत् पदार्थ हूं। यों जब पदार्थ का भली भांति ज्ञान होता है तो शान्ति मिल जाती है।

शान्तिमुद्रा—हमारे आदर्श प्रभु हैं। इन प्रभु की मूर्ति शान्ति प्रधान मुद्रा में होना चाहिए। प्रभु मूर्ति के समक्ष उनकी शान्तमुद्रा निरखें। यद्यपि मूर्ति पाषाण की है, धातु की है पर हम केवल मूर्ति पर ही दृष्टि नहीं देते हैं। मूर्ति को नहीं पूजते हैं किन्तु जिनकी मूर्ति स्थापित की है उनका ख्याल करके उन्हीं को पूजते हैं। शान्तमुद्रा निरखने से मन में यह भाव जागृत होता है, ओह ! शान्ति है तो इस अवस्था में है। जब तक परपदार्थ की कल्पनाएं चलती रहेंगी, व्यग्रता बनी रहेगी। ये प्रभु पूर्व में सम्राट थे, तीर्थंकर थे, चक्रवर्ती थे, हजार-हजार इन्द्र और देवेन्द्र राजा महाराजा सभी उनकी सेवा में रहा करते थे किन्तु वहाँ उन्होंने वास्तविक सुख नहीं पाया है इस कारण वे सब सुख समृद्धि त्यागकर एक आकिञ्चन्य केवल ज्ञानस्वरूप में उपयोग लगाने लगे, शान्त अपने आपमें मग्न हुए। शान्ति का मार्ग तो यही है। इतनी बात जब अपने मन में उत्पन्न होती है तो आप अनुभव करने लगेंगे कि शान्ति मिलती है अथवा नहीं।

आत्मसंयमन में आनन्द—बाह्य पदार्थों में हमारे तृष्णा जगे, रागद्वेष जगे तो वह अकल्याण के ही लिए है। समस्त इन्द्रियों का व्यापार रोककर बाह्य समस्त पदार्थों से अपने को भिन्न निरखकर जब ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभवेंगे उस समय जो आनन्द मिलेगा उस ही आनन्द में यह सामर्थ्य है कि भव-भव के पापकर्मों को दूर कर देंगे। इसका उत्थान इसके परिणामों के आधीन है। किसी दूसरे से मिन्नत करके, प्रार्थना करके चाहे कि कोई दूसरा मेरा उत्थान कर दे तो वह नहीं कर सकता है। प्रभु का तो यह उपदेश है कि हे भव्य जीवों ! यदि तुम शान्ति चाहते हो तो मेरा भी ख्याल छोड़ो मानो प्रभु की ओर से यह सन्देश है, यद्यपि पहली अवस्था में मेरा ध्यान मेरी शक्ति करोगे तो तुम्हें सहारा मिलेगा लेकिन यह भी एक राग की परिणति है ध्यान भी करता रहेगा कोई भक्त तो वह उत्कृष्ट समाधि में नहीं आ सकता क्योंकि उसकी दृष्टि में कैसे आ गया, मैं पूज रहा हूं भगवान को। इस भक्त का उपयोग अन्य जगह बना है। इस कारण उत्कृष्ट समाधि उसे नहीं मिलती है प्रभु का तो यह उपदेश है कि उत्कृष्ट शान्ति यदि चाहते हो तो मेरा भी आलम्बन छोड़ दो और एक शुद्ध ब्रह्मस्वरूप का आलम्बन ग्रहण करो।

स्वयं में विधान—जब पदार्थ का स्वरूप विदित होता है तो शान्ति का मार्ग मिलता है। इसी कारण जैन दर्शन में अध्यात्म की प्रधानता है। जो पदार्थ जिस तरह का है उस तरह से वर्णन करने की इसमें प्रधानता है। जैन दर्शन कोई नियम अलग से बनाकर या कोई बात अलग से बनाकर या कोई बात अलग से गढ़ कर भक्तों से पालन नहीं कराता है किन्तु भक्त को स्पष्ट बताता है कि तुम देख लो, सोच लो, जान लो कि पदार्थ किस स्वरूप में है। तुम क्या हो और किस चक्र में पड़े हो, कौन से बन्धन लगे हुए

हैं। ये बन्धन कैसे लगे है, उनसे छूटने का उपाय क्या है? सब कुछ विचार लो, इन सबके चिन्तवन से तुम्हें मदद मिलेगी। करता है अपने में अपना ही काम अपनी शान्ति के लिए।

सत् सेवा—लोग कहा करते हैं कि भगवान घट-घट में विराजमान है। वह घट-घट क्या है? हम आप सब इन सबमें जो विराजमान भगवान है, प्रभु है, ऐसी प्रभुता हम आप सबमें मौजूद है। प्रभु के गुणों का स्मरण करके और प्रभु के पथ पर जो चल रहे हैं, ऐसे साधु संतों की सेवा करके हम अपने आपमें अपने अंतस्तत्त्व को देखें, इसकी उपासना में रहें, यही है शान्ति पाने का उपाय। यह शिक्षा हमें देव, शास्त्र, गुरु की सेवा से मिल जाती है। ऐसी प्रभुता पाने का जो उद्यम करता है रागद्वेष को तजकर समता भाव से ही रहा करता है जिसका ज्ञान, ध्यान और तपस्या ही प्रयोजन है, सदा इस शुद्ध ज्ञानानन्द स्वभाव पर ही दृष्टि दिया करता है, ऐसे साधु संतों की हर प्रकार से सेवा करके एक उत्साह जगता है कि हम भी विकल्प त्याग कर निर्विकल्प ज्ञानानन्दघन परम अमृत रस का पान करें तो सुखी होंगे। यदि वैभव सम्पदा में ही निरन्तर ध्यान बनाये रहे तो उनकी बुद्धि व्यग्र हो जायगी, और कुछ क्षण सारे परिग्रह का बोझ उतारकर अपने ज्ञान से अपने आपमें से इन सब वैभवों का परिग्रहों का बोझ उतार दें और केवल ज्ञान ज्योतिस्वरूप अपने को निहार लें तो उससे कल्याण होगा समझिये।

बहुप्रदेशी में अस्तिकायपना—इस ग्रन्थ का नाम है पञ्चास्तिकाय, 5 अस्तिकाय हैं। अस्तिकाय का अर्थ है बहुप्रदेशी पदार्थ। जैसे जीव, यह अंगुलि से लेकर सिर तक बड़े विशाल क्षेत्र में फैला हुआ। यह एकप्रदेशी नहीं है, एकप्रदेश नाम है सबसे छोटे आकाश के हिस्से का, जिसका दूसरा हिस्सा न हो सके। जैसे एक इंच है तो अभी १० हिस्से उसके और हो सकते हैं। यों हिस्से करके जो अविभागी हिस्सा रह जाय, जिसका दूसरा हिस्सा न हो सके उसे कहते हैं एक प्रदेश। जो बहुप्रदेशी हो उसे अस्तिकाय कहते हैं। ये पदार्थ, ये भौतिक सब चीजें ये बहुप्रदेशी हैं, ये अस्तिकायें हैं।

धर्मास्तिकाय—जीव और पुद्गल से सब गमन करते हैं तो इनके गमन में सहायक जो एक सूक्ष्म स्कंध है धर्मद्रव्य नाम का वह सहायक होता है। वह समस्त लोक में फैला हुआ है। यदि ऐसा ईथरतत्त्व न हो, धर्मद्रव्य न हो तो हम आप चल फिर न सकें। हम आप अपनी ही शक्ति से चलते हैं पर जैसे मछली में चलने की क्रिया बिना जल के नहीं आ सकती ऐसे ही बिना धर्मद्रव्य के हम आपमें चलने की क्रिया नहीं आ सकती। मछली के चलने में जल प्रेरणा नहीं करता, पर उसके निमित्त से मछली में चलने की शक्ति आ जाती है। जल मछली को चलाने में सहायक है। स्पष्ट दिखता है कि जल के बिना मछली नहीं चलती है ऐसे ही लोक में हम आप जीव पुद्गल अजीव जाना क्रियाएं कर रहे है। ये सब अपने आपके परिणमन से अपनी शक्ति से क्रियाएं करते है, ठीक है, फिर भी यदि धर्मद्रव्य न हो तो हम आप चल नहीं सकते है। हमारे ऋषि संतों ने अपने ज्ञान से यह सब कुछ बताया है और इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक लोग भी ऐसी सम्भावना करते हैं।

अधर्मास्तिकायादि—इस ही तरह चलते हुए जीव पुद्गल जब ठहरना चाहते हैं तो उनका निमित्त सहायक अधर्मद्रव्य है, यह भी लोकाकाश भर में व्यापक है, असंख्यात प्रदेशी है, यह भी अस्तिकाय है। आकाश यह भी अस्तिकाय है, बहुप्रदेशी है, असीम है, एक काल नाम का द्रव्य जो एक-एक प्रदेश पर एक-एक ठहरा हुआ है, वह एक-एक प्रदेश ही है, वह अस्तिकाय नहीं है यों ६ जाति के पदार्थ इस दुनिया के अन्दर हैं।

छह द्रव्य जातियां—जीव जाति वे पदार्थ इनमें जितने भी जानने देखने की शक्ति रखने वाले पदार्थ हें वे सब जीव जाति में आ जाते हैं। पुद्गल जाति के पदार्थ जितने भी जो पदार्थ, रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले हैं, चाहे वे हमें मालूम पड़े या नहीं, पर जिनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हैं वे सब पुद्गल जाति के पदार्थ हैं। काम में ये दो ही पदार्थ आ रहे है अधिक—जीव और पुद्गल। फिर धर्मद्रव्य की जाति का पदार्थ एक ही है, वही जाति है, वही व्यक्ति है, धर्मद्रव्य नाम का पदार्थ भी एक ही है और काल नामक द्रव्य एक-एक परिपूर्ण या असंख्यात है। आकाश असीम है। ये समस्त पदार्थ अपने आप ही स्वयं अपना परिणमन करते हैं। पदार्थ का ऐसा स्वरूप है।

मूल श्रद्धान का परिणम—भैया ! वस्तु की स्वतन्त्रता जब ज्ञात होती है तो यह जीव मध्यस्थ हो जाता है। किसमें राग करना। किसी पदार्थ में क्यों राग करना। ये पदार्थ मुझसे भिन्न हैं, इनका मुझसे सम्बन्ध नहीं है। मेरे परिणमन करने से ये परिणमते नहीं है। मैं इनसे न्यारा हूं, ऐसा अपने आपकी ओर ही यह रहता है। रागद्वेष नहीं करता। प्रयोजनवश चूंकि पर गृहस्थी में कमाना भी पड़ता है रागद्वेष भी आता है तिस पर भी धन्य है यह ज्ञानी गृहस्थ जो अपने अन्तरंग में यह समझ रहा है कि ये पदार्थ असार और भिन्न हैं, किन्हीं पदार्थों पर मेरा स्वामित्व नहीं है। रक्षा करते हुए भी, संचय करते हुए भी उनको अपने से भिन्न मानना यह-यह कितना स्वच्छ ज्ञान हैं और इस ज्ञान के प्रताप से यह जीव सुखी रहता है।

त्रिविधसमय का समन्वय—कल गाथा में समय का अर्थ टाइम नहीं किन्तु समय मायने समवाय समूह। इस ग्रन्थ में शब्द समवाय के द्वारा इस ज्ञानस्वरूप ज्ञान समवाय की प्रसिद्धि के लिए पदार्थसमूह का वर्णन किया जायगा। हम किन्हीं भी पदार्थों को जानेंगे तो उनका माध्यम शब्द है। उन शब्दों के द्वारा हम समझाते है, समझते है और अपने अन्तरंग में इन शब्दों का अन्तर्जल्प भी करते हैं और मिथ्यादर्शन का विनाश होने पर हमें पदार्थ का सही-सही बोध हो जाता है इसका नाम है ज्ञान समय और जिन समग्र वस्तुवों का बोध किया जाता है ये सब हैं अर्थ समय। यों पदार्थ का स्वरूप जानना सही जानना अत्यन्त आवश्यक है। कोई पुरुष अपने धर्म में हुए किन्हीं पुराण पुरुषों का सम्बंध भी न रक्खें, उनका ध्यान उपासना भी न रक्खे और यहाँ जो कुछ वस्तु है उस वस्तु के सही स्वरूप के जानने में रत रहे तो वह भी धर्म पाल रहा है। रूढ़िवाद या दादा वाक्य प्रमाण का स्थान नहीं है। जो यथार्थ बात हो उसे जान लो, इस ही का नाम धर्म है।

आत्मपदार्थ—मैं क्या हूं? कोई ज्ञान वाला एक पदार्थ हूं। यह मैं कहां से आया हूं? लोग तो यों जानते हैं कि यह कुछ दिनों का ५० वर्ष से ६० वर्ष से जिसकी जितनी आयु है यह आया है। अरे इतने वर्षों से उस मनुष्यभव में आये हैं, किन्तु इससे पहिले भी मैं कुछ सत् था, अचानक कहीं से किसी दिन आ गया होऊं यह बात नहीं है। कुम्हार घड़ा बनाता है तो उस घड़े का उपादान जो मिट्टी है वह तो पहिले से थी। कोई भी चीज बने उसका उपादान भूत कुछ न कुछ किसी भी रूप में पहिले से होता ही है। जो एकदम असत् है, है ही नहीं उसका सत् क्या बने। जो नहीं है इसमें से किसी जाति का सत् बने यह व्यवस्था ही नहीं है।

समवाय में असमवाय—समस्त पदार्थ लोक और अलोक दो भागों में विभक्त है। लोक में तो सब कुछ आ गया और अलोक में केवल आकाश ही आकाश है। यों इतना ऊपर लोकाकाश के बीच यह लोक है। इस लोक के बीच मध्यलोक है, जिसमें हम आप बस रहे हैं। यह सब पदार्थों का झमेला चल रहा है जिस पर भी कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थरूप बनकर नहीं रहता है। ऐसी स्वतन्त्रता का ज्ञान हो जाय इसी के मायने है धर्म पालन।

विवेक और विवेक का लाभ—धर्मपालन से फल क्या मिलता है? मैं सब पदार्थों से जुदा अपने आपकी श्रद्धा कर रहा हूं और मैं ज्ञान से रचा हुआ हूं, आनन्द से रच गया हूं सो ज्ञान और आनन्द ही

मात्र अपने को जान रहा हूं, और ऐसा सबको जानता हुआ निज में रम जाऊं मग्न हो जाऊं, अन्य किसी पदार्थ में मैं न मग्न होऊं तो यही इसका सच्चा आचरण है। ऐसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के प्रसाद से यह जीव संकटों से छूटता है, और अपने शुद्ध आनन्द को भोगता रहता है। सभी जीव शान्ति चाहते हैं। शान्ति होगी भेदविज्ञान से। मैं सबसे न्यारा हूं, अकिञ्चन हूं, मेरा कहीं कुछ नहीं है। ज्ञानानन्द स्वरूप मात्र अपने आपको जानें तो शान्ति मिलेगी। किसी पर पदार्थ की पकड़ करे तो उसे शान्ति नहीं मिल सकती है। इस शुद्ध लाभ का प्रयोजन भगवान की मुद्रा से मिल जाता है। हम बड़ी शुद्ध निगाह से प्रभु के दर्शन करें और अपने आपमें यह भाव करें कि हे प्रभु ! मेरा कब वह समय आये कि सर्व विकल्प कल्पना जालों से छूटकर केवल आत्माराम में ही मग्न होऊं।

गाथा ४

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आयास।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइआ अणुमहता।।४।।

अस्तिकायत्व—इस गाथा में ५ अस्तिकायों की जाति के नाम बताये गये हैं, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश। ये ५ अस्तिकाय हैं। ये अपने-अपने अस्तित्व में नियत है और अपने अस्तित्व से अभिन्न है, अर्थात् उनकी सत्ता सदा उनसे जुदी नहीं है। कहने में आता है कि जीव में अस्तित्व है पर इस तरह नहीं है जैसे कि मटके में दही है, मटका न्यारी चीज है, दही न्यारी चीज है, इस तरह न जानना कि जीव एक अलग बात है और उसमें अस्तित्व भरा है। जीव है इस ही विशेषता का नाम जीव का अस्तित्व है, जैसे इस पुस्तक में अस्तित्व क्या है? क्या यह पुस्तक से अलग हैं? तद्रूप है। तो सभी पदार्थ अपनी सत्ता में तन्मय है, इसमें जो अनेक प्रदेश हुये उन्हें अस्तिकाय कहते हैं, कालद्रव्य, सिर्फ एकप्रदेशी है, लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य ठहरा है। यह एकप्रदेशी है और परमाणु भी एकप्रदेशी है लेकिन उसे अस्तिकाय में गिना है। कालद्रव्य भी एकप्रदेशी है, उसे अस्तिकाय में नहीं गिना। परमाणु एकप्रदेशी है उसे अस्तिकाय उपचार से गिना है, वास्तव में नहीं है, याने अनेक कालद्रव्य मिलकर एक स्कन्ध बन जायें यह नहीं हो सकता और अनेक परमाणु मिलकर एक स्कन्ध बन जायें यह हो जाता है तो स्कंधों की दृष्टि से पुद्गल को अस्तिकाय कह दिया।

विभावव्यञ्जनपर्याय में पृथक्-पृथक् अस्तिकायपना—जीव द्रव्य अर्थात् जो कुछ भी चैतन्यस्वरूप है वह जीव अस्तिकाय है। कैसा यह एक पिंडरूप विलक्षण पदार्थ है कि जो बिखरता नहीं है, चैतन्यस्वरूप है एक अखण्ड रहता है, चिदात्मक है, जिसमें ज्ञान का परिणमन चलता है और रागादिक भावों का भी परिणमन चलता है। कभी रागादिक भाव भी होते हैं जिनमें ये सब भावात्मक विकास विकार हो रहे हैं। वही जीव है जो-जो कुछ यह दृश्यमान है और जो दृश्यमान हो सकता है यह सब पुद्गल अस्तिकाय है जीव को जीव से कोई हानि नहीं होती। इस जीव में पुद्गल मिल जाय, जीव के विकार में पुद्गल तत्त्व आये तो उससे जीव की हानि है। जीव-जीव कई मिलकर एक पिंड में नहीं आते, पर जीव और पुद्गल ये मिलकर कभी एक पिंड में आ जाते हैं। यद्यपि परमार्थ दृष्टि से जीव में पुद्गल नहीं पुद्गल में जीव नहीं, पर बन्धन दिख रहा है कि जीव, शरीर, कर्म ये तीनों पर्यायरूप में एक बन्धन रूप हैं। पर एक जीव दूसरे जीव से मिलकर बन्धन रूप हो जाय यह नहीं होता है।

जीवसंभ्रम—अब जीव का भ्रम देखिये। जीव कभी दूसरे जीव से एक हो नहीं सकता व्यवहार दृष्टि से भी। लेकिन इस जीव को जीव में मोह है। पुद्गल से बढ़कर जीव का जीव में मोह है, स्त्री पुत्रादिक में मोह है, तो घर वैभव सभी में मोह होना पड़ता है, तो जैसे जीव से कभी कुछ भी सम्बन्ध हो ही नहीं सकता, अत्यन्त न्यारा रहता है उसमें कितना व्यामोह है, जीव को अन्य जीव में व्यामोह होने का कारण

है कि इस जीव को अपने शुद्ध स्वरूप का परिचय नहीं है। यह अपने को भी यथार्थ जीवस्वरूप में मानता नहीं है, इसे खुद अपने आपमें भ्रम है। यह शरीररूप अपने को मानता है या जो विचार, विकल्प, तर्क, वितर्क उत्पन्न होते हैं उन रूप अपने को मानता है। कभी जड़ रूप भी अपने को मानता है। जब अपने स्वरूप का परिचय ही नहीं है तो उसे अपने में संतोष कैसे होगा जब संतोष इसे हो नहीं सका और संतोष इसे चाहिये है तो अब यह बाहरी पदार्थों में संतोष ढूंढ़ता है। बस उन बाहरी पदार्थों में हमारे सरीखे ये जीव हैं, जिनके वचन सुनकर प्रीति बढ़ाते हैं, और ये पुद्गलद्रव्य चूंकि ये हमारे इन्द्रियज्ञान में आश्रय है, विषयसाधनों के आश्रय है अतएव इनमें मोह होता है अपने आपका परिचय न होना ही परपदार्थों में व्यामोह होने का कारण है। हम आपका निकट सम्बन्ध व्यावहारिक सम्बन्ध जीव और पुद्गल से है। धर्मद्रव्य की कौन खबर रखता है।

निष्क्रिय और सक्रिय द्रव्य का क्रिया का निमित्त—धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये विपरीत है जीव और पुद्गल से। जो क्रियाशक्ति हों वे दोनों द्रव्य है जीव और पुद्गल अन्य द्रव्य न चलते है न गति पूर्वक ठहरते है। जीव में क्रिया है और पुद्गल में क्रिया है। जीव और पुद्गल की क्रिया में जो उदासीन निमित्त है वह धर्मद्रव्य है। धर्मद्रव्य लोकाकाश में स्थिरता से व्याप्त है। जैसे पानी मछली को चलाने में सहायक है, पर पानी चलकर मछली को चलाने में सहायक हो सो नहीं। इस प्रकार धर्मद्रव्य पुद्गल के गमन में सहायक है, पर यह खुद चलकर जीव को चलाता नहीं है। धर्मद्रव्य अमूर्तिक है, खुद जानता नहीं है, ऐसा जीव नहीं है, धर्म में रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं है इस कारण पुद्गल भी नहीं हे। पुद्गल होता है रूप, रस, गंध, स्पर्श वाला। यह धर्मद्रव्य अमूर्तिक है और अपने स्वरूप में निरन्तर परिणमता रहता है। वह किस तरह परिणमता है यह बताने के लिए कोई शब्द नहीं है। आगम में बताया है कि षड्गुणवृद्धिहानि रूप से परिणमता है। एक यह वैज्ञानिक तथ्य है कि कुछ भी चीज किसी दूसरे रूप बदल तो उस बदल के समय बहुत उथल-पुथल होती है। अनेक बार वृद्धि और हानि होती है। एक सकल से दूसरी सकल तक पहुंचने में अनेक वृद्धि हानियां हो जाती हैं। वे कभी तो समझ में आती है कभी नहीं आती है। तो यों धर्मद्रव्य निरन्तर प्रतिसमय परिणमता रहता है और उसका वह परिणमन अपने अगुरुलघुत्व वृद्धि हानिरूप है। केवल अन्दाज से यह जान लो कि कोई भी चीज चाहे समान रूप परिणमे और चाहे असमान रूप परिणमे पर प्रत्येक परिणमन के लिये यह षड्गुण हानि वृद्धि होती है, एक बहुत बड़ी उथल-पुथल हो जाती है जो हम आपको विदित नहीं हो पाती।

धर्मास्तिकाय—अधर्मद्रव्य चलते हुये जीव पुद्गल के ठहरने में सहायक है। अधर्मद्रव्य का स्वभाव दूसरा है, धर्मद्रव्य का स्वभाव दूसरा है, पर जैसे धर्मद्रव्य अमूर्तिक है ऐसे ही अधर्मद्रव्य अमूर्ति है, जैसे धर्मद्रव्य लोकाकाश में व्याप्त है, ऐसे ही अधर्मद्रव्य लोकाकाश में व्याप्त है। जैसे धर्मद्रव्य का षड्गुण हानि वृद्धिरूप परिणमन है ऐसे ही अधर्मद्रव्य का षड्गुण हानि वृद्धिरूप परिणमन है। सारी बात एक समान होकर भी निमित्त भेद से भेद है। धर्मद्रव्य तो जीव और पुद्गल के गमन में सहकारी है और अधर्मद्रव्य जीव और पुद्गल को ठहराने में सहकारी है। ये पदार्थ ऐसे नहीं हैं कि इन्हें लोग जल्दी जान जाय इन्हें तो साधु संतों ने अपने ज्ञान से समझकर बताया है।

आकाशास्तिकाय—५वां अस्तिकाय है आकाश। आकाश अवस्तु का नाम नहीं नथिंग नहीं, किन्तु वह सत्तात्मक है। उसमें परिणमन है। उसका प्रदेश है। यों जल्दी दिखने में लगता है कि आकाश तो इस पोल का नाम है, जहां कुछ नहीं है, उसी का नाम आकाश है, पर आकाश कुछ नहीं का नाम नहीं है। आकाश अमूर्तिक है, अनन्त प्रदेशी है। उसमें भी निरन्तर परिणमन होता रहता है, वह सद्भूत चीज है। यह

आकाश एक है, जितने आकाश के क्षेत्र में जीव पुद्गल आदि सभी द्रव्य रहते हैं उसका निमित्त है लोकाकाश। और जहां सभी द्रव्य नहीं हैं केवल वही आकाश है उसका नाम है अलोकाकाश।

लोकाकाश का प्रमाण—लोकाकाश का प्रमाण ३४३ घनराजू है। जहां हम बसते हैं यह जम्बूद्वीप है। यह एक लाख योजन के विस्तार का है। २ हजार कोश का एक योजन होता है, उससे दूना एक तरफ समुद्र है। समुद्र इस द्वीप को घेरे हुये है। सभी द्वीप समुद्र अपने-अपने पूर्ववर्ती द्वीप समुद्र को घेरे हुए है। उससे दूना द्वीप, उससे दूना समुद्र, उससे दूना द्वीप, उससे दूना समुद्र यों चलते जाते हैं, और ऐसे द्वीप समुद्र हैं अनगिनत। गिनती की जहां तक हद है अनुमान रूप से भी उससे भी ज्यादा। अब कितना विस्तार हो गया। इतना सारा विस्तार एक राजू अभी नहीं है एक राजू से थोड़ा कम है, ऐसा एक राजू तो एक ओर रहा एक ही राजू मोटा हुआ, एक ही राजू चौड़ा हुआ, एक राजू लम्बा हुआ इतने का नाम है एक घनराजू। ऐसे-ऐसे ३४३ घनराजू प्रमाण लोक हैं और इससे बड़ा लोकाकाश है, जब कोई ठोस चीज है तो उस ठोस चीज का कहीं न कहीं अन्त जरूर है। ठोस चीज असीम नहीं हो सकती। जब यह पृथ्वी ठोस है तो इसका कहीं अन्त जरूर है। यह सारा विश्व समूह ठोस है। बीच में पोल भी है। यह ठोस चीज पड़ी हुई है तो इसका कहीं न कहीं अन्त अवश्य है। जिसके आगे कोई ठोस न मिले उतना है लोकाकाश और उसके बाद है अलोकाकाश इस लोक में ठीक बीचोबीच एक त्रसनाली है। यह एक राजू प्रमाण मोटी, १४ राजू लम्बी है इसके आसपास बाकी ३४३ में से १४ राजू घटाने पर ३२९ घनराजू जो बचता है क्षेत्र उसमें केवल स्थावर जीव हैं, त्रस जीव नहीं, उस त्रसनाली में जो ठीक मध्य क्षेत्र है असंख्यात द्वीप समुद्र वाला उसमें केवल ढाई द्वीप में मनुष्य है, उसके बाहर तिर्यञ्च है। ऐसी यह विराट रचना लोक की प्राकृतिक है।

लोक की स्वत:सिद्धता—इस लोक को कोई बनाने नहीं आता। अब यह बात समझ में नहीं आती तब लोग यह कह देते हैं, क्योंकि प्रभु अनन्त सामर्थ्य वाला है ना, इसे भगवान ने बनाया। एक भगवान सारी दुनिया को बनाए और ध्यान रक्खे तो उसका तो बड़ी आकुलतापूर्ण काम हुआ किस-किसकी खबर रक्खे, किसको क्या करे और, बात यह है सही भी कि यह सब भगवान की सृष्टि है, पर इसको यों देखिये—जितने भी जीव हैं सब जीवों में भगवान बसा हुआ है। सभी कहते हैं, पर इन जीवों से न्यारा कोई एक भगवान इन सब जीवों में बसे ऐसा नहीं है, किन्तु सब जीव चैतन्यस्वभावी है, भगवत्स्वरूप है। प्रत्येक जीव अपने स्वभाव और शक्ति में भगवान हैं। यह आत्माभगवान जब विकृत होता है तो निमित्त नैमित्तिक योग पूर्वक ऐसी सृष्टि हो जाती है जैसे कि हम आप बैठे हैं, तो यह है भगवान की ही लीला, पर यह आपमें आपके भगवान की लाला हममें हम भगवान की लाली है, और जब यथार्थ भेद विज्ञान पाता है तो उस ज्ञानप्रकाश में अपने को सबसे न्यारा निरखकर सुरक्षित बना लेता है, फिर इसकी लीला मोक्ष मार्ग की चलती है। कर्मों से शरीर से न्यारा होता हुआ यह पूर्ण केवल हो जाता है।

सामान्य और विशेष—इन सब पदार्थों में सामान्य और विशेष दोनों अस्तित्व देखो। केवल है कि निगाह से देखो तो इसमें सब पदार्थ आ गए। यह सामान्य अस्तित्व और नाम लेकर व्यक्तिगत बात आये तो वह विशेष अस्तित्व है। ये सभी पदार्थ निरन्तर उत्पन्न होते है, निरन्तर विलीन होते हैं और सदा बने ही रहते हैं। देखिये ये पदार्थ उस स्वरूप पड़े हुए हैं कि बनते हैं बिगड़ते हैं और बने रहते है। जैसे इसका उपादान, इसके निमित्त का सद्भाव अथवा अभेदरूप योग रहता है उस प्रकार से सभी पदार्थ परिणमते रहते हैं। परिणमन में क्या होता है? नई चीज बनना पुरानी चीज मिटना और वही का वही रहे। तो जब यह पदार्थ में ही स्वरूप पड़ा है फिर इसके रचने वाला कोई होगा यह विचारने की क्या आवश्यकता है। सभी पदार्थ स्वयं हैं। आपका आत्मा, यह अपने आप है। हम है, ऐसे नहीं कि हमारी सत्ता सदा न्यारी ही और हम न्यारे हों।

वर्णन की नयद्वयायत्तता—नय दो होते हैं—एक द्रव्ययार्थिकनय और दूसरा पर्यायार्थिकनय। जैसे कहते हैं जीव में ज्ञान भरा हुआ है तो क्या ऐसा है कि जैसे बोरे में गेहूं भरे हैं वैसा ज्ञान भरा है? क्या बोरे में गेहूं की तरह जीव ज्ञान भरा हुआ है? अरे जीव में तो ज्ञान लबालब भरा हुआ है और यह बात तो कहने की है कि जीव में ज्ञान भरा हैं। अरे जीव ज्ञान को ही कहते हैं। ज्ञानमय ही जीव है। आम में हरा रूप है तो क्या आम अलग चीज है, हरा अलग चीज है, अरे हरे रूप ही आम है, ऐसे ही जीव में ज्ञान अलग नहीं हैं। जीव ज्ञानमय ही है, जीव की सत्ता अलग नहीं है। सत्तामय ही जीव है। एक कहने का ढंग है। द्रव्यार्थिक दृष्टि तो अभिन्नता से प्रतिपादन होता है और पर्यायार्थिक दृष्टि भिन्नता से प्रतिपादित होती है। जीव में ज्ञान है यह पर्याय का कथन है और जीव ज्ञानमय है यह द्रव्य दृष्टिगत कथन है। जीव सत्तामय है यह द्रव्यदृष्टि का कथन है जीव में अस्तित्व है यह पर्यायदृष्टि का कथन है। पर्याय नाम भेद का है, द्रव्य नाम अभेद का है। जितने उपदेश होते हैं वे सब दोनों नयों के आधीन होते हैं। कोई द्रव्यदृष्टि का ही हठ कर ले अपने वर्णन में तो वह जैन पद्धति का उपदेश नहीं हे। पर्यायदृष्टि से अस्तित्व गुण कथन्चित भिन्न निरखे तो द्रव्यदृष्टि से तो अस्तित्व न्यारा नहीं है, किन्तु यह पदार्थ स्वयं ही सत् होता हुआ अस्तित्व वाला है। सत्ता से सब अभिन्न है।

कायत्व का विवरण—ये जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश अस्तिकाय है। इस अंश में अस्तित्व का तो वर्णन किया और काय का अर्थ यहाँ बहुप्रदेशी है। यह अणुवों से महान है। संक्षिप्त अंश का समुदाय है। जैसे किसी का बुखार थर्मामीटर से मापा १०१ डिग्री बुखार है तो उसका अर्थ हे कि बुखार में एक-एक अंश माना जाय तो ऐसे-ऐसे १०१ अंश बराबर-बराबर हैं, मगर किसी का बुखार एक अंश भी बराबर रहा, कभी ५० अंश भी रहा, ९० अंश भी रहा फिर भी गर्मी का माप है। जिसके १०१ डिग्री बुखार है उसमें एक अंश कुछ माप होता होगा। एक और एक मिलकर २ अंश हो गये। इस प्रकार १०१ अंश ऐसी ही जीव में असंख्यात प्रदेश हैं। कभी यह जीव एक दो आदिक प्रदेश रूप नहीं रह सकता। सदा असंख्यात प्रदेशी रहेगा। वहाँ प्रदेश का अर्थ है आकाश के एक छोटे हिस्से बराबर जिसमें केवल एक परमाणु रह सके, ऐसे-ऐसे असंख्यात प्रदेश हैं, मानो इस समय पैरों से लेकर सिर तक इतने लम्बे चौड़े में हमारा आत्मा है। तो यह जीव कितना लम्बा चौड़ा है, इसको कोई यह कहेगा कि यह १० फुट का है वर्ग के हिसाब से तो उसमें एक फिट कुछ चीज है। एक फिट में एक इंच कोई माप है। एक इंच में एक सूत कोई माप है और एक सूत में भी अनगिनते माप हो माप हो सकते हैं। उनमें सबसे छोटा जो माप हो, जिसका कोई दूसरा भाग न हो सके उसका नाम एक प्रदेश है ऐसे-ऐसे अनगिनते प्रदेशों वाला यह जीव है। यही सब आगे बतावेंगे। यों प्रदेश समूह रूप होने का नाम है अस्तिकाय। ये ५ द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं।

अणुमहत्त्व—अस्तिकाय का दूसरा नाम अणुमहान् है। अणु का अर्थ यहाँ प्रदेश लिया है। चाहे वह मूर्त पदार्थ हो चाहे अमूर्त पदार्थ हो उनका जो निर्विभाग अंश है वह कहलाता हे अणु। अणु शब्द का अर्थ निर्विभाग अंश है शब्द की दृष्टि में। ये सब पदार्थ लोकाकाश में है। धर्मद्रव्य में असंख्यात अणु है, अधर्मद्रव्य में असंख्यात और आकाश में अनंत, सबमें अणु कह सकते हैं, पर रूढ़ि हो जाने से कुछ अचक ही मालूम होती है। तो अणु का अर्थ है प्रदेश। उन प्रदेशों में जो महान् है अर्थात् प्रचयात्मक है उसे अणुमहान् कहते हैं। अणुमहान् का अर्थ हे अस्तिकाय। जो अणुवों में महान् है ऐसा अथ्र करने पर दो अणु वाला स्कंध नहीं आया। जो प्रदेश से महान् है वह अणुमहान् पर इसका अर्थ यों भी कर सकते कि जो दो अणुवों से महान् है, इसमें दो पुद्गल परमाणुवों का स्कंध है वह अणुमहान् हुआ, अस्तिकाय हुआ। तीसरा अथ्र यों लगाया कि जो अणु हैं, और महान् हैं उन्हें अणु महान् कहते हैं। जो निर्विभाग अंशों से अंशों का परिचयात्मक है उसे अणुमहान् कहते हैं। ऐसा अर्थ करने पर व्यक्ति और शक्ति दो चीजें आ गयी तो जो

शुद्ध परमाणु है पुद्गल का वह व्यक्तिरूप से तो अणु है और शक्तिरूप से महान् है, क्योंकि अणु में ऐसी शक्ति है कि वह स्कंध बन सकता है। यों जो जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश में ५ पदार्थ अस्तिकाय हैं, अणुमहान् हैं।

कालद्रव्य की एकप्रदेशिता—इन ५ अस्तिकायों से छूट गया जो कालद्रव्य है वह अस्तिकाय नहीं है। यद्यपि वह अस्ति है? है, वास्तव में है, लेकिन कालद्रव्य में प्रदेशप्रचय नहीं हैं न तो कालद्रव्य जीवादिक पदार्थों के है, न व्यक्तिरूप प्रदेश प्रचयात्मक है और न परमाणु की तरह शक्तिरूप से प्रदेश प्रचयात्मक है। कालद्रव्य न तो एकप्रदेश से अधिक वाला है और न कभी भी कालद्रव्य मिलकर प्रचयरूप बन जाय ऐसा है। कालद्रव्य के स्वरूप को जानने के लिए रत्नों की राशि का दृष्टान्त दिया है। जैसे रत्नों की राशि एक जगह घुल मिलकर पास-पास पड़ी है, पर एक रत्न दूसरे रत्नरूप नहीं हो पा रहा है ऐसे ही कालद्रव्य, लोकालोक के एक-एक प्रदेश पर एक कालद्रव्य है। वे कभी भी मिल जायें पर पुद्गल स्कंध की तरह या जीव के विभाव व्यञ्जन पर्याय की तरह एकमेक नहीं हो सकते हैं। इस ही कारण कालद्रव्य को अस्तिकाय में ग्रहण नहीं किया है। वह अस्ति तो है पर काय नहीं है। अब इन ५ अस्तिकायों में अस्ति शब्द का क्या अर्थ है और काय शब्द का क्या अर्थ है, इस विशेष कार्य को बतला रहे हैं।

गाथा ५

जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पञ्जयेहिं विविहेहिं।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तइलुक्कं।।५।।

पदार्थ की अविभागिता—जिन पदार्थों का नाना गुणों और नाना पर्यायों से सहित अस्तित्व भाव है वे ५ अस्तिकाय होते हैं, जिनके द्वारा ये तीन लोग उत्पन्न होते हैं। अस्तिकायों में नाना गुण और नाना पर्यायों में साथ आत्मभाव है, अभिन्नता है पदार्थ तो प्रत्येक एक पूर्ण स्वतंत्र है और वह अविभागी है, एक का कभी विभाग नहीं होता और एक से पहिले कोई संख्या नहीं है। आध चौथाई ऐसी जो मान्यता है वह वास्तविक एक आधा चौथाई नहीं है, किन्तु वह एक जो अनेक से मिलकर कल्पना में आया है इसका आधा चौथाई किया जाता है। तो पदार्थ प्रत्येक अविभागी हैं और वे अपनी शक्ति में अपनी परिणतियों में तन्मय हैं।

द्रव्य की गुणपर्यायमयता—पदार्थ है तो उसका कोई न कोई स्वभाव होना ही चाहिए। वह ही स्वभाव गुण है और जब गुण है, शक्ति है तो उसका कोई न कोई परिणमन होना ही चाहिए। वह परिणमन पर्याय है तो पर्याय भी पदार्थ से जुदी नहीं है। हालांकि पर्याय अगले समय में नहीं रहेगी, अगले समय में नवीन पर्याय होगी फिर भी जब जो पर्याय है, तब वह पर्याय उस पदार्थ उस पदार्थ में तन्मय है, अथवा यों कहो कि पर्याय का पदार्थ से अलग सत्त्व नहीं है, वह पदार्थ जिस देशरूप वर्त रहा है उस देश का नाम पर्याय है। पर्याय से जुदा सत्त्व नहीं और गुण का भी पदार्थ जुदा सत्त्व नहीं। पदार्थ जिस स्वभाव को लेकर रहता है उस ही का नाम गुण है, इस कारण गुण का भी पदार्थ से कोई जुदा अस्तित्व नहीं है और कभी तत्त्व पर्यायों से जुदा द्रव्य का अस्तित्व नहीं है। द्रव्य का लक्षण जैन दर्शन में गुण पर्यायबद्द्रव्यं कहा है। गुण पर्यायात्मक परद्रव्य होते हैं। इस त्रितय में से किसी एक को जुदा स्वतंत्र नहीं ठहराया जा सकता है। द्रव्य अलग हो, गुण अलग हो, पर्याय अलग हो, इनकी सत्ता जुदी-जुदी हो ऐसा नहीं है।

भेदवाद का एक स्रोत—भैया किन्हीं सिद्धान्तों ने माना है कि द्रव्य अलग पदार्थ है, गुण अलग पदार्थ है और क्रिया अलग पदार्थ हैं। वैशेषिक लोग ७ पदार्थ मानते है—द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। ये सातों के सातों एक पदार्थरूप हैं। ये भिन्न-भिन्न नहीं है, पर लोगों को समझाने

के लिए उस पदार्थ की जो विशेषता बतायी जाती है वह विशेषता इन ६ रूपों में है। गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव पदार्थ एक ही है, जैसे एक जीव पदार्थ ले लीजिए। जीव पदार्थ में जो ज्ञान दर्शन आदिक गुण हैं यह गुण पृथक् पदार्थ नहीं हैं, जीव स्वयं ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान जीव से अभिन्न है। उस भिन्न तत्त्व को समझाने के लिये जो भेद करके कहा जाता है वह व्यवहार दृष्टि से गुण कहलाया।

द्रव्य की गुणपर्यायमयता—जीव का गुण जीव से न्यारा नहीं है और जीव का जो गुण है वह प्रतिसमय किसी न किसी रूप परिणमता है। जैसे ज्ञान गुण से अमुक पदार्थ जाना इसी प्रकार जो ज्ञानगुण का परिणमन है उसका नाम क्रिया है। पर्याय कहो या क्रिया कहो, एक ही अर्थ है। क्रिया नाम केवल चलने का नहीं है, किन्तु कुछ भी परिणमन बनाना चाहे वह क्षेत्र क्षेत्रान्तर का परिणमन हो या उसही क्षेत्र में रहकर एक परिणमन को त्यागकर दूसरे परिणमन रूप हो वह सब क्रिया कहलाती है, जीव की क्रिया जीव से भिन्न नहीं है, पर नाम तो जुदा-जुदा है। गुण क्रिया इसका अर्थ जुदा है, इसके लक्षण को जुदा देखकर वैशेषिकों ने अलग-अलग तत्त्व मान लिया है।

द्रव्य की सामान्यविशेषात्मकता—और तो क्या, सामान्य और विशेष इन दो को उन्होंने जुदा-जुदा माना है, पर कहीं निर्विशेष मनुष्य देखा है किसी ने या विशेष देखा है किसी ने। चीज है, उसको ही सामान्य दृष्टि से देखते हैं तो वहाँ सामान्य प्रतिभास होता है, विशेष दृष्टि से देखते हैं तो वहाँ विशेष प्रतिभास होता है। जैसे सब मनुष्य बैठे हैं सभी वर्ण के, जाति के, धर्म के बैठे हैं उन सबको यदि केवल सामान्य रूप में निरखा जाय तो वहाँ मनुष्य सामान्य नजर आता। और वहाँ कारण वश, प्रयोजनवश में अमुक वर्ण के हैं, ये सेठ हैं, ये बाबू हैं आदिक रूप से देखा जाय तो वही विशेष बन गया। अब उन सब लोगों को छोड़कर सामान्य कुछ अलग बात है क्या। अथवा उन लोगों को छोड़कर विशेष क्या अलग बात है? वह ही सब सामान्य रूप से देखने पर सामान्य है और विशेष रूप से देखने पर विशेष है। सामान्य और विशेष भी पदार्थ से जुदी चीज नहीं है।

समवाय की कल्पना—एक पदार्थ समवाय माना गया है वह भी जुदी चीज है, इसकी कल्पनाएं देखिये थोड़ा सा भी शब्द के माध्यम से भेद का अवसर पाये तो यह भेद में बढ़ जाता है। जीव स्वतन्त्र पदार्थ है। गुण स्वतंत्र पदार्थ है क्रिया, सामान्य आदि स्वतन्त्र पदार्थ हैं जब ऐसा वैशेषिकों द्वारा मान लिया गया तो वहाँ यह प्रश्न होता है कि जब ये दो पदार्थ जुदे हैं, जीव जुदा हैं, ज्ञान जुदा हैं, तो जैसे यह चौकी जुदी हैं, मैं जीव जुदा हूं, तो मुझमें यह चौकी प्रवेश नहीं कर जाती ऐसे ही जब ज्ञान जुदा मान लिया और जीव जुदा मान लिया तो जीव में ज्ञान क्यों प्रवेश करेगा। उसके समाधान रूप में समवाय नाम का पदार्थ माना है। समवाय नाम है सर्वव्यापी का। उस समवाय के कारण जीव और ज्ञान का अभिन्न सम्बन्ध हो जाता हैं। कोई चीज एक बार झूठ कह दी जाय तो उस झूठ को साबित करने के लिये अनेक झंझट उठाने पड़ते हैं। मूल में झंझट यह हुआ कि द्रव्य जुदा हैं, गुण जुदा हैं, पर्याय जुदी हैं तो अब और-और भी मानना पड़ा।

जैनदर्शन की उदारदृष्टि—जैन दर्शन कहता है कि परमार्थ से तो वह सब एक हैं, पर संज्ञा लक्षण प्रयोजन सामान्य आदि व्यवहार धर्म चलाने के लिये द्रव्य गुण पर्याय ये जुदे बताये गये हैं। जैसे मिट्टी का घड़ा है और उस घड़े को फोड़ दिया, खपरियां बन गई तो घड़ा पर्याय कहा गया, किस जगह विलीन हो गया बाहर निकलकर नष्ट हुआ य मिट्टी में अब भी पड़ा हुआ है खपरियां बन जाने पर घड़े की हालत क्या हुई हैं? क्या बतावोगे। घड़ा बाहर भी जाकर नहीं नष्ट हुआ, घड़ा मिट्टी में भी मौजूद नहीं हैं और वह जो कुछ घड़ा कहलाता था वह मैटर घड़े में भी नहीं हैं, ऐसा भी नहीं कह सकते। ऐसा त्रिलक्षणात्मक पदार्थ है कि उसको केवल समझाने के लिये ही अलग बताया जाता हैं। वस्तुत: यह तत्त्व अलग-अलग

नहीं हैं। इन समस्त द्रव्यों में गुण और पर्याय द्रव्य से अभिन्न हैं। गुण नाम तो हैं जो अन्वय रूप से रहे और पर्याय नाम हैं जो व्यतिरेक रूप से रहे। हैं ये दोनों वस्तु के विशेष जैसे ज्ञानशक्ति—यह जीव पदार्थ में अनादि से अन्तकाल तक सदा एक रूप रही आयी है, और उस ज्ञान में जो परिणमन चलता हैं वह व्यतिरेकी हैं। जो इस समय का ज्ञान है वह अगले समय में नहीं। प्रत्येक समय में भिन्न-भिन्न चलता जाता हैं।

अभावपदार्थ की कल्पना—एक वस्तु का दूसरी वस्तु में अभाव होना जानकर अभावनात्मक पदार्थ की कल्पना भी भेदवाद में होती है, किन्तु अभाव कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं हैं। पदार्थ का अपने स्वरूप से ही होना अन्य पदार्थों का अभाव है। समस्त वक्तव्य सप्रतिपक्ष हैं। विवक्षित पदार्थ हैं यह ''है पना'' अविवक्षित पदार्थों के अभाव का समर्थक है। एक वस्तु में अन्य समग्र वस्तुवों का अभाव उस वस्तु के सद्भावरूप है।

उत्पादव्ययध्रौव्य की एकाधिकरणता—गुण और पर्याय से अभिन्न होने के कारण वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक कहा जाता है। एक पर्याय विलीन हुई, नवीन पर्याय उत्पन्न हुई और वह पर्याय जिस शक्ति में बनती है वह शक्ति अन्वय रूप रहती हैं। सो गुण की दृष्टि से ध्रुव हुई। यों पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक हैं। देखिये पदार्थ में यह स्वरूप पड़ा हुआ हैं कि वह प्रतिसमय नवीन दशा अपनी बना ले और पुरानी दशा को विलीन कर दे, और ऐसा उत्पादव्ययध्रौव्य होकर भी स्वयं का कभी अभाव नहीं होता। जिसमें यह उत्पादव्यय होता हैं वह पदार्थ ध्रुव रहा करें। प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूप से हैं, इसका विश्वास हो जाय तो मोह नहीं ठहर सकता हैं। प्रत्येक पदार्थ केवल खुद में ही परिणमता है, दूसरे में नहीं।

मोह का अनवकाश—प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने सत्त्व से सदा सुरक्षित हैं, दूसरे की आशा पर नहीं, ऐसे ही मैं हूं, मैं अपने उपादान में अपनी योग्यता के अनुकूल अपने आपमें परिणमता रहता हूं। मैं किसी अन्य को पहिचानता भी नहीं, यों ही दूसरे पदार्थ भी अपने ही गुणों के वे अपने में ही परिणमते हैं। वे मुझमें नहीं आते, तब मोह किस बात पर करना। तब कोई वस्तु मेरा नहीं है मैं किसी का नहीं हूं। परिणमन स्पष्ट जुदा-जुदा है त्रिकाल भी सम्बंध हो नहीं सकता। वस्तु के सत्ता के कारण ही यह दृढ़ व्यवस्था हैं, ऐसा परिज्ञान होने पर फिर कैसे माना जा सकता है कि यह पदार्थ इसका हैं। जब स्वरूपसत्त्व स्वतन्त्र हैं तो किसी को किसी का कुछ मान लेना यह कभी हो नहीं सकता। प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने ही गुण पर्याय से अभिन्न हैं।

उत्पादव्ययध्रौव्य की अविनाभाविता—पर्याय अलग वस्तु हैं, द्रव्य अलग वस्तु हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि कोई चीज नष्ट हो गयी, कोई दूसरी चीज उत्पन्न हो गयी, कोई दूसरा ध्रुव है तो क्या है, कोई ऐसा पदार्थ जो बने और बिगड़ नहीं और बना रहे? है क्या कोई ऐसा पदार्थ जो बना रहे, और बने बिगड़े नहीं? बनना, बिगड़ना, बना रहना इन तीनों का अविनाभाव हे। इन तीनों में से कोई एक न माना तो बाकी दो भी सिद्ध नहीं हो सकते हैं। तो कि सब पदार्थ गुणपर्यायात्मक हैं। यह तो अस्तित्व का अंश सिद्ध किया। अब ये काम क्यों कहलाते हैं दूसरी बात सुनिये।

प्रदेश की दृष्टि और अस्तिकायत्व की सिद्धि—ये ५ काय क्यों कहलाते हैं। इन ५ पदार्थों के जो अवयव हैं, अविभागी अंश हैं, प्रदेश हैं वे प्रदेश यद्यपि न्यारी-न्यारी सत्ता लिए हुए नहीं हैं, लेकिन एक-एक प्रदेश को न्यारा-न्यारा ज्ञान में न लेने पर असंख्यात प्रदेश कैसे कहेंगे। जीव में असंख्यात प्रदेश हैं, तो असंख्यात की किसी रूप में भी गणना तो तब सिद्ध होगी जब इतना जान लिया कि एक इतना है, एक यह है और ये सब मिलकर असंख्यात हैं। देखिये निश्चय और व्यवहार का कैसा सम्बन्ध उपयोग में रखना पड़ता है। निश्चय से पदार्थ अखण्ड है, उसमें असंख्यात प्रदेश और अवयव नहीं हैं, पर दिखता है कि पदार्थ दोनों में पड़ा है तो प्रदेश अवयव हैं। वे प्रदेश परस्पर व्यतिरेकी भी है। जैसे दृष्टान्त के लिए

एक चौकी लो। यह डेढ़ फिट लम्बी चौड़ी, इसमें एक-एक सूत स्थान कितने पड़े हैं। तो मान लो कि हजारों लाखों हो गए। अब एक सूत स्थान सूत दूसरे सूत वाले स्थान से जुदा है कि नहीं? है। अगर उन प्रत्येक सूतों को व्यतिरेकी न मानें तो सारी चौकी एक सूत बराबर कहलायेगी। यह सारी चौकी मान लो हजार सूत प्रमाण है तो यह तब ही बन सकती है जबकि प्रत्येक सूत व्यतिरेकी हो, जुदा-जुदा हो। ऐसे ही आत्मा असंख्यात प्रदेशी है तो उसके प्रत्येक प्रदेश जुदे-जुदे हैं, फिर भी सत्व जुदा नहीं है वह सब एक अखण्ड द्रव्य हैं। ऐसा उन असंख्यात प्रदेशों का द्रव्य जीव है, यों जीव कायवान होता है। जो पदार्थ अस्ति है और कायवान है उसे अस्तिकाय कहते हैं। इन ५ अस्तिकायों का वर्णन इस ग्रन्थ में मोह हटाने के लिए किया जा रहा है कि हम उन पदार्थों की स्वतंत्रता जाने और इस ज्ञानबल से हम पर से मोह हटाकर अपने आपके स्वरूप में मग्न रहा करें।

आत्मश्रद्धान—पदार्थों के स्वरूप का वर्णन चल रहा है। जीव का कल्याण पदार्थ के यथार्थस्वरूप के ज्ञान से ही होगा। जीव को शान्ति का उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के सिवाय अन्य कुछ नहीं है। जो पदार्थ जिस रूप से हैं उन पदार्थों के रूप से श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है। जैसे यह मैं आत्मा अमूर्त ज्ञान दर्शन शक्ति आनन्द का पिंड सबसे न्यारा सत् हूं। यह ही अनेक परमाणुवों से मिलकर बना हुआ स्कंध है। यह देह विघट जायगा, यह मैं आत्मा अखण्ड सदा अपने ही स्वरूप रहने वाला हूं। जगत में जो भी जीव दिखते हैं उन सबकी यही परिस्थिति है। उनमें रहने वाला जीव ज्ञानानन्दपुंज है। और यह दृश्यमान शरीर अनन्त पुद्गल परमाणुवों का पिंड है। शरीर से यह जीव अत्यन्त न्यारा है। मुझसे सब जीव और समस्त पुद्गल धर्मादिक द्रव्य सब न्यारे है। मैं अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से सत् हूं। परिपूर्ण हूं, अपने ही स्वरूप से अपने में परिणमता रहता हूं। ऐसी स्थिति प्रत्येक पदार्थ की है। ऐसा सत्य श्रद्धान होता है तो परपदार्थों से मोह दूर होता है।

मोहसंकट—जीव को जितनी भी परेशानी है वह सब मोह की परेशानी है अन्यथा सोचो आज जीवन है, अचानक मरण हो गया तब यहाँ की क्या कोई चीज अपने काम आयगी? अरे यहाँ का सब ठाठ भूल जायगा। जहां अगले भव में जावेंगे वहाँ के आश्रय से विकल्प चलेंगे। यहाँ तो व्यर्थ ही विकल्प बनाकर दु:खी होते हैं। सम्यग्ज्ञान में यह प्रताप है कि परपदार्थों को पर और निज को निज जानने के कारण मोह का संकट नहीं रहता है।

वस्तु का पुन: निर्देशन—वस्तु स्वरूप का यह संक्षिप्त वर्णन चल रहा है। पदार्थ ६ जाति के होते हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जिसमें जानने देखने की शक्ति है, रूप, रस, गंध, स्पर्श से रहित है वह तो जीव द्रव्य है। जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श पाया जाता है वे सब पुद्गल द्रव्य हैं। चाहे कोई पुद्गल दिखने में आये अथवा न आये, सूक्ष्म हो अथवा स्थूल हो, जितने भी पुद्गल है वे सब रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले हैं। जीव और पुद्गल के गमन कने में जो सहायक सत् है उसे धर्मद्रव्य कहते हैं। यहाँ धर्मद्रव्य से मतलब पुण्य से नहीं है, धर्म करने से नहीं है, किन्तु धर्म नाम का एक ऐसा द्रव्य है कि जो न हो तो जीव पुद्गल को गमन नहीं मिलता है। जैसे मछली के चलने में जल सहायक है, जल जबरदस्ती मछली को चलाता नहीं है, पर मछली चले तो उसमें जल कारण है। ऐसे ही हम लोगों को यह धर्मद्रव्य जबरदस्ती चलाता नहीं है, पर हम लोग चले तो यह धर्मद्रव्य सहायक है। धर्मद्रव्य रूप, रस, गंध, स्पर्श से रहित है, इस कारण किसी इन्द्रिय के द्वारा ज्ञात नहीं होता है। किन्तु, वीतराग ऋषिसंतों ने यह सब सूक्ष्म तत्त्व भी बताया है और आजकल वैज्ञानिक लोग भी ऐसा अनुमान करते हैं कि आकाश में ऐसे सूक्ष्म तत्त्व हैं जिनसे चलने को मार्ग मिलता है। उनके तरंग है। उनके आश्रय से चला करते हैं, वह धर्मद्रव्य है और जीव पुद्गल के ठहरने में जो सहायक हो वह अधर्मद्रव्य है। समस्त पदार्थ जिस स्थान में

रहें उसका नाम आकाश द्रव्य है, और कालद्रव्य जिसके कारण पदार्थ परिणमता रहे, बदलता रहे उसका नाम कालद्रव्य है।

स्वस्वविस्तार—इन ६ पदार्थों में से काल द्रव्य तो निरवयव है। केवल एक प्रदेशमात्र है। अस्तिकाय नहीं कहलाता है, शेष जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये अस्तिकाय कहलाते हैं। जीव जितने विस्तार में है, जितने घेरे को लिए हुए हम आप अपने में सुख दुःख का अनुभव करते हैं वह जीव का विस्तार है। उसमें असंख्यात प्रदेश हैं। पुद्गल में जो वास्तविक परमाणु पदार्थ हैं वे तो निरावयव हैं। वे एकप्रदेशी है। उसका विस्तार नहीं है। पर पुद्गल में ऐसी शक्ति है कि वह परमाणु मिल जुलकर एक बड़े स्कंध बन सकते हैं, अन्य द्रव्य आपस में मिलकर स्कंध नहीं बन सकते। जीव-जीव १०, २०, ५० आपस में मिलकर एक पिंड बन जायें सो नहीं बन सकते हैं। सब जीव न्यारे-न्यारे ही रहेंगे। धर्म, अधर्म, आकाश ये भी न्यारे-न्यारे ही रहेंगे। काल तो न्यारा हैं ही। पुद्गल में ऐसी विशेषता है कि बहुत से स्कंध मिलकर एक बड़ा रूप पा लेते हैं। अथवा बहुप्रदेशी होने की शक्ति है इस कारण पुद्गल को अस्तिकाय कहा है।

सावयव में अस्तिकायपना—इस प्रकरण में यह जिज्ञासा हो सकती है कि हमको तो पुद्गल अस्तिकाय मालूम होते हैं क्योंकि कभी परस्पर मिलकर बड़े हो जाते हैं, कभी बिखरकर छोटे हो जाते है। उसमें तो मालूम होता है कि वह अस्तिकाय हैं, किन्तु अन्य जो जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, नाम के अमूर्त पदार्थ हैं उनमें बहुप्रदेशी क्या? पुद्गल में तो साफ नजर आता है कि अब यह बड़ा स्कंध हो गया, अब यह छोटा स्कन्ध रह गया। यहाँ तो अस्तिकाय का होना ठीक जंच रहा है, पर जीव में क्या, जीव तो एक है, वह बहु प्रदेशों का मिलकर कैसे बना? आकाश एक है, अनन्तप्रदेशी है उसमें अनन्त प्रदेश है। ये कैसे आये समाधान यह है कि यद्यपि वे अमूर्त हैं और उनके प्रदेशों का कभी विभाग भी नहीं हो सकता, फिर भी वे अवयव सहित हैं।

अखण्ड आकाश में सावयवता—जैसे इतना बड़ा आकाश है वह एक है। आकाश अनेक नहीं हैं, एक है, फिर भी उस आकाश में हिस्सों की कल्पना हो जाती हैं। यह घड़े का आकाश है, यह कमरे का आकाश है। यद्यपि आकाश असीम अनन्त हैं, उसमें विभाग बन गए, ऐसे ही यह जीव एक है, फिर भी इसका विस्तार है। देखो ना इस देह में सर्वत्र सुख दुःख का अनुभव होता है कभी हाथ में फोड़ा फुंसी हो जाय, क्लेश बढ़ जाय तो ऐसा लगता है कि बड़ा कष्ट होता है, पर कष्ट कहां-कहां हो रहा है? इस देह भर में जो आत्मा फैला हुआ है उस सम्पूर्ण आत्मा में कष्ट हो रहा है। ऐसा नहीं है कि हाथ के क्लेश जो आत्मा के प्रदेश हैं उनमें कष्ट होता हो बाकी जगह कष्ट न होता हो। जीव तो एक अखण्ड है। वह जो कुछ भी अनुभव करता है अपने में समस्त प्रदेशों में अनुभव करता है। यों ही समस्त अमूर्त द्रव्यों को जान लेना चाहिए। यदि इन अमूर्त पदार्थों में अवयव अंश की कल्पना न की जाय। प्रदेश न माना जाय तो यह एक प्रदेशमात्र रह जायगा। जैसे आकाश का टुकड़ा नहीं होता ठीक है, फिर भी उसमें अंश न माना जाय कि यह घड़े का आकाश है, और यह संदूक का आकाश है तो इसका अर्थ यह है कि जो घड़े का आकाश है वही संदूक का आकाश बन गया। फिर घड़ा क्या रहा, संदूक क्या रहा? तो अविभागी भी पदार्थ में प्रदेश की कल्पना होती है। केवल एक कालाणु काल द्रव्य ही अस्तिकाय नहीं है, बाकी समस्त पदार्थ अस्तिकाय हैं।

धर्मपालन में वस्तुविज्ञान का सहयोग—भैया ! पदार्थ का स्वरूप बताना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि धर्मपालन का साधन वस्तुस्वरूप का यथार्थ ज्ञान है। भगवान से मोक्ष की भीख मांगने से मोक्ष न मिल जायगा। प्रभु से सुख की भीख मांगने से सुख न मिल जायगा, किन्तु प्रभु का जो स्वरूप है उस स्वरूप को निरख-निरखकर अपने आपमें अपनी शक्ति का उत्साह बनाया जाय और अपने गुणों का अनुराग

किया जाय तो उसमें अपने ही ज्ञान गुण के अनुभव से मोक्ष का मार्ग मिलेगा और अपने ही शुभ परिणामों के अनुसार सुख मिलेगा। भगवान तो हमारे ध्यान में आश्रयभूत हैं। यही उनकी करुणा है पर हम खुद चलें उल्टा, विपरीत श्रद्धा रक्खे। पाप का परिणाम करें और भगवान से रोज अपनी माफी मांगते रहें तो यों माफी नहीं मिलती है। खुद की मलिनता करके किए गए पापों की माफी खुद के निर्मल परिणामों पर ही सम्भव है। यह सब निर्मलता हमारी तब प्रकट होगी जब हम अपने स्वरूप की ओर झुकें, इससे ही निर्मलता पा सकेंगे। इसी प्रयोजन के अर्थ वस्तु के स्वरूप का वर्णन इस ग्रन्थ में किया जा रहा है।

त्रैलोक्य—इन समस्त द्रव्यों से यह तीनलोक बना हुआ है। जैसे एक नगर में हजारों घर हैं उन हजारों घरों को एक समूचे रूप से देखा जाय तो उसका नाम नगर है ऐसे ही अनन्त जीव और उनसे भी अनन्तगुणे पुद्गल एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य इन सब पदार्थों का जो समूह है उसका नाम तीनलोक है। वह तीनलोक से सम्पन्न हुआ, तीनलोक के रूप में निष्पन्न हुआ यह समस्त अस्तिकाय है।

वस्तुस्वरूप में स्वातन्त्र्य की सिद्धि—ये सभी पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्य करके सहित है जैन सिद्धान्त में तत्वार्थसूत्र में बताया है उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तसत् पर दृष्टि दे तो यह मालूम पड़ेगा कि अन्य समस्त व्याख्यान इस सूत्र का विस्तार है। पंचम अध्याय में एक सूत्र आया है, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तां सत्। सत् किसे कहते हैं, पदार्थ किसे कहते हैं? जो उत्पादव्यय और ध्रौव्य करके सहित हो। इसमें क्या मर्म आया है। जो भी पदार्थ हैं वे अपने स्वरूप के कारण अपने आपमें उत्पन्न होते हैं और अपने ही सत्त्व के कारण पुरातन पर्याय को विलीन कर देते हैं, और अपने सत्त्व से सदा ध्रुव बने रहते हैं, यह पदार्थ में उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त होने का परिणाम पाया जाता है, स्वरूप पाया जाता है, अब कोई भी पदार्थ एक भी समय बिना परिणमे रहेगा नहीं, प्रतिसमय परिणमते रहते हैं। तब बतलावो दूसरा कैसे परिणमायेगा? प्रत्येक पदार्थ में खुद के परिणमन का सामर्थ्य बसा हुआ है इस कारण कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थ को परिणमा ही नहीं सकता है। कितनी स्वतन्त्रता है, हम आप कितने निर्लेप हैं। किसी भी वस्तु से कुछ सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूप से है पर के स्वरूप से नहीं है मेरा अस्तित्व मेरे में ही है, पर का स्वरूप पर में ही है, कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थ का स्वामी नहीं हो सकता। जब प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभाव से निरन्तर परिणमते रहते हैं तब मैं किसी पदार्थ को परिणमाने वाला कैसे हूं। मैं अपने आपका ही कुछ से कुछ बन सकता हूं, किसी दूसरे पदार्थ का मैं कुछ भी नहीं बन सकता। हाँ कोई किसी दूसरे के परिणमाने में निमित्त भले ही हो जायें पर कोई भी पदार्थ किसी दूसरे पदार्थ का कुछ करने वाला नहीं है।

धर्मार्थ जीवन—भैया ! पूर्वकृत पुण्य के उदय से आज जो कुछ वैभव मिला है, सामग्री मिली है तो इसमें मोह ममता का हो जाना यह तो इस जीवन पर बड़ी विपदा लाना है। यह धन वैभव तो पुण्य के उदय से आता है। न हो किसी के पुण्य के उदय तो कितने भी विकल्प मचा डाले पर धन वैभव की प्राप्ति नहीं हो सकती है। ज्ञानी जीव को किसी भी बात का कभी विकल्प नहीं होता है उसने तो अपना सारा जीवन धर्म साधना के लिए माना है, बाह्य वस्तुओं के विकल्प के लिए उसने अपना जीवन नहीं माना है। यह प्रभु अरहंत देव जिनकी हम आप मूर्ति बनाकर पूजते हैं उन्होंने भी समस्त प्रकार के पर के विकल्प का परित्याग कर अपने को आकिञ्चन्य स्वरूप निरखा था। यही पाठ सीखने के लिए तो हम आप उन अरहंत प्रभु की मूर्ति बनाकर उसकी स्थापना करके पूजते हैं।

मूर्ति का माध्यम—मूर्ति स्वयं भगवान नहीं है, उसमें तो प्रभु के गुणों का एक संकेत है, जैसे कागज के नोट चलते हैं तो उस कागज का कुछ भी मूल्य नहीं है मूल्य तो उस चिन्ह का है जो कि उसमें छपा हुआ रहता है। सरकार की विधि में आज उसकी मान्यता चल रही है। हम आप ग्रन्थ में ये अक्षर पढ़ते हैं, जो मुख से शब्द बोले जाते हैं उनकी यह मूर्ति है, उनकी मूर्ति बना ली गई है, स्थापना हो गयी है।

ऐसा आकार बनाया तो उसका नाम अक्षर है, वह अक्षर में मूर्ति है। जितने शब्द हम आप बोलते है स्वर और व्यञ्जन वहाँ मूर्ति ये अक्षर हैं, तो मूर्ति के बिना किसी का काम भी नहीं चल पाता है। हम आप लोग साधुसंतों की फोटो उतार लेते हैं। वह उनकी मूर्ति हैं, उससे पहिचान होती है कि यह अमुक साधु हैं। तो व्यवहार में किसी न किसी रूप में यथार्थ बहुत की मूर्ति हो जाती है।

प्रभुत्व—निज भगवान की इस मूर्ति में स्थापना की गई है वह भगवान क्या है? केवल ज्ञान, केवल दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त शक्ति के पिण्ड हैं। हम जिसे चाहें उसे भगवान मान लें तो ऐसा कैसे हो सकता है। जिसके ध्यान करने से जिसके स्मरण करने से रागद्वेष दूर हो उस भगवान की मान्यता से लाभ हैं और जिसके स्मरण से रागद्वेष बढ़े उसके भगवान मानने से क्या लाभ है? प्रभु का स्वरूप स्वयं समता का पुंज हैं। उनके ध्यान से समता का पाठ मिलता है वह प्रभु शुद्ध गुण शुद्ध पर्याय के पिण्ड हैं।

निजास्तिकाय का सुप्रतिबोध—प्रत्येक पदार्थ अपनी शक्ति और अपनी पर्याय में तन्मय हैं। ये सब अस्तिकाय हैं। इस जीव का पता अपने को बहुत जल्दी हो जाता है, पर धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य इनका पता नहीं पड़ सकता है। कारण कि ये अमूर्त हैं और यह मैं आत्मा अमूर्त हूं पर मैं खुद हूं ना, मेरी बात मुझ पर ही बीतती है, और मैं खुद, खुद को ही न जान पाऊँ यह कैसे होगा। हम अपने आपमें यह बराबर देख रहे हैं कि हम इतने बड़े विस्तार वाले हैं अस्तिकाय है ऐसा धर्म और अधर्म तथा आकाशद्रव्य अस्तिकाय है।

जीव की विस्तारशक्ति और अस्तिकायों का निर्देश—जीव कितना बड़ा है प्रदेश की दृष्टि से? तो अनुमान कर लीजिये। चींटी के शरीर में जीव पहुंच गया तो उस समय भी उतना ही बड़ा है। एक स्थिति होती है सयोगकेवली भगवान की केवली समुद्घात में लोकपूरण की स्थिति। जिस समय भगवान के प्रदेश समस्त लोकाकाश में पूर्ण व्यापकर फैल जाते हैं तब समझा ओह ! यह जीव कितने विस्तार वाला है—असंख्यात प्रदेशी है, और पुद्गल द्रव्य में तो इसके स्कंधों को देखकर यह अन्दाज हो जाता है कि यह इतने बड़े विस्तार वाला है, अस्तिकाय है। यों अस्तिकाय के प्रकरण में अस्ति और काय का अर्थ बताया गया है। जो हो उसे अस्ति कहते हैं और जो प्रदेश प्रचयात्मक हो उसे काय कहते हैं। जीव और पुद्गल दोनों अस्तिकाय है। धर्म, अधर्म और आकाश भी अस्तिकाय है।

संकटहरण सम्यक् दर्शन—जो पदार्थ जैसा है वैसा ही मान लो तो आज ही सारे संकट खतम है। यह मैं आत्मा त्रिकाल समस्त पदार्थों से न्यारा हूं। जिस समय यह मोही जीव सारे पदार्थों को अपना ही मान रहा है उस समय भरी सारे पदार्थों से यह न्यारा है। जब यह जीव सम्यक् परिज्ञान करके समस्त पर पदार्थों से अपने को न्यारा निरखता है उस समय भी यह जीव निर्मल है और जब सर्व कर्मबन्धन से छूटकर केवल एक असम्पृक्त रह गया तब भी यह जीव निर्मल है यह जीव धन वैभव इत्यादि समस्त पर से न्यारा है देह तक से भी न्यारा है। यों मैं सबसे न्यारा हूं ऐसा अकिञ्चन ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभव करेंगे तो शान्ति मिलेगी। पुण्य बढ़ेगा, जो-जो बात सोच रक्खी हों उन सबसे न्यारे अपने को आकिञ्चन्यस्वरूप ज्ञानमात्र निरखने से सारी सिद्धि हो जाती है:—

गाथा ६

जीवो पुग्गल कायो धम्म अधम्मो तहेव आयासं।
ते चेव अस्थिकाय परियट्टणलिङ्गसँजुता।।६।।

द्रव्य समूह—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये अस्तिकाय तथा परिवर्तन के चिन्ह से जाना जाने वाले कालद्रव्य कर सहित ये सब द्रव्य होते हैं। ये समस्त द्रव्य तीन काल परिणमन कर रहे हैं, फिर भी नित्य है। इस गाथा में छहों द्रव्यों का वर्णन आया है। द्रव्य गुण पर्यायों के अभिन्न आधार होते हैं। जो

भी पदार्थ है उसमें कोई न कोई परिणमन अवश्य है तथा उस परिणमन का आधारभूत शक्ति अवश्य है, शक्ति का नाम गुण है, परिणमन का नाम पर्याय है। जो भी सत् हे उसमें गुण पर्याय अवश्य होती है। गुण न हो केवल पर्याय हो ऐसा कुछ नहीं है, पर्याय न हो, केवल गुण हो ऐसा भी कुछ नहीं है। जो भी सत् है वह नियम से गुणपर्यायों का आधारभूत है। युक्ति से भी विचार लो। कोई चीज है तो उसका कोई रूपक तो होना ही चाहिए। कोई दशा, ढंग, परिणति उसकी होनी ही चाहिए, और दशा है वह एक वर्तमानरूप है अगले समय में और कुछ रूप हो सकती है, होती ही है।

प्रतिक्षण परिणमन—यदि ऐसा माना जाय कि जो रूपक है जो दशा जिस द्रव्य की है वही दशा रहेगी। सो भी नहीं बनता है। शुद्ध पदार्थों में ऐसी प्रतीति होती है कि जो दशा हुई है वही सदा काल रह रही है, किन्तु, सूक्ष्म दृष्टि से वे सब दशाएं समान होकर भी भिन्न-भिन्न है, अर्थात् यह अमुक समय में अवस्था है, उसमें षड्गुण हानि वृद्धि होती ही रहती है, जितने भी पदार्थ हैं वे सब प्रतिक्षण अपना परिणमन करते रहते हैं।

परिणमनशीलता के कारण एक वस्तु का दूसरे में अभाव—पदार्थों में परिणमन करते रहने का स्वरूप सहज पाया जाता है। यही कारण है कि किसी पदार्थ के द्वारा किसी अन्य पदार्थ का परिणमन नहीं होता है। कोई पदार्थ यदि दूसरे पदार्थ को परिणमाये तो यह बतावो कि न परिणमते हुए को परिणमाता है या परिणमते हुए को परिणमाता है। यदि वह न परिणमता हुआ है तो कोई शक्ति ऐसी नहीं है कि जो परिणमता नहीं है उसे परिणमा दे। यदि परिणमते हुए को परिणमाता है तो वह तो स्वभावतः, परिणमता हुआ ही है। उसे दूसरा क्या परिणमाये। प्रत्येक पदार्थ यह स्वरूप रखता है कि वह प्रतिसमय परिणमता है, परिणमता रहेगा। द्रव्य त्रैकालिक पदार्थों का पिंड है। पर्यायों का प्रतिषेध कर दो तब द्रव्य किसे बतावोगे? पर्यायों से भिन्न निराला कुछ द्रव्य न समझ में आयगा। जैसे एक यह जीव द्रव्य है तो जो प्रतिसमय जाननहार या स्वभाव विभाव जब जो परिणमता है उस परिणाम रूप से परिणमता रहता है। वही तो जीव है।

परिणमनों से द्रव्यत्व की सिद्धि—परिणमनों से न्यारा द्रव्य स्वीकार करे तो फिर वह द्रव्य कैसा। जैसे एक अंगुली है, यह सीधी है, टेढ़ी है, किसी भी न किसी रूप में रहेगी। इस अंगुली की कोई दशा हम स्वीकार न करें न गोल न अन्य किसी प्रकार और भी कोई अंगुली हो यह कैसे होगा। जो पदार्थ सत् है वह किसी न किसी दशा में अवश्य रहता है यह वस्तु का स्वभाव है, तो पदार्थ अनादिकाल से है अनन्त काल तक रहेगा, तो इसमें अनादि से प्रति समय पर्यायें होती आयी है। प्रत्येक वर्तमान में वर्तमान पर्याय होती ही है। भविष्य में अनन्त काल में प्रतिसमय पर्यायें होती रहेगी। उन पर्यायों के स्वरूप से परिणत होने के कारण इन अस्तिकायों को द्रव्य कहा गया है। यों पदार्थ पर्यायों से अभिन्न रहता है। कुछ भी दशा न हो और सत् हो ऐसा कुछ हो ही नहीं सकता है। यदि पर्यायें न हो और पदार्थ मानते रहें तो वह कोरी कल्पना भर है। जैसे कि माताएँ बच्चों को हउवा-हउवा कहा करती हैं। वह हउवा क्या चीज है? कल्पना में जिसमें भय हो जाय, अस्थिरता हो जाय, बस वही उनका हउवा है। हउवा कोई पदार्थ नहीं है। वह जीव है या अजीव है, किस आकार का है। हउवा कोई चीज नहीं है कल्पना मात्र है, ऐसे ही ऐसा ब्रह्म माने कि जिसमें त्रिकाल कभी परिणमन होता ही नहीं है, तो वह ब्रह्म तत्त्व कुछ नहीं है।

स्याद्वाद की प्रतिपादनपुष्टता—स्याद्वाद की वस्तु के स्वरूप को बताने में समर्थ हो सकता है, तब ये पक्ष आ जाते हैं, एक पक्ष ब्रह्म को अपरिणामी मानता है और एक पक्ष प्रतिसमय नवीन-नवीन ब्रह्म उत्पन्न होते है यों मानता है, ऐसे दो पक्ष आते हैं। उनमें एकान्त पड़ा हुआ है। उनका समन्वय स्याद्वाद कराता है। चीज तो वह एक है, वह है द्रव्य गुणपर्यायात्मक। द्रव्य दृष्टि से यह ब्रह्म अपरिणामी है अर्थात् यह ब्रह्म

चैतन्य स्वभाव को त्यागकर अचेतन रूप त्रिकाल नहीं हो सकता, इस दृष्टि से उसमें रंच भी परिणमन नहीं है, किन्तु कोई भी पदार्थ हो, परिणमन बिना रह नहीं सकता, तो इस ब्रह्म की जो प्रतिसमय पर्यायें होती हैं वे पर्यायें अनित्य हैं और उन पर्यायों सहित ब्रह्म प्रतिसमय नया-नया होता है, ब्रह्म उत्पन्न नहीं होता, किन्तु जिसे हम आप कह सकते हैं किसी मनुष्य को कि यह बालक मनुष्य मिट गया, जवान मनुष्य मिट गया, वृद्ध मनुष्य मिट गया, एक मनुष्य होकर भी अवस्था सहित नाम लगाने से उसे समूचा ही उत्पन्न हुआ कह सकते हैं। उसमें पर्यायों की मुख्यता है। यों प्रत्येक पदार्थ गुण पर्यायात्मक है, गुणों की दृष्टि से यह नित्य है और पर्यायों की दृष्टि से अनित्य है। ऐसे ये समस्त द्रव्य नित्यानित्यात्मक हैं।

अनित्य होने पर भी नित्यता—यहाँ यह शंका नहीं करना है कि जब इस द्रव्य में भूत में भी परिणमन हो, भविष्य में भी परिणमन होगा, वर्तमान में भी परिणमन चलता है तो ये पदार्थ अनित्य हो गये। अनित्य नहीं है यद्यपि अवस्था की दृष्टि से अनित्य है तो भी उन समस्त पर्यायों में पदार्थ अपने प्रतिनियत स्वरूप का कभी परित्याग नहीं करते हैं इस कारण नित्य हैं।

प्रतिपाद्य विषय—इस ग्रन्थ में मुख्यतया ५ अस्तिकायों का वर्णन है, पर इसके साथ काल द्रव्य के वर्णन की गुन्जाइश क्या निकली? यहाँ यह शंका हो सकती है कि जब ग्रन्थ का ही नाम पञ्चास्तिकाय है और ५ अस्तिकायों का वर्णन है तो कालद्रव्य का हम वर्णन करें ऐसी गुन्जाइश कैसे निकल आयी है। जिसका नाम रख लिया है उसही का वर्णन करते रहना चाहिए। समाधान यह है कि ये ५ अस्तिकाय प्रतिसमय परिणमते रहते हैं, उनके परिणमन का निमित्त कारण क्या है? यह जिज्ञासा होती है। उसका उत्तर है कालद्रव्य। लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य अवस्थित है और कालद्रव्य पर उस प्रदेश पर जो भी पदार्थ हैं उन पदार्थों के परिणमन का कारण उस कालद्रव्य की समय नामक पर्याय है। मोटे रूप में यह सोच लीजिए कि यदि समय न गुजरे तो पदार्थ का परिणमन कैसे होगा। जैसे किसी को कानपुर से बम्बई जाना है, ८ बजे से वह जा रहा है तो कुछ समय गुजरेगा तब ही बम्बई पहुंच सकेगा। ८ बजे चले-चले और ८ ही बजे पहुंच जाय ऐसा तो कभी हो नहीं सकता है। इस प्रकार यह तो चलने की बात कही है। रखी-रखी चीज पुरानी हो जाय, तो समय गुजरेगा तब ही तो पुरानी होगी। पदार्थों के परिणमन में कारण समय का गुजरना होता है। ५ अस्तिकायों का परिणमन जो बताया गया है उस परिणमन का कारण क्या है? उसके उत्तर में कालद्रव्य का प्रतिपादन करना पड़ा।

परिवर्तनलिङ्गता—पुद्गल आदि का पदार्थों के परिणमन का कारण यह कालद्रव्य है एक बात। दूसरी बात यह है कि पुद्गल आदिक का जो परिवर्तन होता है उस परिवर्तन से काल द्रव्य की पर्याय ज्ञात होती है। जैसे समय गुजरे तो कोई मनुष्य १० कोश पहुंच गया। और १० कोश पहुंचेगा तो यह ज्ञान होगा कि कितना समय हो गया है इन दोनों का परस्पर में ज्ञान कराने का सहयोग है। समय गुजरा तब परिणमन हुआ तो उससे यह जाना कि समय गुजरा। जैसे दिन में १२, १४ घंटे गुजरते हैं तो उनमें से सूर्य पूर्व से पश्चिम में पहुंच जाता हैं, और समय गुजरता हैं यह हमने कैसे जाना कि जब सूर्य पूर्व से पश्चिम में पहुंचेगा तब ख्याल होता है कि ओह ! १२-१३ घंटे समय गुजर गया है, उस काल द्रव्य को यों छोड़ा नहीं जा सकता। इसका वर्णन आवश्यक है करना। यह काल बहुप्रदेशी नहीं है इसलिए अस्तिकाय नहीं माना है। पर समस्त पदार्थों के परिणमन में कारणभूत यह कालद्रव्य है। कालद्रव्य का समय नामक परिणमन जीव के परिणमन में कारण है। पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश इन सबके परिणमन में कारण है और साथ ही कालद्रव्य के परिणमन में भी कारण है। कालद्रव्य भी परिणमन में कारण है।

आकाश द्रव्य की अखण्डता—आकाश एक है, अखंड है, इसके व्यवहार से दो भेद कर डाले हैं, लोकाकाश और अलोकाकाश। जितने आकाश में समस्त द्रव्य रहें उतने आकाश का नाम लोकाकाश है

और इससे बाहर के आकाश का नाम अलोकाकाश है। इतने सम्बंध के भेद कर देने से कहीं आकाश के दो टुकड़े नहीं हो जाते हैं। यह एक अखण्ड है। अब यहाँ एक जिज्ञासा हो सकती है कि लोकाकाश में कालद्रव्य है ही नहीं, वहाँ तो केवल आकाश ही आकाश है। तो वहाँ के आकाश का परिणमन कैसे होगा। यह आकाश अमूर्त है। यह आंखों दिखता नहीं है। दिखने वाली चीज मूर्तिक होती है। केवल पुद्गल ही आंखों देख सकते हैं, अन्य कोई द्रव्य आंखों नहीं दिखते है, उस पर भी आकाश वास्तविक सत् है, उसमें अविभागी अनन्त प्रदेश हैं उनका प्रतिसमय परिणमन होता है। वह एक अखण्ड आकाश है। उसके बारे में यह जिज्ञासा होती है कि लोकाकाश का परिणमन कैसे होगा क्योंकि वहाँ कालद्रव्य है नहीं अर्थात् पदार्थ के परिणमन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उस पदार्थ के चारों ओर निमित्त रहें, निमित्त किस ओर हो, किस ढंग से हो वह परिणमन में निमित्त होता हैं।

अखण्ड अनुभवन—जैसे पैर में कांटा चुभ जाय तो सारे जीव प्रदेश में दु:ख होता है। यहाँ यह आवश्यक नहीं हैं कि जीव जितना बड़ा है सब ओर से एक साथ कांटा चुभे तब दु:खी हो उस कांटे के चुभने का वह किसी एक तरफ से कैसा ही निमित्त हो वह तो दु:ख का सर्व प्रदेशों में कारण हो जाता है, क्योंकि यह जीव अखण्ड है ना। जो पिण्ड अखण्ड नहीं है उसके लिए तो जहां निमित्त होगा वहाँ परिणमन है। जैसे यह चौकी पदार्थ है, यह एक अखण्ड चीज नहीं है, अनन्त परमाणुवों का यह पिण्ड है, इस कारण जिस खूंट में अग्नि लगी होगी वही खूंट जलेगा, कहीं सारी चौकी न जलेगी कि चौकी एक पदार्थ है ही नहीं, अखण्ड है ही नहीं, जो अखण्ड पदार्थ है उसके लिए निमित्त किसी भी ओर हो, समूचे पदार्थ के परिणमन के लिए निमित्त होता है। चूंकि यहाँ कालद्रव्य है और यह निमित्त आकाश के परिणमन में है तो समूचा आकाश एक साथ एक परिणमन से परिणमता रहता हैं।

षड्द्रव्य—यों काल, द्रव्य, पुद्गल आदिक के परिवर्तन में कारण है और पुद्गल आदिक के परिवर्तन से कालद्रव्य का ज्ञान होता हे, इस कारण अस्तिकाय से इसका निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है इसी कारण इस कालद्रव्य को यहाँ बताया जा रहा है, और साथ ही इसका नाम धरा परिवर्तनलिंग। चाहे काल कहो, चाहे परिवर्तनलिङ्ग को दोनों एक दोनों एकार्थक हैं। परिवर्तनलिङ्ग का अर्थ यह है कि जो समग्र पदार्थों के परिणमन में कारण हो। यों काल सहित ५ अस्तिकाय षड्द्रव्य कहलाते हैं।

भेदविज्ञान का शिक्षण—इस प्रकार से हमें यह जानना है कि इस लोक में अनन्तानन्त जीव हैं, अनन्तानन्त पुद्गल हैं। एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य असंख्यात कालद्रव्य हैं, इन सब द्रव्यों में एक यह निज जीवास्तिकाय ही उपादेय है, यह जीवास्तिकाय मेरे ही देह के अन्तर्गत है। कल्याण का निधान, आनन्द का धाम प्रभुता से सम्पन्न यह भगवान अपने देह में विराजमान हैं, पर मोह का कैसा नशा छाया है कि वह स्वयं अपने आपको नहीं जान पा रहा है। जो इन्द्रिय आदिक साधन मिले हें भूल में भटकने और बहकाने के लिए उन साधनों के द्वारा हम बाह्य में देखा करते हैं, और जो कुछ नजर आता है उसे हम सही मान लेते हैं। झूठ को यथार्थ मानने के कारण राग और द्वेष बढ़ते हैं, इस जीव पर संकट है तो राग और द्वेष का है अन्य कुछ नहीं है? इस जीव को अपने सही स्वरूप का विश्वास नहीं है, सो जबरदस्ती आशा करके भिखारी बनकर परपदार्थों को अपनाता है, यह मेरा है, यह मेरे मन माफिक रहें ऐसी बुद्धि बनाये है इसी कारण क्लेश होता है। इस मोही को यह अपनी खबर नहीं है कि यह मैं आत्मतत्त्व इस देह में बसकर भी देह से निराला शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप हूं।

मोह का बोझ—कोई अपने आपमें मोह का बोझ लाद ले तो यह संसार में ऊपर तिरता रहता है। जीव पर मोह का बहुत बड़ा बोझ है। कभी-कभी आप ऐसा भी अनुभव करते होंगे कि जब हमारे मोह, राग, चिंता बहुत सताती है तो ऐसा लगता है कि स्वयं बड़े वजनदार हैं। यद्यपि मोह में वज़न नहीं होता,

मोह की कल्पनावों से यह जीव बोझल हो जाता है औ अपने को हल्का ज्ञान ज्योति स्वरूप आनन्दस्वरूप नहीं मान सकता है। आनन्द के अनुभवन के समय यह जीव अपने को हल्का अनुभव करता हे और मोह की परिणत के समय अपने को बोझल अनुभव करता है। यह मोह हटे और यह भाव बने कि मैं सर्व से विविक्त हूं। किसी पर न मेरी मालिकाई है न कर्तव्य है, न भोक्तृत्व है, न अधिकार है। सभी अपने स्वरूप से हैं, पर के स्वरूप से नहीं हैं, फिर ऐसे सहज स्वतन्त्र पदार्थ में यह मानने की जबरदस्ती करना कि यह इनका है, यह मेरा है, इससे मेरा हित है, इससे मुझे सुख है आदिक मान्यताएँ बनाना यह तो जीव के लिए अहितकारी ही बात है।

समाधिशरण—भैया ! इन समस्त पदार्थों में छाट लो—तुम्हारे लिए शरण क्या है? तुम्हारे लिए मंगल क्या है? शरण हे मेरे लिये मेरे ही शुद्ध ज्ञायकस्वरूप का अनुभव। इसके अतिरिक्त सभी उपयोग मेरे को दु:ख के ही कारण हैं। यह मैं शुद्ध जीवास्तिकाय स्वसम्वेदन ज्ञान से ही जाना जा सकता हूं, पाया जा सकता हूं। ज्ञान से ही जिसका समस्त स्वरूप भरा हुआ है, ऐसे इस शुद्ध जीवास्तिकाय को मैं ऐसे ज्ञान से जानूँगा जो ज्ञान सहज अपूर्व उत्कृष्ट आनन्द सहित रहता है। जिस ज्ञान के साथ अधोरता व्यवस्थित रहती हो उससे हम अपने स्वरूप को नहीं पहिचान सकते हैं। जो ज्ञान सहज आनन्द लेता बर्त रहा है उससे मैं अपने आपको अनुभव सकता हूं। ऐसा ज्ञान समाधि भाव से उत्पन्न होता है। समाधि तब होती है जब रागद्वेष क्षीण होते हैं। रागद्वेष क्षीण तब होंगे जब हम रागद्वेष सहित केवल ज्ञातादृष्टा निजस्वरूप का श्रद्धान करें, इस ही का ज्ञान करें, और इसके ही ज्ञान में हम रमण करें, तो इसमें समाधि उत्पन्न होगी, सहज आनन्द जगेगा, और उस आनन्द के ही साथ इस ज्ञान के द्वारा अपने आपका अनुभव कर लेगा।

संकटहारी अनुभव—यह जीव प्रतिसमय अपने को किसी न किसी रूप अनुभव करता रहता है। कोई यों अनुभव करता है कि मैं अमुक घर का हूं। अमुक वर्ण का हूं, अमुक पोजीशन का हूं। ये सब अनुभव संसार बढ़ाने के कारण हैं। बजाये इसके ऐसा अनुभव चले कि मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूं, आनन्दघन हूं, सबसे निराला हूं, अपने स्वरूप हूं। इस प्रकार शुद्ध निज स्वरूप मात्र अपनी प्रतीति बने तो उसमें ऐसा आनन्द प्रकट होता है कि जिससे भव-भव के बांधे हुए कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। इसके लिए हमारा यह यत्न हो कि जो हमने अब तक देखा सुना या भोगा, ऐसे समस्त परद्रव्यों के आलम्बन से अहित माने। और आहार, निद्रा, भय, मैथुन, परिग्रह इन संज्ञावों में अपना उपयोग न फंसायें। ये अहितरूप ही हैं। मेरा आत्मतत्त्व मेरे शुद्ध स्वरूप का उपयोग ही मेरे लिये हितरूप है, इस तरह की प्रतीति में रहे तो हम निज शुद्ध जीवास्तिकाय को पा सकते हैं। समस्त प्रदेशों का सार और प्रयोजन इतना ही है कि सर्व विकल्प संकल्पों से हटकर निज ज्ञानस्वरूप में अपना उपयोग स्थिर रहे, जिसके होने से सर्व संकट दूर होंगे।

गाथा ७

अण्णोण्ण पविसता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलता वि य णिच्च सग सगभाव ण विजहंति।।७।।

क्षेत्रसंकरता होने पर भी विविक्तता—अनन्त जीव द्रव्य और उनसे भी अनन्त गुणे पुद्गल द्रव्य एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य ये समस्त पदार्थ अपने स्वरूप चतुष्टय से है पर के स्वरूप से नहीं हैं। ये पदार्थ यद्यपि एक ही जगह पाये जाते है। लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर छहों द्रव्य उपस्थित है यों कहो कि एक दूसरे में प्रवेश किए हुए हैं। बाह्य क्षेत्र की अपेक्षा आकाश के उस प्रदेश पर ही सर्व द्रव्य अवस्थित हैं और जब उस ही प्रदेश पर अवस्थित हैं तो एक दूसरे में प्रवेश किए हुए हैं। और यहाँ तक कि निमित्त नैमित्तिक बन्धन में जीवकर्म और शरीर ये विशेषतया एक दूसरे में प्रविष्ट हैं, इतने पर भी कोई भी पदार्थ अपने स्वभाव को छोड़ता नहीं है। सभी पदार्थ न्यारे-न्यारे हैं।

पदार्थों का स्वातन्त्र्य—पूर्व गाथा में यह बताया था कि ये पदार्थ प्रतिक्षण परिणमते रहते हैं तिस पर भी शुद्ध दृष्टि से देखा जाय तो वे नित्य है अनित्य नहीं, विनाशीक नहीं, इस ही तरह इस ही कारण से इन समस्त पदार्थों में एकत्व का प्रसंग नहीं होता है। जीव और कर्म में व्यवहार दृष्टि से एकत्व है, परस्पर में बंधे हुए है, मूर्त हैं, फिर भी परस्पर में एक दूसरे के स्वरूप को ग्रहण नहीं करते हैं। एक ही जगह में कोई पदार्थ आ जाय तो उसे संकर कहा करते हैं ऐसा बाह्य संकरता आने पर भी उस स्थिति में एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ का प्रवेश नहीं है सब अत्यन्त व्यतिकर रहा करते हैं। ऐसे एक ही जगह सब पदार्थ होने में संकर और व्यतिकर की आपत्ति हो सकती है पर यहाँ यह आपत्ति नहीं है, क्योंकि पदार्थ अपने-अपने सत्त्व से ही रहता है, पर के सत्त्व से नहीं।

सक्रिय और निष्क्रिय समस्त पदार्थों की परस्पर विविक्तता—इन पदार्थों में जीव और पुद्गल तो सक्रिय पदार्थ है, जीव और पुद्गल दोनों एक जगह से दूसरी जगह चल देते हैं, इनमें क्रिया पायी जाती है, किन्तु शेष के चार द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये जहां है तहां ही अनादिकाल से हैं। और अनन्तकाल तक वहाँ ही रहेंगे। इन चार द्रव्यों में क्रिया नहीं पायी जाती है, ऐसे ये सक्रिय और निष्क्रिय पदार्थ एक ही क्षेत्र में पाये जाते हैं फिर भी सब एक दूसरे से भिन्न ही है। जैसे आप हम जिस जगह बैठे हैं, जितने प्रदेश में हमारा आत्मा है उनके प्रदेश में यह शरीर भी तो हैं शरीर अलग पड़ा हो आत्मा अलग जगह बैठा हो ऐसा तो नहीं है। दूध और पानी की तरह है। जैसे दूध और पानी एक स्थान पर होकर भी भिन्न-भिन्न हैं। ऐसे ही शरीर और आत्मा हैं तो एक स्थान पर, परन्तु शरीर, शरीर की जगह है और आत्मा, आत्मा की जगह है। एक ही स्थान में होकर भी परस्पर में अत्यन्त भिन्न हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप त्रिकाल भी नहीं हो सकता है। ऐसी तो वस्तु की स्थिति है, किन्तु मोहीजन इस दृढ़ दुर्ग को न समझकर यह एक दूसरे का स्वामी निरखता है, एक का दूसरे पर अधिकार निरखता है। बस यही भ्रमबुद्धि ही कर्म बन्धन का कारण है।

समस्त अर्थों में सार तत्त्व—इन द्रव्यों के बीच में सारभूत द्रव्य क्या है? हम किस पर अपनी निगाह रक्खा करें कि हमें कल्याण मिले, शान्ति मिले, ऐसा सारभूत तत्त्व क्या है। जो कुछ यह दृश्यमान है वैभव, समागम, परिजन, घर ये सब मायारूप स्कंध हैं, ये तो स्वयं में ही परमार्थ नहीं हैं, मेरे लिए तो क्या परमार्थ बनेंगे। जो कुछ दिखता है यह सब मेघ और बिजली की तरह चंचल है। ये सब एक दिन विघट जायेंगे। जैसे मेघ कितने ही रूप रख लेते हैं—हाथी, घोड़ा, मकान, इत्यादि और देखते-देखते ही वह आकार विलीन हो जाता है। तो जैसे ये मेघ क्षणिक हैं, चंचल हैं, इसी तरह जो कुछ भी यहाँ दिखता है सब चंचल है। ऐसे इन दृश्यमान स्कंधों में कोई सारभूत चीज है ही नहीं। धर्म, अधर्म आदिक अमूर्त आदिक परद्रव्यों से हमारा कोई व्यवहार चलता ही नहीं, हम उन पर क्या निगाह करें। केवल हमारे लिए सारभूत शरणभूत पदार्थ है तो वह है निज शुद्ध जीवास्तिकाय, अर्थात् अपने आपका जो अन्त:स्वरूप है, विशुद्ध चैतन्यमय है उस विशुद्धस्वरूप की दृष्टि करना यही सारभूत और शरण तत्त्व है। यह अपने आपके अन्दर मौजूद है।

सार शरण अनुपम परमात्मतत्त्व—अहा, कैसा यह विलक्षण परमात्मतत्त्व है कि इसे देखने की विधि जिसे मालूम हो सो तो देख सकता है, और जिसे देखने की पद्धति नहीं मालूम है वह अंत:विराजमान होने पर भी इस प्रभुता को निरख नहीं सकता है। जैसे शुद्ध द्रव्यार्थिकनय अथवा शुद्ध पर्यायार्थिकनय से देखना चाहिए। अपने आपको जितना अकेला अनुभव करेंगे उतना ही हम प्रभु के मर्म में पहुंच जायेंगे। अपने आपकी इस प्रभुता को इस भगवत् तत्त्व को निरखने की यही एक पद्धति है कि हम अपने को अकेला निरखा करें। उस अकेले की बात नहीं कह रहे हैं जिसके आगे पीछे कोई नहीं है, जिसकी कोइ पूछ भी नहीं करता है। वह तो पर्यायदृष्टि से शरीर सहित अपने को निरखता हुआ अकेला कह रहा है,

किन्तु अपने आपमें अनादि अनन्त विराजमान जो शुद्ध चैतन्य स्वभाव है उस भगवत् तत्त्व के दर्शन हो सकेंगे। इस प्रभुता के दर्शन में अनन्त आनन्द बसा हुआ है।

शान्ति का सुगम स्वाधीन उपाय—देखो भैया ! कितना सुगम स्वाधीन शान्ति का उपाय है, पर ये रागद्वेष की ज्वालाएँ यह मोह का पंक कलंक इस प्रभुता के ऊपर आवरण रूप पड़ा हुआ है जिन आवरणों से यह स्वयं प्रभु होकर भी अपने आपकी प्रभुता का दर्शन नहीं कर पाता हैं। इसके दर्शन की विधि यही हे, अपने को शरीर सहित न अनुभव करो। मैं शरीर से न्यारा हूं। जो रागद्वेष विचार विकल्प वितर्क उठ रहे हों उन रूप अपने को न तको। मैं उन विचार वितर्कों से न्यारा हूं। ऐसा अपने आपके एकत्व स्वरूप को देखो। जितना अपने आपको अकिञ्चन अकेला निरखोगे उतना ही अपना ही अपने आपके मर्म को पावोगे। यह शुद्ध जीवास्तिकाय परमात्मस्वरूप ज्ञान और आनन्द से भरपूर है। इसे स्वसम्वेदन ज्ञान से ही जाना जाता है। जानने वाला यह मैं जब इस जानने वाले को ही निरखने लगूँ उसे कहते हैं स्वसम्वेदन ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान के ही स्वरूप को जानने लगे तो वहाँ जानने वाला भी ज्ञान रहा और जो जानने में आया वह भी ज्ञान रहा यों ज्ञान-ज्ञान दोनों ज्ञाता ज्ञेय हो जाने से एक निर्विकल्प अवस्था हो जाती है। स्वसम्वेदन ज्ञान से ही यह आत्मतत्त्व जाना जाता है, इसी को कहते हैं शुद्ध परमपारिणामिक भाव को ग्रहण करने वाला उपयोग।

शाश्वत स्वभाव का आश्रयण—जो हममें परिणतियां होती हैं उन परिणतियों को न निरखकर उन परिणतियों का आधारभूत जो एक स्वभाव है उस स्वभाव का उपयोग करें उस उपयोग के द्वारा शुद्ध जीवास्तिकाय सम्विदित होता है। यह स्वसम्वेदन ज्ञान जिस समय हो रहा होगा उस समय यह जीव समतारस से भरपूर रहा करता है। उस परम समता में शुद्ध आत्मीय आनन्द रहा करता है। यह परम आनन्द निर्विकल्प दशा में उत्पन्न होता है। इस स्थिति में किसी प्रकार का संकल्प विकल्प की तरंग वहाँ नहीं उठती है।

द्वैतबुद्धि की तरङ्ग—यह आत्मा स्वभावत: शान्त है, किन्तु इसमें जैसे ही कोई विकल्प और वितर्क की कल्लोल उठी कि बस यही फिर त्रस्त और संक्लिष्ट हो जाता है। ये संकल्प विकल्प उठा करते हैं पर द्रव्यों का आलम्बन करने से। खूब अनुभव कर लीजिए। अपने आत्मतत्त्व के सिवाय किसी भी पर द्रव्य का जब हम आलम्बन करते हैं तो उस उपयोग में ही ऐसी खासियत है कि इससे विकल्पजाल उत्पन्न हो जाते हैं। यह द्वैत, भेदकर दिया ना। मैं कौन हूं और किसी दूसरे पर दृष्टि गयी। इस द्वैतभाव में विकल्प हुआ, कष्ट हुआ, यह सब प्राकृतिक बात है।

पराशा का क्लेश—यह जीव पर द्रव्यों का आलम्बन करता क्यों है? इसको किसी न किसी प्रकार के इन्द्रिय के विषय अथवा मन के विषयों में वाञ्छा रहा करती है। मन का विषय है ख्याति, लाभ, पूजा का मेरा बड़प्पन बढ़े, सारी दुनिया मुझे जान जाये, यह कितनी मोह की दृष्टि है, अरे यह सारी दुनिया का मानव समूह स्वयं मायामयी है, विनाशीक है, दु:खी है, कर्मों का प्रेरा है। इन दु:खी और भिखारी पर द्रव्यों में मोह रखने वाले इन जीवों में मैं अच्छा कहलाऊं ऐसा भाव का क्या अर्थ है? जैसे कोई कहे कि मैं बादशाहों का बादशाह कहलाऊं तो यह कोई अच्छी भावना तो नहीं है? पूछ होगी तो यह तो कोई भली बात नहीं है। इस ही तरह से कर्मों के प्रेरे जन्म मरण के दु:ख से दु:खी निरन्तर विकल्प की ज्वालावों से जल रहे इस संसार के प्राणियों में मैं कुछ अच्छा कहलाऊं इस प्रकार की इच्छा होना यह कितनी बड़ी कलुषता है। यही है मन का विषय। अब सोच लीजिए कि मन का विषय भी कितना गंदा और भूल में भटकाने वाला विषय है।

मन का उद्वेग—मोही जीव निरन्तर यह चाह रहे कि मुझे अमुक चीज का लाभ हो जाय, अमुक चीज प्राप्त हो जाय ऐसी लाभ की बातों का बहुत-बहुत विचारना यह ही तो मन का विषय है, पर सोचो

तो सही तेरा आकाशवत् अमूर्त चैतन्यस्वभाव, उसमें किसी पर वस्तु का प्रवेश भी हो सकता है क्या? अनहोनी बात को होनी बनाने की इच्छा करना यह तो बुद्धिमानी नहीं है, और देखिये इन्द्रिय के विषय जिन विषयों को देखो उनकी ही तो चाह होती है अथवा जिन विषयों को भोगा है उन विषयों की ही तो चाह होती है ऐसी इष्ट श्रुत और अनुभूत विषयों की जो वाञ्छा है, इस ही कारण कृष्ण, नील, कपोत आदिक जो खोटे परिणाम हैं उन परिणामों से प्रेरित होकर यह जीव परपदार्थों का सहारा तकता है और जहां इस जीव ने अन्त: श्रद्धा से किसी परद्रव्य का सहारा तका कि बस यह दु:खी हो जाता है। इन सब क्लेशजालों से छूटने की सामर्थ्य एक सम्यक्त्व में है।

सम्यक्त्व का प्रताप—सम्यग्दर्शन होने पर अनन्त कर्मों का बन्धन शिथिल हो जाता है। सच पूछो तो जितनी स्थितियां कर्मों की और जितने अनुभाग कर्मों के सम्यक्त्व होने पर खिर जाते हैं इनके खिरने पर फिर तो ये बहुत हल्के बोझ वाले हो जाते हैं, यों समझिये कि एक सम्यग्दर्शन प्राप्त करने पर हमने ९९ प्रतिशत काम कर लिया है, अब केवल एक प्रतिशत काम और रह गया है। किसी भूली भटकी स्थिति में सही मार्ग की झलक आ जाय तो वह सबसे बड़ा कार्य हैं। अब चलने का रहा तो चला लिया जायगा।

सम्यक्त्व के प्रताप पर एक दृष्टान्त—एक दृष्टान्त में सद्दर्शन का प्रताप सुनिये। कोई पुरुष किसी गांव को जा रहा था। शाम हो जाने से उसे सही रास्ता न मिला, वह भटक गया अंधेरी रात्रि में एक जंगल में फंस गया। अब वह मुसाफिर ९, १० बजे के लगभग में विचार कर रहा है कि मैं बहुत फंस गया हूं। यदि बढ़ता ही चला गया तो भूल बढ़ती ही जायगी। वह वहीं ठहर गया। हिम्मत बना ली, मर जायेंगे तो मर जायेंगे, अथवा जो दशा होनी होगी हो लेगी। करीब १२ बजे रात्रि को क्षण भर को एक बिजली चमकी। उस क्षणिक बिजली की चमक में उसे दिख गया वह रास्ता जो एक मुख्य मार्ग था। उस मार्ग के देखते ही उसके मन में बड़ा संतोष आ गया। फंसा है यद्यपि जंगल में और सिर्फ एक मार्ग की ही झलक तो हुई, उस मार्ग की झलक के कारण उसे पूर्ण संतोष हो गया। अब उसे डर नहीं रहा। चिन्ता शोक नहीं रहा। उसे यह निर्णय हो गया कि तीन चार घंटे और रह गये हैं। रात्रि गुजरने दो, इस ही रास्ते से चलकर सुबह पहुंच जावेंगे। तो आप सोचो कि क्षण भर की सच्ची झलक कितना बड़ा काम कर देती है। ऐसे ही इन इन्द्रिय विषयों से, मन के विषयों से निवृत्त होकर हम अपने आपके स्वरूप की कुछ क्षण झलक कर पायें तो यह कितना काम देगा।

सम्यक्त्व में आशय की स्वच्छता—सम्यक्त्व का अचिन्त्य प्रभाव है। सम्यक्त्व बिना ही यह जीव अब तक संसार में भ्रमण करता चला आया है। सम्यक्त्व में यही तो एक विश्वास बनता है। सर्व परिपूर्ण हैं, सर्व अपने द्रव्यगुण के कारण अपने आपमें निरन्तर परिणमन किया करते हैं। सभी पदार्थ अपने आपके ही कर्ता और भोक्ता होते हैं। इसी विधि से ही सर्व पदार्थों का सत्त्व बना हुआ है ऐसी स्थिति में कहां गुंजाइश है कि कोई पदार्थ किसी का स्वामी बन जाय, कर्ता भोक्ता बन जाय। यह स्वरूप का किला बड़ा मजबूत है। इसमें विघटन नहीं हो सकता है। ऐसे एक इस स्वतंत्र स्वरूप की श्रद्धा में यह सम्यक्त्व हो जाता है। सम्यक्त्व से वास्तविक मायने में जैन का प्रारम्भ हुआ। सही दृष्टि से यह कबसे जैन कहलायेगा? जबसे इसे सम्यक्त्व हो। सम्यग्दृष्टि को चिन्ता, आकुलता, व्याधि, शोक ये कुछ नहीं हुआ करते हैं। वह अपने को अकिञ्चन परिपूर्ण सुरक्षित निरख-निरखकर अन्त: प्रसन्न रहा करता है।

स्वरूपदर्शन की बाधाहरता—इस गाथा में वस्तु का यथार्थ स्वरूप बताया गया है, जिसको देखने से जीव को कोई बाधा नहीं रहती है। देखो ये अनन्तानन्त द्रव्य एक ही जगह भी रहें, परस्पर में संकरता भी हो जाय तो भी अपने-अपने प्रतिनियत स्वरूप से यह च्युत नहीं होता है। अपने इस अमिट स्वरूप को अपने में ही लिए रहा करता है, एक दूसरे का स्वरूप ग्रहण नहीं करता है। इस चीज को अपने आप पर आजमाय, जितने कुछ ये पिण्ड हैं, जिसे यह मोही प्राणी मैं-मैं कहा करता है इस पिण्ड में इस

व्यञ्जनपर्याय में जीव तो एक हुआ और इसके साथ अनन्ते तो पुद्गल परमाणु लगे हैं और अनन्ते कर्मों के परमाणु लगे हैं। इस समर्थ एक के साथ ये अनन्तानन्त द्रव्य चल रहे हैं, लिपट रहे हैं जिससे यह संसार में रुल रहा है। लेकिन जब इसे सही तत्त्व का बोध हो जाय तो ये अनन्तानन्त भी पुद्गल परमाणु इसके साथ लगे हुए यों शोभा देंगे जैसे किसी समर्थ हाथी के पीछे छोटे-छोटे अनेक कुत्तों के बच्चे भोंकते हैं। वह हाथी गम्भीर ही रहता है, उसको रंच भी क्षोभ नहीं होता है, वह अपनी ही धुन में अपनी गज चाल से चलता ही जाता है। ऐसे ही, ज्ञानी जीव किसी संसार की किसी परिस्थिति तक इसके साथ अनन्त आपत्तियां और दंदफंद पक्ष लग रहे हैं, किन्तु जिसने अपनी ज्ञान गम्भीरता का निर्णय किया है वह गम्भीर और धीर होकर अपने ही स्वरूप पथ पर चलता जाता है।

ज्ञानपद्धति—भैया ! अपना कर्तव्य है कि हम जिस किसी को भी जानें, इस ढंग से जाने कि एक स्वतंत्र पदार्थ है, यह अपने सत्त्व के कारण परिणमता रहता है, इसमें मेरा स्वामित्व नहीं है। इस तरह वस्तु की स्वतंत्रता को निरख-निरखकर जो अपना ज्ञानबल पुष्ट किया करता है ऐसा पुरुष ही परम समता में आता है। इस समतारस का स्वाद लेकर जो एक स्वसम्वेदन ज्ञान बना है उस ज्ञान से यह भरपूर और उस ज्ञान से गम्य अपने आपको निरन्तर अनुभवता रहता है। इससे बढ़कर धर्म करने का अन्य व्यवसाय नहीं है। उस अपने आपमें विराजमान अपने ही चैतन्यस्वरूप को निरखना, यही वास्तविक मायने में धर्मपालन है और इस धर्मपालन फल में अवश्य ही निर्वाण प्राप्त होगा।

गाथा ८

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरुवा अणंतपञ्जाया।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का।।८।।

अस्तित्व का स्वरूप—इस गाथा में अस्तित्व का स्वरूप कहा गया है। अस्तित्व कहो या सत्ता कहो एक ही अर्थ है, जिसे हिन्दी में है कहते हैं। है पना सर्व पदार्थों में मौजूद है। है का जितना भाव है उस दृष्टि से सब पदार्थों में वही बात है। है में है का रहना सबमें एक समान है। उस है में जो विशेषता आती है अर्थात् अमुक पदार्थ अमुक रूप है, पदार्थ इस प्रकार परिणमने वाला है इस तरह है में जो विशेषताएं होती हैं वे अन्य गुणों के कारण होती हैं। ''है'' सब पदार्थों में है और एक ही वस्तु के समस्त गुणों में है, इसी कारण सत्ता स्वरूप है। कहां सत्ता नहीं है। जो है सो ''है'' ही तो है। है की दृष्टि में सब द्रव्य एक समान है। जैसे हम जीव-जीव में ही विशेषता जानना चाहते है तो शुद्ध यह सिद्ध भगवान है पर जीवदृष्टि से सिद्ध संसारी सब एक चित्स्वरूप हैं। इसी प्रकार जीव और अजीव में हम 'है पना' हो जावेंगे तो परमाणु का 'है पना' और सिद्ध का 'है पना' सभी एक समान हैं।

अस्तित्व का सादृश्य—हम आप चूंकि कर्मों के प्रेरे हैं, इनसे छूटना चाहते हैं, शान्तिलाभ लेना चाहते हैं इस कारण हम आपकी दृष्टि में सिद्धप्रभु का महत्व है, सिद्ध अनन्त सुखी है, परिपूर्ण सुखी हैं, यों सिद्ध प्रभु का महत्व है, किन्तु एक परमाणु और सिद्ध और सभी एक सामान्यरूप से देखा जाय, अस्तित्व की दृष्टि से देखा जाय तो वह सब एक ही समान है। परमाणु भी है, सिद्ध भी है और जितने भी शुद्ध द्रव्य हैं वे सब ही हैं। इस दृष्टि से सबकी बराबरी है। है पना शुद्ध हो, अशुद्ध हो, समस्त पदार्थों में एक रूप रहता है इस कारण सत्ता सर्व विश्वरूप है।

अस्तित्व की सर्वव्यापकता—जो लोग ऐसा मानते हैं कि ब्रह्म सर्वव्यापक है, जो कुछ दिखते हैं चेतन अचेतन पदार्थ ये सब वही एक ही है ब्रह्म, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। यह दृष्टि उनके एक सादृश्य अस्तित्व मात्र को लेकर होती तो इसमें कोई अड़चन न थी। यदि कोई ब्रह्मनामक व्यापक एक अर्थक्रियाकारी सत् मान रहे हो, अलग एक व्यक्ति का रूप और उसे सर्वव्यापक तथा इन दृश्यमान

परिस्थितियों के रूप में उखड़ने वाला मानते हो तो वहाँ विरोध है, परन्तु सत् ही यदि ब्रह्म है तो इसमें कोई विरोध नहीं है। समस्त विश्व एक सद्ब्रह्मरूप है। सत्त्व से कुछ न्यारा क्या है।

अस्तित्व की एक रूपता—यह सत्ता अनन्त पर्यायों रूप है। जितने भी भूतकाल के परिणमन हुये हैं तथा भविष्यकाल के परिणमन होंगे समस्त परिवर्तनरूप हैं, सब परिणमनों में यह अस्तित्व बराबर बना रहता है। यह अनन्त पर्यायोंरूप है। वहाँ भी तिर्यक्रूप से देखा जाय तो जितने भी पदार्थ है उन पदार्थों में प्रत्येक गुण में परिणमन हो रहे हैं इस तरह यह सत् अनन्त पर्यायोंरूप हैं। यह सत्ता किस रूप में कहां मिलेगी, इसका स्पष्ट रूपक किसी एक व्यवस्था में नहीं नियत किया जा सकता है। यह सत्त्व ऐसे ही बिना ही परिणमें, किसी पदार्थ में रह जाता हो सो रह नहीं सकता। सत्त्व है तो उसमें ये तीन अवस्थाएं अवश्यंभावी हैं कि वे किसी नवीन परिणमन रूप में होवें और पुराने परिणमन के रूप में विलीन हो जायें। तथा समस्त परिणमनों का आधारभूत वही एक रहा करे। इस प्रकार उत्पादव्यय ध्रौव्यरूप से यह सत्ता प्रवर्तती है। इन सब दृष्टियों से देखा जाय तो सारा विश्व एक सत्तात्मक है। यहाँ प्रदेशों पर दृष्टि न दो, व्यक्ति पर दृष्टि न दो, किन्तु जो सत्त्व का स्वरूप है उस स्वरूप पर दृष्टि देकर निरखो तो स्वरूप से कोई पदार्थ किसी पदार्थ से भिन्नता नहीं रखते हैं। सर्वसत् स्वरूप हैं। यों यह सत्ता एक रूप हैं।

सत्ता में सप्रतिपक्षता—सत्ता सम्बन्ध में अब तक जितनी बातें कही गयी हैं उन सब बातों से उल्टा स्वरूप भी यह रखता है अर्थात् सत्ता प्रतिपक्ष सहित है। जैसे बताया गया था कि सत् सर्व पदार्थों में है तो उसकी यह भी एक विशेषता है कि वह सर्व पदार्थों में एक नहीं है, किन्तु प्रत्येक पदार्थ में भिन्न-भिन्न सत्ता है। दूसरा विशेषण बताया था कि यह सत्ता विश्वरूप है तो उससे उल्टी बात भी पायी जाती है कि सत्ता व्यक्तिगत भी है। यदि व्यक्तिगत सत्ता न रहे तो कोई काम बन ही नहीं सकता। जैसे बोझ ढोना, व्यापार आदिक करना इन सबको मनुष्य जाति करती है या व्यक्तिगत मनुष्य किया करते हैं? और उन सब करते हुये मनुष्यों को समुदाय रूप में कल्पना से हम मनुष्य जाति मात्र लेते हैं, तो व्यक्तिगत सत्त्व है। तीसरे विशेषण में बताया था कि सत्ता अनन्त पर्यायात्मक है। लेकिन वे प्रत्येक पर्यायें चूंकि अपना-अपना स्वरूप न्यारा रखती है इसलिये वे व्यतिरेकी हैं इस कारण सत्ता एक पर्यायरूप है। सत्ता का चौथा विशेषण कहा कि सत्ता उत्पादव्यय ध्रौव्यरूप है, लेकिन इससे भी एक-एक अंश का जो स्वरूप है उस स्वरूप पर दृष्टि देकर निरखा जाय तो ये तीन स्वरूप हैं, इस कारण सत्त्व भी प्रत्येक स्वरूप में प्रत्येक स्वरूप हैं। 5वें विशेषण में कहा था कि यह एक है, तो इससे उल्टी बात भी है कि सत्ता अनेक हैं, सत्ता अनेक न हों तो प्रतिवस्तु में परिणमन और अनुभवन हो ही नहीं सकता। इस प्रकार संक्षेपरूप में इस गाथा में अस्तित्व को ही कहा गया है।

सत् की नित्यानित्यात्मकता—अस्तित्व नाम सत् का है। सत् के भाव को सत्ता कहते हैं। न केवल नित्य हो वह सत् है, न केवल क्षणिक हो वह सत् है, किन्तु नित्यानित्यात्मक उत्पाद–व्यय-ध्रौव्यात्मक जो वस्तु है उसे सत् कहते हैं, क्योंकि सर्वथा नित्य वस्तु हों तो चूंकि सर्वथा नित्य माना है अर्थात् अपरिणामी माना है तो उस पदार्थ में क्रमभावी कोई बात हो ही नहीं सकती। जब क्रमभावी परिणमन न होगा तो उनमें विकार कैसे होगा, अर्थात् काम कैसे होगा। कोई भी पदार्थ बिना काम के नहीं है। लोकव्यवहार में कहते हैं कि जो भी चीज है वह बिना काम के नहीं है, किसी न किसी काम में आती है। चाहे उसका उपयोग हमें न मालूम हो। यह तो है लौकिक बात, पर वास्तविक बात यह है कि जो भी वस्तु है अपनी अर्थक्रिया प्रतिसमय करती ही रहती है। यदि परिणमन न हो, अर्थक्रिया न हो तो वह पदार्थ ही नहीं रह सकता। यों सर्वथा नित्य वस्तु को सत् नहीं माना। सर्वथा नित्य वस्तु है नहीं, ऐसे ही यदि सर्वथा क्षणिक माना जाय तो जो सर्वथा क्षणिक है उसमें अब प्रत्यभिज्ञान हो ही नहीं सकता। फिर उसमें एक संतानपना कैसे रहेगा। प्रत्यभिज्ञान कहता है यह वही वस्तु है जो पहिले थी। इस प्रकार का पूर्व और अपर पर्यायों में

एकत्व का भान करना, ज्ञान करना सो प्रत्यभिज्ञान है। हम आपको रोज देखते हैं आप वही हैं जो कल थे और वैसा ही व्यवहार करके सारी व्यवस्था बनी हुई है। यदि सर्वथा क्षणिक हो बात—तो आप कल कैसे भी थे, आज आप अत्यन्त भिन्न हैं, तो क्या व्यवस्था बनेगी। क्या व्यवहार होगा, फिर एक संतानपना ठहर नहीं सकता। सर्वथा क्षणिक वस्तु मानने पर प्रत्यभिज्ञान न होने से एक संतानपना नहीं रहता है, इस कारण प्रत्यभिज्ञान का कारणभूत कोई स्वरूप अवश्य है यह मानना चाहिये, और क्रम से प्रकट होने वाली पर्यायों का भी स्वरूप अवश्य है जिससे कि नवीन पर्याय उत्पन्न होती है और पुरानी पर्याय विलीन होती हे।

सत् की उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकता—उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीनों लक्षण पदार्थ में एक ही समय में रहा करते हैं। पदार्थ में ध्रुवता तो निरन्तर ज्ञान में आना सुगम ही हैं कि यह सदा रहा करता है। अब इसमें प्रतिसमय में एक-एक नवीन-नवीन दशा हो जाती है। यह सत् प्रतिसमय नवीन परिणामात्मक चलता रहता है। अब उस नवीन परिणमन में ये दोनों बातें एक साथ गर्भित है। नवीन पर्याय का उत्पाद और पुरानी पर्याय का विलय, जैसे 8 बजकर एक समय के बाद जैसे ही दूसरा समय लगा तो 8 बजकर दूसरा समय में उत्पाद और 8 बजकर पहिले समय की परिणति का विलय ये दोनों एक साथ हैं जैसे अंतिम संयोग और वियोग ये दोनों एक साथ हैं। जैसे किसी को आप स्टेशन पहुंचाने जायें और वह स्टेशन से आगे चला गया। आप स्टेशन से लौट आये। आपसे पूछा जाय कि तुम्हारा उससे वियोग कहां पर हुआ था? तो आप कहेंगे कि स्टेशन पर हुआ था। अरे स्टेशन पर तो संयोग था, वियोग कहां से हो। अंतिम संयोग और वियोग दोनों एक ही बात है। जैसे मिट्टी का एक खिलौना बनवाया या एक दिया ही बनवाया तो दिया बनाने से पहिले जैसा पिंड रूप में थी वह मिट्टी, दिया बनाने पर दिया का तो उत्पाद हो गया और उस मृतपिण्ड का विनाश हो गया। ये दोनों एक साथ हुए। जैसे सीधी अंगुली को टेढ़ी किया जाय तो टेढ़ी का उत्पाद हुआ, सीधा का विलय हुआ। ये दोनों एक साथ हुए। क्या कभी ऐसा होता कि अंगुली पहिले तो सीधी मिट जाय, इसके बाद में फिर टेढ़ी हो, ऐसा कोई कर सकेगा क्या? अरे टेढ़ी होने का ही नाम सीध मिटाना है।

जीवन मरण की तरह उत्पाद व्यय का एक समय—किसी जीव के मनुष्य आयु चल रही है। मानो यह मनुष्य आयु अमुक नियत दिन में ठीक १० बजे तक चलेगी तो १० बजे तक मनुष्य आयु का उदय है और १० बजकर पहिले समय में मानो देव आयु का उदय आ गया तो हमें यह बतलावो कि यह मनुष्य १० बजे मरा या १० बजकर पहिले समय में मरा यदि यह कहा जाय कि वह मनुष्य १० बजे मरा तो गलत बात है। १० बजे तो मनुष्य आयु का उदय चल रहा है। मनुष्य आयु का उदय रहते सन्ते मनुष्य का मरण कहा जा सकता है क्या? १० बजकर पहिले समय में जब कि वह देव आयु के उदय में है उस समय मनुष्य का मरण कहलायेगा। तो नवीन आयु का उदय हो और पुरानी आयु का क्षय हो इन दोनों का एक समय है। यों अनेक दृष्टान्तों से समझते जायें कि उत्पाद और व्यय का एक ही समय है, इसमें अपेक्षा भाव है ना। उसही पर्याय का उत्पाद और उसही पर्याय का विनाश एक समय में नहीं कहा जा रहा है, किन्तु नवीन पर्याय का उत्पाद और पुरानी पर्याय का विनाश में दोनों बातें एक समय में हुआ करती हैं। यों उत्पाद व्यय और ध्रौव्य इन तीनों अवस्थावों को एक साथ धारण करने वाला पदार्थ जानना चाहिए। इससे यह जानो कि सत्ता उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है।

सत्ता और सत्तावान में अभेद—सत्ता और सत्तावान में दो पदार्थ कुछ अलग-अलग नहीं है। जैसे मेरा अस्तित्व और मैं वे दो न्यारी-न्यारी चीजें नहीं है। यदि दो न्यारी-न्यारी चीजें हो तो ये मेरी हो ही नहीं सकती। जैसे लोग कहते हैं कि यह मेरा पैन हैं। ये दोनों बातें विरुद्ध हैं। कैसे यह पैन मेरा है जब कि यह मैं और पैन यह एक ही बात नहीं है। अरे मैं चेतन हूं यह पैन जड़ है, भिन्न-भिन्न पदार्थ है। और जब

भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं तो फिर मेरा क्यों कह रहे हैं। वह भिन्न कलम मेरा हो ही नहीं सकता। जो मेरा है वह मुझसे अभिन्न है। जो मुझमें अभिन्न नहीं है वह केवल कहने का और कल्पना का ही मेरा है। तो सत्ता और सत्तावान ये दोनों न्यारे नहीं हैं, किन्तु भाव और भाववान का भेद किया जा रहा है। जैसे इन्सानियत और इन्सान में क्या दो अलग-अलग चीजें सत् हैं, एक ही चीज है, सिर्फ भाव और भाववान का इसमें एक भेद बताया गया है समझने के लिए, यों भाव और भाववान कथन्चित् एक स्वरूप है, इस कारण वह उत्पादव्ययध्रौव्य रूप त्रिलक्षणात्मक सत्ता समस्त वस्तुवों में सदृश्यता का सूचक होने से एक है। उसमें क्या अन्तर है?

सत्त्वसामान्य और सत्त्वविशेष—जैसे कहा जाय कि जरा एक मनुष्य को लाना, तो लाने वाला किसी भी मनुष्य को लाये, बूढ़े को ला दे तो भी यह नहीं कह सकते कि इसे तू क्यों लाया। अरे ! तुमने मनुष्य कहा था, यह मनुष्य नहीं है क्या? भले ही किसी प्रसंग में जवान पुरुष को आदमी कहा जाता है। तो उस आदमी के कहने का अर्थ ही जवान है। जैसे आप कहीं जा रहे हों, सामान जाना है स्टेशन पर तो किसी से कह दिया कि भाई एक आदमी तो आना। और, वह ले आये साल डेढ़ साल का लड़का, तो ले आये आदमी? वह तो प्रासंगिक बात नहीं हुई। वहाँ तो प्रयोजन यह था कि किसी जवान को लावो जो सामान लेकर चले। तो वहाँ आदमी शब्द का अर्थ आदमी ही नहीं है, किन्तु एक हष्ट-पुष्ट पुरुष है। जब कहा गया कि किसी जवान को लावो तो इसमें भेद पड़ गया। तो जैसे मनुष्य-मनुष्य में कोई अन्तर नहीं है, सब एक रूप है, चाहे रंक हो, राजा हो, ज्ञानी हो, मूर्ख हो सब मनुष्य हैं। यहाँ तक कि चाहे अरहंत हों और चाहे यहाँ का कोई दीन हो, सब मनुष्य हैं। एक भगवान है अरहंत वह भी मनुष्य गति में है। तो जैसे मनुष्य कहने में सब मनुष्य एक समान ज्ञात होते हैं ऐसे ही सत् इतना मात्र कहने से अनन्त द्रव्यों का समूह समझाना है।

सत्ता की सर्वपदार्थस्थता—द्रव्यात्मक समस्त विश्व एक सत् रूप निरखा जाता है। यों यह सत्ता सर्व पदार्थों में स्थित है, क्योंकि सत्ता से शून्य कोई भी पदार्थ नहीं है। त्रिलक्षणात्मक सत्ता का प्रत्यय परिज्ञान सब पदार्थों में एक समान ही देखा जाता है। यह समस्त विश्व समस्त वस्तुवों का समुदाय है। जैसे घर कहने से एक घर आया, मोहल्ला, मोहल्ला कहने से १०० घर आये नगर कहने से हजार घर आ गए। तो नगर सर्वगृहात्मक है। ऐसे ही यह विश्व समस्त वस्तु विस्तारात्मक है। यह विश्व अलग से कुछ वस्तु नहीं है, अनन्त पदार्थों का समूह ही यह विश्व है।

सत्ता की अनन्तपर्यायरूपता—जैसे प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यरूप रहा करते हैं तो उत्पादव्ययध्रौव्यरूप रहने वाले समस्त पदार्थों का समूह रूप माना हुआ यह विश्व क्या उत्पाद व्यय ध्रौव्यस्वरूप न कहा जायगा। जैसे काम तो करता है मनुष्य और कहते हैं यों कि देखो यह मनुष्य जाति कितना काम करती है। तो समस्त व्यक्तियों का जो कुछ स्वरूप है वही जाति का स्वरूप है। यों सारा विश्व स्वयं ही वस्तु विस्तारात्मक है और वह उत्पादव्ययध्रौव्य रूप स्वभाव से प्रवर्त्तमान है। यह सत्ता अनन्तपर्यायात्मक है क्योंकि द्रव्य में अनन्त पर्यायों की व्यक्तियां होती हैं और वे सब त्रिलक्षणात्मक हैं। यों यह अस्तित्व, सत्ता सर्व अनन्त पर्यायात्मक है। इतने विशेषणों से पदार्थ का स्वरूप बताने के बाद अब यह बतावेंगे कि यह सत्ता केवल इस ही रूप नहीं है, किन्तु इससे विपरीत स्वरूप वाली भी है, अर्थात् प्रतिपक्ष सहित है। उसही प्रतिपक्षपने का अब आगे वर्णन आयेगा।

सत्ता की सप्रतिपक्षता का निर्देशन—इस गाथा में पदार्थों के अस्तित्व का स्वरूप कहा गया है। पदार्थ है। उस है की विशेषता बतायी गई है। है किस तरह का होता है। पदार्थ का अस्तित्व सत्ता सब पदार्थों में है, विश्वरूप है, अनन्त पर्यायात्मक है। उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त है। उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त है इतना कहने के

बाद अब इससे उल्टी बात को सत्ता में घटाते हैं। जैन दर्शन प्रत्येक वक्तव्य को प्रतिपक्षसहित मानता है। जैसे कोई किसी चीज को हाथ में लेकर कहे कि यह है, तो उसके साथ यह भी कह सकते हैं कि यह नहीं है। सुनने में कुछ अड़चन सी पड़ती होगी कि यह है और इसी को यह कह सकते हैं कि यह नहीं है। यह घड़ी है, ठीक है, चौकी नहीं है, तो जहां इसमें है पना सिद्ध किया वहाँ इसमें नहीं भी आ गया है। है और न ये दोनों अविनाभावी है। अगर न मुकर जाय तो है भी मर जायगा और है मुकर जाय तो न भी मर जायगा। कहा कि यह घड़ी है, यदि यह बात गलत हो जाय तो यह चौकी नहीं है यह भी गलत बात हो जाय। यह चौकी नहीं है ऐसी न की बात गलत हो जाय यह भी गलत हो जायगा कि यह घड़ी है।

सत्ता की सप्रतिपक्षता का विवरण—सत्ता भी सप्रतिपक्ष है। सत्ता है इसका उल्टा क्या? असत्ता है, नहीं है, तो किसी पदार्थ में ''है'' है तो उसमें ''नहीं है'' भी है। सत्ता में यह विशेषण कहा था कि यह त्रिलक्षणात्मक है तो उससे उल्टी बात भी है कि अत्रिलक्षण भी है। सत्ता को एक कहा था कि सत्ता एक है, तो उसमें उल्टी बात भी कह सकते हैं कि सत्ता अनेक है। सत्ता सब पदार्थों में स्थित है तो उससे उल्टा यह कह सकते है कि सत्ता एक पदार्थ में स्थित है। सत्ता विश्व स्वरूप है तो उससे उल्टा कहेंगे कि सत्ता एक रूप है। सत्ता अनन्त पर्यायों रूप है तो उससे उल्टा यह कहेंगे कि एक पर्याय रूप हैं।

सत्ता की सप्रतिपक्षता का मुख्य आधार—सत्ता दो तरह की होती है एक महासत्ता और एक आवान्तर सत्ता। सत्ता मायने है पन। जैसे यह वस्तु है तो है के मायने क्या है, है के मायने सत्ता, मौजूदगी। तो सत्ता दो तरह की है एक महासत्ता और एक आवान्तर सत्ता। सब पदार्थों में यह पदार्थ हैं, केवल है की ही दृष्टि रक्खी जाय तो वह 'है' सब पदार्थों में है। उस सामान्य ''है'' का नाम महासत्ता है, और एक-एक चीज, यह पुस्तक है, ऐसी एक-एक चीज जो है वह आवान्तर सत्ता है। जैसे पुस्तक की सत्ता पुस्तक में ही है, चौकी में नहीं है और सत्ता सामान्य सबमें है, और यह बालक है, यह जवान है, यह बूढ़ा है, इस तरह जो विशेष सत्ता है, वह सबमें नहीं है। समस्त पदार्थों में रहे ऐसी सत्ता तो यह महासत्ता कहलायेगी। माने सदृश्य अस्तित्व की सूचना देती है महासत्ता और प्रत्येक पदार्थ में उसही की जो सत्ता है वह पदार्थ के स्वरूप का सूचक है। वह आवान्तर सत्ता है।

दृष्टि की सामान्यविशेषरूपता—एक मनुष्य के बारे में जो जवान है, उसके बारे में हम दो दृष्टि लगा सकते हैं जिस दृष्टि में सब मनुष्य बराबर हैं यहाँ। और एक यह जवान है, बलशाली है, पुष्ट है ऐसी एक जवान की भी सत्ता लगा सकते हैं। अब इतनी दृष्टि में उस मनुष्य के बारे में दो तरह की सत्ता समझ में आयी, एक मनुष्य सामान्य और एक जवान सामान्य। तो मनुष्य सामान्य कहकर जैसा है समझ में आया है ऐसा है जवान में नहीं है और जवान मनुष्य में जैसा है समझ में आता है वैसा है सामान्य मनुष्य में नहीं है। तो सामान्य मनुष्य की सत्ता विशेष मनुष्य की असत्ता उसही में है। विशेष मनुष्य की सत्ता और सामान्य मनुष्य की असत्ता उस एक में है। यों समझिये—जैसे मिट्टी का घड़ा बनाया, उसमें जो मिट्टी का ढंग होता है वह तो सामान्य है और जो घड़े का ढंग है वह है विशेष। तो घड़े का ढंग मिट्टी के ढंग में नहीं है, मिट्टी का ढंग घड़े के ढंग में नहीं है। यों वही चीज है भी है और 'नहीं भी' है। महासत्ता आवान्तर सत्ता के रूप में असत् है और आवान्तर सत्ता महासत्ता के रूप से असत् है। इस तरह सत्ता का प्रतिपक्षी असत् हुआ।

सत्ता में त्रैलक्षण्य की सप्रतिपक्षता—अब त्रिलक्षण में देखिये। पदार्थ नवीन पर्याय से उत्पन्न होता है और पुरानी पर्याय उसमें विलीन होती है, और पदार्थ वही का वही रहता है। जैसे घड़ा है, फोड़ दिया, खपरियां बन गयी तो खपरियों का तो उत्पाद हुआ और घड़े का विनाश हुआ और मिट्टी वही रही। यह विषय कठिन है पर जैन दर्शन का तो एक परिज्ञान निचोड़रूप यही तत्त्व है जो सर्वत्र न मिलेगा। पदार्थ

का स्वरूप सही जानने में न आये तो आपको शान्ति का उपाय नहीं मिल सकता। मोह हटाने का उपाय एक सही ज्ञान है। सही ज्ञान के बिना आप कितने ही उपाय कर लें मोह नहीं मिट सकता है।

सम्यग्ज्ञान के अतिरिक्त अन्य पर्यायों में मोहक्षय की असफलता—जैसे कोई चाहे कि हमारा स्त्री पुत्र से अधिक मोह है तो मैं ऐसी लड़ाई छेड़ दूं कि हमारा मोह ही मिट जाय। जब दिल खट्टा हो जायगा तो मोह दूर हो जायगा। तो इससे भी मोह दूर न होगा। प्रथम तो उस स्त्री पुत्र से भी मोह दूर न होगा, और ढंग से उसके बारे में कल्पना जगेगी। मोह की तरंग राग भी है और द्वेष भी है। मोह से केवल राग ही होता हो सो नहीं। मोह से द्वेष भी होता है। तो उस द्वेष का कारण मोह है और यह मोह द्वेष को बढ़ायेगा राग को न बढ़ायेगा, इतना ही अन्तर आयेगा। किसी से झगड़ा बनने से इतना अन्तर आयगा कि उसका मोह द्वेष के रूप में होता है, रागरूप नहीं, पर झगड़े से मोह न मिट जायगा। दूसरी बात यह है कि झगड़ा बनने से कदाचित् एक पदार्थ से मोह मिट जाय तो अन्य पदार्थ में मोह चलने लगेगा, क्योंकि अज्ञान बसा हुआ है। मोह का मिटाना सिवाय सम्यग्ज्ञान के किसी उपाय से ही नहीं हो सकता है।

मोहक्षय में ज्ञान का सहयोग—मोह मिटाने में इतनी ही दृष्टि तो चाहिए कि यह पदार्थ पूर्ण स्वतन्त्र है। उसका गुण, उसका परिणमन, उसकी शक्ति, उसका प्रभाव, उसका स्वामित्व, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सब उसमें ही होता हैं। सभी पदार्थ अपने स्वस्वरूप हैं, तब त्रिकाल भी मेरे करने से दूसरा कुछ बनता नहीं तो फिर मेरा कुछ क्या बनता या बिगड़ता है।

गाथा ९

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं।
दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो।।९।।

क्लेशविनाश का कारण स्वरूपरिच्छेदन—जीवों को जो दुःख का कारण है उस कारण को मेटने की परम आवश्यकता है। दुःख का कारण क्या है? मोह। परपदार्थ दुःख का कारण नहीं है, परपदार्थ अपनी सत्ता में है, अपनी परिणति में है, अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से हैं, उससे मुझ में क्या आयगा? वह मुझ में क्या परिणमन करता है? कोई परपदार्थ किसी दूसरे का परिणमन नहीं करता, परंतु परवस्तुवों के सम्बंध में जो कल्पना जगती है, मोह जगता है बस यह ही अज्ञान भाव दुःख का कारण है। तो इस मोह को मिटाया कैसे जाय? बिल्कुल सीधा उत्तर है। पहले यह बताओ कि मोह होता क्यों है? मोह नाम किसका है? मोह नाम है परपदार्थ में अपना लगाव रखना। तो बस उत्तर हो गया। मोह मिटाना है ना, तो परपदार्थों में अपना लगाव न रखो, मोह मिट गया। परपदार्थों में लगाव न रखें—इसकी तरकीब क्या है? इसकी तरकीब यह है कि यह ज्ञान में लाये कि पर की सत्ता अलग और मेरी सत्ता अलग, पर मेरा कुछ नहीं और मैं पर का कुछ नहीं, यह समझ हो तो मोह मिटेगा। यह समझ कैसे हो? इसके लिए पदार्थों के स्वरूप का परिचय बनायें। इससे पहली गाथा में सत्ता के सम्बन्ध में बात चली थी। सत्ता सब पदार्थों में है, सर्व रूप है, सर्व पर्यायों में है, प्रतिपक्षसहित है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में है, सो कहीं वह सत्ता पदार्थ से अलग चीज नहीं हैं। सता का वर्णन करना पदार्थ का ही वर्णन कहलाता है। सत्ता से अलग गुण मानने वाले योग आदिक हैं जो सत्ता के सम्बन्ध से पदार्थ को सत् मानते हैं। पर ऐसा नहीं है। सत्ता और पदार्थ में अभिन्नता है, भिन्न दो चीजें नहीं हैं। जैसे बोरे में गेहूं या चने वगैरा भरे हों ऐसी कहीं पदार्थ में सत्ता पड़ी हो सो बात नहीं, क्योंकि सत्ता का सम्बन्ध लगाने से पहले पदार्थ है या नहीं, यह बताओ। अगर सत्ता का सम्बन्ध जोड़ने से पहले पदार्थ है तो अब सता के सम्बन्ध की जरूरत क्या रही? वह तो है ही और अगर नहीं है तो क्या असत् में सत्ता जोड़ी जा सकती है? फिर तो खरगोश के सींग और आकाश के फूल

आदिक में भी सत्ता जुड़ बैठेगी, सो ये भी सत् बन जायेंगे। तो सत्ता पदार्थ से अलग नहीं। जब पदार्थ का वर्णन किया तो सत् का वर्णन हो गया। पदार्थ का सही-सही स्वरूप जान लेंगे तो मोह मिट जायगा।

अज्ञानान्धकार में मोहलीला—यह अज्ञान क्यों बसा है जीव को कि जो घर में बालक हुआ है उसकी तो शकल सूरत बड़ी इष्ट लगती है और ऐसा मान लेते कि यह तो मेरा है, उससे भी अच्छे बालक हों तो उनके प्रति भाव ही नहीं जाता कि ये मेरे हैं। ऐसा क्यों है? मोहवश। अज्ञान है, स्वपर का विवेक नहीं है, पदार्थों के स्वरूप का भान नहीं है। एक सेठ के यहाँ नई नौकरानी आयी। उस सेठ का बच्चा एक स्कूल में पढ़ता था। उस दिन वह बच्चा अपना खाना न ले गया। उसी गांव की वह नौकरानी थी तो सेठानी ने कहा उस नौकरानी से कि जावो यह मेरा डिब्बा ले जावो, इसमें खाना रखा है, इसे मेरे बच्चे को अमुक स्कूल में दे आवो। तो नौकरानी बोली कि हम तो आपके बच्चे को पहचानते ही नहीं, तो सेठानी गर्व से बोली कि अरे मेरे बच्चे को क्या पहिचानना? उस स्कूल में सारे बच्चों में जो सबसे प्यारा बच्चा लगे उसे दे आना। उस सेठानी को यह गर्व था कि बस सबसे अच्छा तो मेरा ही बच्चा है। नौकरानी चली। उसने उस स्कूल में दृष्टि दी, कौन है वह प्यारा बच्चा जिसको खाना दें। देखते-देखते उसी स्कूल में नौकरानी का लड़का भी पढ़ता था, उसे तो वह ही बच्चा प्यारा लगा और खाना उसी को देकर घर लौट आयी। अब सेठ का बच्चा शाम को लौटकर घर आया तो बोला माँजी ! आज तुमने हमारे लिए खाना क्यों नहीं भेजा था? तो सेठानी बोली—भेजा तो था। नौकरानी को बुलाकर पूछा—क्या तूने मेरे बेटे को खाना नहीं दिया? तो नौकरानी बोली—मालकिन दिया तो था। तुमने ही तो कहा था कि उस स्कूल में जो सबसे प्यारा बच्चा लगे उसे खाना दे आओ, सो मुझे तो सबसे प्यारा मेरा ही बच्चा लगा सो उसी को खाना दे आयी थी। सो घर-घर बात देखो, सबकी रुचि न्यारी-न्यारी है, जीव सब समान हैं, एक स्वरूप वाले हैं, सब अपने-अपने सत्व में ही रहते हैं तो यह क्या है? सबसे पूछ लो तुम्हें कौन प्यारा लगता है? तो सबका उत्तर वही होगा। सब अपना-अपना बतायेंगे, औरों के प्रति सद्भावना ही नहीं जगती। तो यह क्या है? मोहान्धकार। यह मोहान्धकार कैसे मिटे? पदार्थों के स्वरूप का सही-सही निर्णय होने से मोह मिटता है।

मोहविनाश का उपाय, पदार्थों की परस्पर विविक्तता के तथ्य का परिचय—मोहविनाश का अमोघ उपाय जैनशासन में बड़ी अद्भुत सही शैली से कहा है। द्रव्य के बारे में स्पष्ट ले एकत्वविभक्त स्वरूप याने प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूप में तन्मय और अन्य सर्वपदार्थों से त्रिकाल न्यारा है, ऐसा स्पष्ट स्वरूप जैनशासन में है। बच्चे लोग भी प्रारम्भ से ही पढ़ते हैं ना कि द्रव्य ६ प्रकार के होते हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पर वे बच्चे उन ६ प्रकार के पदार्थों का महत्व क्या समझे? बल्कि उन बच्चों के पढ़ाने वाले भी ठीक-ठीक नहीं समझते। यह धर्म प्रवेश का प्रारम्भिक परिचय है। उन ६ प्रकारों में तो क्या, व्यक्ति-व्यक्ति में अर्थात् जीव जाति में अनन्तानन्त जीव हैं। वे प्रत्येक जीव अन्य जीवों से भिन्न अन्य सर्व पदार्थों से भिन्न अणु-अणु समस्त से भिन्न हैं, इसके लिए द्रव्यगुण-पर्याय की विधि समझनी होगी। पदार्थ किसे कहते हैं, जो अपनी परिणतियों को प्राप्त करे उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य अपनी परिणतियों को ही पाता है, अन्य की परिणतियों को नहीं। परिणति अपने स्रोत में ही होती है, पर में नहीं। द्रव्य के लक्षण से ही ये सब तथ्य ज्ञात हो रहे हैं। यहाँ कह रहे हैं—द्रवति गच्छति, जो अपनी पर्याय को द्रवे, जावे, पावे उसे द्रव्य कहते हैं। यद्यपि द्रवति का ही अर्थ है गच्छति, फिर भी आचार्य महाराज ने जो दो शब्द दिये हैं उससे यह ध्वनित होता है कि स्वभावपर्याय को तो द्रवे और विभावपर्याय को पावे। यह एक शब्द भेद जब यहाँ पड़ा है तो उससे तथ्य निकालने की कला से समझना, और इस आशय में द्रवने का अर्थ सहजस्वभाव में से सहजस्वभाव के अनुरूप उसमें मिला हुआ एक पर्याय की व्यक्ति होना, और पाने का नाम क्या है? जो पाना है व जो कुछ पाया जाता है उसमें विषमता होती है, कुछ अलग लक्षण का भान होता है। तो जो विभाव पर्यायें हैं वह विपरीत परिणमन है, इसलिए उनके बारे में पाना बोलते हैं। द्रव्य

स्वभावपर्याय से तो द्रवता है और विभावपर्याय को पाता है, यह बात इस सूत्र में द्रवति, गच्छति दो शब्द बोलने से समझी जा रहा है। वहाँ मूल सिद्धान्त से ऐसा एकान्त नहीं है, क्योंकि द्रवति दोनों पर्यायों के लिए आता है। तो प्रत्येक पदार्थ अपने में अपनी अवस्थाओं को व्यक्त करता है, यह बात इस गाथा में समझने की है। अब इसको हर जगह घटाते जाइये—आप अपने में अपनी पर्यायों को प्रकट करते हैं। एकद्रव्य का दूसरे द्रव्य पर कुछ अधिकार भी क्या? जो अधिकार का श्रम लग रहा है, मेरा इस मित्र पर अधिकार, बालक पर अधिकार, अमुक पर अधिकार, सो यह तो पुण्ययोग, कषाय की अनुकूलता, एक प्रकार की भावना वालों का संग, ये सब कारण हैं, जो अनुकूल बातें होती जाती हैं, पर वहाँ भी प्रत्येक जीव का भाव अपना-अपना है। एक का दूसरे से कोई सम्बंध नहीं है, अधिकार नहीं है।

पदार्थों की परस्पर विविक्तता के परिचय का दृढ़ प्रभाव—पदार्थों की परस्पर विविक्तता का तथ्य जब विदित होता तो मोह नहीं रहता। भले ही पहले अज्ञान संस्कार के कारण राग रहेगा, लगाव रखेगा, सम्बंध भी बनायेगा, पर समझ सब जायगा कि है कुछ नहीं यह। ज्ञानी पुरुष जब चाहे एक साधारण घटना का ही निमित्त पाकर मोह को त्यागकर, गृहवास तजकर दीक्षा लेने में जो विलम्ब नहीं रखते और दूसरे लोग समझायें तो भी अपने निर्णय से नहीं चिगते, इसका कारण है कि उनको स्पष्ट विशुद्ध ज्ञान जग गया है। अब किसी के बहकावे में, फिर पुरानी आदत में वे नहीं आ सकते। जैसे बहुत दूर कोई रस्सी पड़ी हो और कोई उसे साँप समझ ले तो जब तक वह सांप समझ रहा था तब तक उसे आकुलता है, बेचैनी है, भय है, प्रयास करता है, दूसरों को बुलाता है, और कदाचित् थोड़ा ऐसा ख्याल रखे कि जरा देखें तो निकट जाकर कि कैसा यह साँप है, निकट गया, कुछ ऐसा लगा कि यह तो कोई चीज पड़ी है, और निकट गया, खूब देखा तो भली-भाँति समझ गया कि यह तो रस्सी है और हाथ से उठाकर निर्णय भी कर लिया कि यह तो रस्सी ही है, उसके बारे में जब ज्ञान हो गया कि यह रस्सी ही है, साँप नहीं, तो अब ऐसे ज्ञान वाले पुरुष को कोई दूसरा अगर बहकाये—कहे कि वह तो साँप है, मान लो साँप है। पहले वाली बात पर जरा आ जावो, तुम जरा वैसा अपना डर तो बनाओ, तुम जैसा भय पहले करते थे जरा वैसा भय करके तो दिखाओ तो क्या वह दिखा सकेगा? नहीं दिखा सकता। जब ज्ञान हो गया कि यह साँप नहीं है तो पहले जैसे भ्रम को वह कैसे लादे? वह किसी दूसरे के बहकावे में आ नहीं सकता, तो ऐसे ही समझ लो कि प्रत्येक पदार्थ का स्वरूपास्तित्व आवान्तर सत्त्व प्रत्येक का उसही प्रत्येक में है। एक का दूसरे में कुछ नहीं, तो कैसे फिर यह बहक सकता है? दूसरे के भुलावे में भी कैसे आ सकता है? तो पदार्थों के स्वरूप का निर्णय मोह को मिटाने का उपाय है।

पदार्थों की गुणपर्यायमयता व परिपूर्णता—पदार्थ याने जो है सो। सत् का वर्णन किया जा रहा है। जो अपने सत् को याने गुणों को और क्रमभावी याने पर्यायों को जो पाये वह द्रव्य। द्रव्य में गुण और पर्यायों का परिचय कीजिए। कोई पदार्थ है, है तो उसका स्वरूप है ना, स्वभाव है ना, वह एकरूप है। जो भी है अवक्तव्य है, पर उस एकरूप स्वभाव को जानने के लिए भेददृष्टि से गुणों का कथन होता है और व्यवहार से तो निश्चय में समझी जाने वाली बात का परिचय मिलता है। आत्मा है, वह एक स्वभावी है, चैतन्य स्वरूप है। उसको समझाने के लिए कहा गया है कि जो जाने सो आत्मा, जो देखे सो आत्मा, जो रमे सो आत्मा। यहाँ कोई गुण अलग-अलग पड़े हुए नहीं हैं, क्योंकि वह एक सत् है, एक सत् है तो एक स्वरूप है, एक स्वरूप है तो एक पर्याय है, पर उस एक परिणति को समझने के लिए व्यवहार से भेद करके नाना पर्यायें कही जातीं, जिनसे कि शक्तियाँ समझी थीं, तो ऐसा जो शक्तियों से और पर्यायों से अभिन्न है वह पदार्थ है, वह पदार्थ सद्भूत है, स्वयं सत् है, उससे सत्ता न्यारी नहीं। है बस 'है' को समझना है। जो भी है वह कैसा है? अपने में परिपूर्ण है। यहाँ कुछ काम अटका नहीं है किसी का । किसी भी मनुष्य का, जीव का कोई काम नहीं अटका ऐसा कि कुछ बात अधूरी रह गई, हमारा अस्तित्व

अधूरा रह गया, निर्माण पूरा नहीं बना, ऐसी कुछ बात तो है नहीं, यह जीव अनादि से पूर्ण अस्तित्व वाला है, अनादि से यह परिपूर्ण है अन्यथा यह बतलावो कि पुद्गल को तो कोई अधूरापन नहीं है कि इसका अभी कोई काम बाकी रह गया। प्रत्येक पदार्थ है, परिणम गया जिस रूप परिणम गया। चौकी है, जल गई तो जल गई, रखी है तो रखी है। जिस किसी भी अवस्था को प्राप्त हो, उसमें अधूरापन तो कहीं भी नहीं है कि यह चीज अभी आधी है। चौकी है तो वह भी पूरी, जल गई तो भी पूरी है। जो पदार्थ जिस किसी अवस्था को प्राप्त है वह पूरा है। वहाँ अटका कुछ नहीं है। यही बात जीव की है। जीव भी हर समय पूरा है, इसको अटका कुछ नही, जिस चाहे अवस्था को प्राप्त हो, मगर यह जीव चेतने वाला है, विकल्प करता है,, समझ बनाता है तो उसका दुरुपयोग कर रहा है विकल्प करके और उस विकल्प में अपने को अधूरा मान रहा। यह काम न बना तो मैं अधूरा ही रहा, यह अधूरा ही है। असंतोष ज्ञानी को क्यों नहीं है कि वह जानता है कि मैं परिपूर्ण हूँ, मुझ में अधूरापन है ही नहीं, अज्ञानी को संतोष क्यों नहीं होता? वह हर जगह समझता कि मैं अधूरा हूँ, मेरा यह काम हो जाय तब मैं पूरा कहलाऊँ। जब तक यह काम न बन जाय तब तक हम कुछ न कहलायेंगे, इतनी बाहर में बात बन जाय तो हम कृतकृत्य हो गए। ऐसा अपने को अधूरा मानता है, यह ही जीव को कष्ट की चीज है। लो देखो भैया ! जैसे कहते हैं ना कि कभी-कभी वरदान भी अभिशाप बन जाता है, तो ऐसे ही देखो इस जीव का ज्ञानस्वरूप है ना तो इस मोही के लिए अभिशाप बन गया, विकल्प बन गया, है पवित्र स्वरूप, मगर दुरुपयोग की यह हालत है।

पदार्थों के साधारण गुणों के परिचय से ही भेदविज्ञान की शिक्षा का प्रारम्भ—प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य में है, अपने प्रदेश में है, अपने गुणों में है, अपनी अवस्था में है। द्रव्य के समझने के जो ६ साधारण गुण हैं वे साधारण गुण ही भेदविज्ञान का प्रकाश करा देते हैं, फिर असाधारण गुणों से ही प्रकाश बढ़ाया। पहले तो साधारण गुणों को ही देख लीजिए। यह जताते हैं कि प्रत्येक पदार्थ एक दूसरे से अत्यन्त निराले हैं। जैसे पहला गुण है अस्तित्व। ''है'' यह एक वस्तु परिचय का प्रारम्भ बनाता। पहले कोई चीज है तब तो उसके बारे में आगे चर्चा बढ़ाये। तो पहले यह तो निर्णय बनायें कि पहले पदार्थ को अस्तित्व गुण ने बताया, पर इसमें कुछ स्पष्ट भान न हो सका, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ न्यारे-न्यारे हैं, यह बात समझ में आये तो स्पष्ट भान होगा, उसको बताया वस्तुत्व गुण ने। जो अपने स्वरूप से हो, पर के स्वरूप से न हो वह पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से सत्ता से हो, पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से सत् न हो, ऐसी व्यवस्था वस्तुत्व गुण ने बताया। देखो इसका कैसे प्रकाश दिया? तो जो बात वस्तु में है वह बतानी पड़ती है। तीसरा गुण है द्रव्यत्व। पदार्थ है तो निरन्तर परिणमन करता रहता है, एक भी समय, किसी भी समय परिणमे नहीं, तो वह पदार्थ है भी नहीं रह सकता, यह द्रव्यत्व गुण बता रहा है। अच्छा, प्रत्येक पदार्थ निरन्तर परिणमता रहेगा, जानते तो हैं सब, मगर एक इस क्रम में अभी तक यह बात आयी कि पदार्थ परिणमता है, कोई पदार्थ किसी दूसरे रूप भी परिणम जाय, इसका तो कोई निषेध नहीं हो पाया अब तक। तो इसमें अगुरुलघुत्वगुण ही यह व्यवस्था बनाता है, क्योंकि वह पदार्थ न गुरु बन सकेगा, न लघु। जो है सो ही रहेगा। इस कारण पदार्थ किसी दूसरे के परिणमन को नहीं करता। अगर एक पदार्थ दूसरे के परिणमन को कर दे तो इसका अर्थ है कि खुद तो हो गया हल्का । अपना परिणमन दूसरे को दे दिया और दूसरा हो गया वजनदार, ऐसा कोई गुरु, लघु नहीं बनता। प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी परिणति से परिणमता है, भले ही निमित्त नैमित्तिक सम्बंध कितना ही घनिष्ठ कठिन हो, अनिवार्य हो, लेकिन परिणमता खुद-खुद ही है, एक दूसरे रूप नहीं परिणमता। इसी को कहते हैं कि एक दूसरे की परिणति को नहीं करता। यह बात जब स्पष्ट समझ में आये तो वहाँ मोहभाव नहीं रहता।

अकिंचनभाव की आराधना में सिद्धि समृद्धि—अब रह गई यह बात कि मोह न रहे, फिर भी उसका

लगाव रहता है कभी कुछ समय तक। वह तो एक परिस्थिति की बात है, पर अन्तः प्रकाश बना हुआ है कि एक दूसरे का कुछ नहीं है। इससे अपने को क्या बात लेनी है कि सबसे न्यारा अपने को केवल ज्ञान मात्र निजस्वरूपमात्र निरखना है, मैं ज्ञानमात्र हूँ, सहज स्वभावमात्र हूँ, अपने प्रदेशों में हूँ, अपने में ही अपनी परिणति करता हूं, इसके बाहर मेरा कुछ नहीं है, मेरा कहीं कुछ घर नहीं है, मेरा कहीं कुटुम्ब नहीं है, मेरा ही प्रदेश यह मेरा घर है, मेरा ही स्वभाव, मेरा ही गुण यह सब मेरा सर्वस्व है। जब मैं इस पर्याय को छोड़कर जाऊँगा तो जो मेरा है वह मेरे साथ जायगा, जो मेरा नहीं है वह मेरे साथ न जायगा। यद्यपि इस संसारी जीव के साथ कर्म भी जाते हैं, पर कर्म उस नाते से नहीं जाते कि वे जीव के स्वरूप हैं, इसलिए जाते यों तो परिस्थिति है, बंधन है, निमित्त नैमित्तिक योग है, वहाँ भी निश्चय से कर्म-कर्म में रहकर जाते हैं, जीव-जीव में रहता हुआ जाता है। निमित्त नैमित्तिक योग जरूर ऐसा है कि अनादि से बंधे हैं, परम्परा उनकी चल रही है और साथ जाते हैं, जैसे कार्माणवर्गणा का शरीर। जो मेरा है सो मेरे साथ है, जो मेरा नहीं वह मेरे साथ नहीं। सबका स्वरूप जुदा-जुदा है, सत्ता न्यारी-न्यारी है। बच्चों को भी देखकर, वैभव को भी देखकर बेहोशी न लाये। ये ही मेरे सर्वस्व है—इस प्रकार की असावधानी बनाकर रहेंगे तो उतना ही दुःखी होना पड़ेगा। पदार्थों का स्वरूप भिन्न-भिन्न निरखें तो मोह मिटेगा और संकट इससे दूर होंगे।

गाथा १०

दव्वं सल्लक्खणयं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं।
गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू।।१०।।

द्रव्य की सल्लाक्षणिकता—द्रव्य क्या होता है, वस्तु कैसी होती है, पदार्थ कितने-कितने हुआ करते हैं? इस बात की समझ पर कल्याण की निर्भरता है, पदार्थ का सही स्वरूप जाने बिना न मोह हटेगा और न आत्मा में रमण हो सकता है । तो इस गाथा में द्रव्य का स्वरूप बताया जा रहा है, द्रव्य सत् लक्षण वाला है, सन्मात्र है। द्रव्य सन्मात्र है, यह भी कथन सही है। द्रव्य सत् लक्षण वाला है, यह भी कथन सही है। सन्मात्र कहने में अभेददृष्टि है, सत् लक्षण कहने में भेददृष्टि है। यह द्रव्य है, इसका लक्षण सत् है। इस लक्षण के कहने से क्षणिक एकांत का निराकरण हो जाता है, असत् की उत्पत्ति का निराकरण हो जाता है। जो सत् है उसही में अवस्थायें होती हैं। न असत् उत्पन्न होता, न असत् में अवस्थायें होतीं। हाँ पर्यायदृष्टि से चूँकि जो पर्याय उत्पन्न हुई है वह पहले न थी, इस कारण असत् की उत्पत्ति कही जा सकती है, मगर वह पदार्थ ही बिल्कुल न था और एकदम असत् का उत्पाद हुआ यह है क्षणिक एकान्त का सिद्धान्त और इतना ही नहीं, उत्पन्न हुआ और दूसरे समय में असत् हो गया, सत् केवल एक समय का माना जाता है क्षणिक सिद्धान्त में । यदि द्रव्य सत् लक्षण वाला नहीं है, किन्तु एकदम असत् का ही उत्पाद हो, ऐसा क्षणिक एकांत माना जाय तो न मोक्षमार्ग बनेगा, न दुःखों से छूटने का उपाय बनेगा, धर्म का लोप ही हो जायगा, धर्मपालन का फिर कोई अर्थ न रहेगा। धर्म करने वाला कौन? एक समय को तो आत्मा रहा, कदाचित् उसने धर्म किया तो वह तो धर्म करके मिट गया, असत् हो गया। अब दूसरा उसका फल पायगा। तो क्या यह कोई पदार्थ के स्वरूप की निशानी है? द्रव्य सत् है, अनादि से सत् है, अनन्तकाल तक सत् होगा। यों द्रव्य सत् लक्षण वाला है।

द्रव्य की उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तता—द्रव्य सत् लक्षण वाला है, इतने से कोई न समझे तो दूसरा लक्षण कहा जा रहा है कि द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है। जो है उसमें नियम से अगली अवस्थायें होती हैं, पहली अवस्थायें विलीन होती हैं और दोनों अवस्थावों का, समस्त अवस्थाओं का आधारभूत वस्तु ध्रुव रहा करता है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होना पदार्थ में स्वाभाविक है, किसी उपाधि के कारण नहीं है, उपाधि के कारण विशेष उत्पाद विशेष व्यय, ये तो बनेंगे मगर उत्पाद मात्र, व्यय मात्र, द्रव्यमात्र ये वस्तु के स्वाभाविक धर्म

हैं। चूँकि वस्तु है अतएव नियम से उत्पादव्ययध्रौव्य होगा ही। इस लक्षण के कहने पर नित्य एकान्त का परिहार हो जाता है। जो लोग मानते हैं कि पदार्थ नित्य ही है, उसमें परिणमन ही नहीं होता तो प्रथम तो यह बात बनती ही नहीं, क्योंकि परिणाम बिना, पर्याय बिना, व्यक्ति बिना हम उस द्रव्य को समझे क्या? कोई भी पदार्थ अवस्था शून्य नहीं होता है तो उसकी अवस्थायें हैं कोई और अवस्था है तो उसमें अनित्यता आयी। नित्य होकर भी अनित्य है, अनित्य होकर भी नित्य है। ऐसा नित्यानित्यात्मक पदार्थ होता, यह बात उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक लक्षण के समझने से एकदम स्पष्ट होती है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते किसके हैं? उसही पदार्थ का, उसही के स्वरूप का विरोध न रखकर उसही स्वरूप में, उसही द्रव्य में क्रम से होने वाले जो परिणाम हैं, अवस्थायें हैं उन अवस्थाओं में पूर्वभाव का विनाश होता है, उत्तर भाव का उत्पाद होता। किन्तु अपनी जाति का त्याग नहीं होता। यों उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त पदार्थ है। पदार्थ अपनी पर्याय में ही उत्पन्न हो पाता, अन्य द्रव्य की पर्याय में नहीं। पदार्थ अपनी ही पर्याय का विनाश करता, दूसरे की पर्याय का विनाश नहीं करता। पदार्थ अपने आपके स्वरूप में ही सदा रहता है, दूसरे पदार्थ के स्वरूप में नहीं रहता। यह बात भी उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त के परिचय से ज्ञात हो जाती है। द्रव्य का सही लक्षण जानने पर मोह ध्वस्त होता है। वह इसी तरह तो हुआ। जब उसका उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य उसके ही स्वरूप में है, उसके ही प्रदेशों में है अन्य का अन्य के प्रदेशों में है तो एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ से नाता क्या रहा? जब यह बात स्पष्ट विदित हो रही तो उसके मोह तो न रहेगा। यह हो नहीं सकता कि पदार्थ के इस सत्यस्वरूप का सही परिचय हो जाय निर्णय हो जाय और मोह रहे। भले ही परिस्थितियाँ राग करने को बाध्य करें, राग और द्वेष चलते हों, पर स्वरूप निर्णय के बाद मोह तो नहीं रह सकता। मोह नाम किसका है? स्वरूप का अनिर्णय, निज और पर में भेद का अज्ञान रहना। सो जहाँ वास्तविक ज्ञान हुआ वहाँ यह अज्ञान नहीं ठहरता। मोह तो रहता नहीं और मोह न रहना एक बहुत मौलिक पवित्रता है, जो आगे की पवित्रताओं का बीज है और इस प्रकार की समझ बनाने में कष्ट क्या होता है? आनन्द ही मिलता है। सही बात जान लिया। मोह न रहेगा तो झंझट न रहेगा। तो पदार्थ का लक्षण दूसरा यह बताया है कि वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से संयुक्त है।

द्रव्य की गुणपर्यायाश्रयता—तीसरा लक्षण है द्रव्य गुण-पर्याय का आश्रय है अथवा कहो—गुणपर्यायवान है या यों कहो कि गुण पर्यायमय है। जैसे दूसरा लक्षण कहा था उत्पादव्ययध्रौव्य, तो उत्पादव्यय के लक्षण द्वारा तो पर्याय समझा गया और ध्रौव्य लक्षण द्वारा गुण समझा गया। ये लक्षण परस्पर व्यञ्जक-व्यञ्जक भाव को धारण करते हैं। जैसे कभी कोई बात कहता है—कोई बात समझने में कठिन पड़ गई तो मायने, याने, अर्थात् कहकर जैसे स्पष्टीकरण किया जाता है, ऐसे ही इन तीन लक्षणों में द्रव्य के स्वरूप का स्पष्टीकरण करें और साथ ही इसमें तथ्य है, द्रव्य, गुण, पर्याय का आश्रय है याने द्रव्य में अनादिअनन्त शाश्वत रहने वाली शक्तियाँ हैं। वह तो गुण है, और उन शक्तियों का अथवा प्रदेशों का जो एक व्यक्तरूप बनता है, आकार, परिणमन बनता है वह सब पर्याय है। द्रव्य से गुण-पर्याय यह अलग चीज नहीं है, किन्तु एकद्रव्य का ही व्यक्तरूप है, द्रव्य गुण-पर्याय वाला है, ऐसा कहने से उस एकान्त का निराकरण होता है, जो गुण और पर्यायों को भिन्न मानते हैं। मीमांसक सिद्धान्त में ६ पदार्थ माने गए हैं—(१) द्रव्य, (२) गुण, (३) कर्म, (४) सामान्य, (५) विशेष और (६) समवाय। और इतना ही तक नहीं, एक ७वाँ माना है अभाव। ६ पदार्थ तो भावात्मक हैं और एक पदार्थ अभावात्मक है, ऐसे ७ पदार्थ हैं, पर ७ कहाँ? वह तो एक ही है। यों पदार्थ 6 या ७ नहीं, किन्तु पदार्थ तो एकद्रव्य शब्द से कहा गया मात्र है। गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय—यह तो द्रव्य में खोजी गई चीजों का परिचय है, मगर आज इस कलयुग में इस पवित्र जैनशासन की जो प्रभावना विशेष नहीं है, लोगों में इसकी विशेष ख्याति नहीं है तो उसके मुख्य कारण तीन बताये हैं समन्तभद्राचार्य ने। एक तो कलिकाल, लोगों का पतन

की ओर प्रकृत्या झुकाव रहता है, व्रत संयम से घबराते हैं, बनना चाहते हैं ऊँचे। तो व्रत संयम के दोष बखाने बिना इस आशा की पूर्ति कैसे हो सकती है? और साथ ही जब जैनशासन के प्रति श्रद्धा नहीं रहती और बड़प्पन चाहते हैं तो और-और भी ऐब बस जाते हैं। एक तो जैनशासन की महिमा न बढ़ने का कारण है कलिकाल। दूसरा कारण है वक्ताओं को नयों का परिचय, निर्णय, श्रद्धान नहीं है, जो बात अनायास या किसी प्रकार एक बार समझ में आयी उसका एकान्त हो जाता है।

अपूर्व किसी एक तत्त्वकिरण के मिलने पर भावुकता का अतिशय होने पर विडम्बना—एकांत की भावुकता में कितनी विडंबनायें होती हैं, उसका सिर्फ एक उदाहरण ही देख लीजिए। सिद्धान्त तो यह है कि जिससे कोई इन्कार नहीं हो सकता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का त्रिकाल कर्ता नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से अत्यन्त भिन्न है। तो हाँ किसी को एकदम एक द्रव्य दूसरे का कर्ता नहीं, एक द्रव्य दूसरे से भिन्न है यह जंचा और यह भावुकता से जंचा। सो निमित्त-नैमित्तिक योग जिसका फल यह सब संसार है, उसके भी निराकरण का प्रयत्न किया। निमित्त कुछ चीज ही नहीं। पदार्थ में बात होती है, निमित्त खड़ा हो जाता है। खैर, सिद्धान्त तो ठीक था मूल में कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का परिणमन करने वाला नहीं है याने एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के परिणमनरूप से नहीं परिणमता। पर यह बात जैनशासन की सही बात एक बात अनोखी दृष्टि में आयी तो उससे इतनी प्रसन्नता बढ़ी कि भावुकता में बढ़कर निमित्त नैमित्तिकयोग का भी निराकरण किया, और इतने से भी संतोष न हो सका तो यों कहने में आ गया—देखो द्रव्य में गुण अनन्त हैं ना। तो वे सभी गुण सत् हैं, भिन्न-भिन्न हैं, एक गुण दूसरे गुण पर कुछ नहीं करता। एक का दूसरा गुण कुछ नहीं है, और इसी प्रकार अनन्त पर्यायें हैं, वे सब पर्यायें स्वतंत्र हैं, स्वतंत्र सत् हैं, पर्यायों का गुण कुछ नहीं, द्रव्य कुछ नहीं। द्रव्य का गुण कुछ नहीं, पर्याय कुछ नहीं, सब स्वतंत्र सत् हैं, भावुकता में कह तो डाला, मगर यह ख्याल गुल हो गया कि जो सत् होता है उसमें ये दो बातें मुख्यतया होती हैं, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त होना और गुणपर्यायमय होना। उन अनन्त गुणों में से कौनसा गुण उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है, क्यों नहीं है कि गुण सत् है नहीं, पर्याय सत् है नही। वस्तु सत् है। ये गुणपर्याय में भिन्न-भिन्न सत् नहीं हैं। हाँ जो सत् है उसी को गुण को कह लो, वह ध्रुव है और उसही सत् को पर्याय कह लीजिये, पर्याय को कह लीजिए उत्पादव्यय, पर द्रव्य सत् है, गुण सत् है, पर्याय सत् है, यह बात जैनशासन में कहीं भी, न, मिलेगा। हाँ यह तो आया कि एक सत् द्रव्य है, सत् ही गुण है, सत् ही पर्याय है, ये शब्द तो आते हैं याने जो एक वस्तु सत् है उसी को अन्वय दृष्टि से देखें तो द्रव्य है, अन्वय शक्ति से देखें तो गुण है, व्यतिरेक दृष्टि से देखें तो पर्याय है। तो अज्ञानवश या छलवश कहो शब्द का परिवर्तन बन गया कि बात तो यों है कि सत् द्रव्य है, सत् गुण है, सत् पर्याय है। अब उस पहले कहे गए सत् शब्द को बाद में रखना, द्रव्य सत् है, गुण सत् है,पर्याय सत् है, कितनी विडम्बना बढ़ी, कितना अन्तर आया, जैनशासन के विरुद्ध हो गया। ऐसा तो मीमांसकों ने कहा—द्रव्य सत् है, गुण सत् है, कर्म सत् है, हाँ बात ठीक समझना चाहिए। वस्तु गुणपर्यायमय है। कुछ लोग वस्तु को नित्य ही मानते, कुछ लोग वस्तु को अनित्य ही मानते, कुछ लोग नित्यअनित्य दोनों मानते तो हैं, पर निरपेक्ष रूप से मानते हैं। जैसे कारणपरमाणु नित्य है, कार्यपरमाणु अनित्य है, तो ऐसे इन एकान्तों का निराकरण द्रव्य के इन लक्षणों से हो जाता है।

द्रव्य के ही सत् होने व गुणपर्याय के सत् न होने का कारण—द्रव्य है, साथ में यह भी जानें। जरा विस्तार बना लीजिए। जो वस्तु होती है उसमें ये ६ बातें पायी जायेगी। क्या? उसमें साधारण गुण होते हैं। जो भी पदार्थ है उसमें साधारण गुण होते हैं। साधारण गुण मायने अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्त्व और प्रमेयत्व, याने ये छहों गुण प्रत्येक द्रव्य में पाये ही जाते हैं। जहाँ ये ६ गुण नहीं वह पदार्थ नहीं। जो भी चीज है वह ६ साधारण गुणों से युक्त है, पहली बात। दूसरी बात—जो भी द्रव्य है वह असाधारण गुण वाला है। असाधारण गुण उसे कहते हैं कि जो किसी खास द्रव्य में ही गुण हो, अन्य द्रव्य

में न हो। जैसे चैतन्य जीव में ही है, पुद्गल आदिक में नहीं, मूर्तत्व पुद्गल में है अन्य में नहीं। तो जो भी है उसमें असाधारण गुण अवश्य होता। तीसरी बात—जो भी पदार्थ है वह उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक होता है याने क्षण-क्षण में नई-नई अवस्थायें बनायें, पुरानी अवस्थायें विलीन करें और स्वयं मूलतत्त्व को सदा शाश्वत रखें। चौथी बात—जो पदार्थ है उसका आकार अवश्य होता। चाहे एक प्रदेशरूप हो, चाहे बहु प्रदेशरूप हो। ५वीं बात—जो भी चीज है वह उसके अलावा अन्य सबसे भिन्न प्रदेश रखेगी। जो भी कुछ हो, एक जीव है, जो भी है वह अन्य सबसे भिन्न प्रदेश वाला होगा। आप जीव हैं, अन्य सब जीवों से आपके प्रदेश भिन्न हैं, पुद्गल आदिक से भिन्न हैं, इसे कहते हैं प्रविभक्त प्रदेश, ऐसी ये बातें गुणों में तो घटित नहीं होती, क्योंकि गुण पदार्थ नहीं। गुण तो पदार्थ का व्यवहारनय से समझा गया अंश है। गुणों में ६ साधारण गुण हैं। ज्ञान गुण हो, दर्शन गुण हो, कोई गुण हो, क्या उन गुणों में असाधारण गुण रहते हैं? वे स्वयं ही गुण हैं, गुण में गुण नहीं रहते। गुणों का कोई आकार होता है क्या? या गुणपर्याय से और द्रव्य से भिन्न प्रदेश रखता है क्या? जब एक यह भ्रम बन गया कि द्रव्य सत् है, गुण सत् है, पर्याय सत् है तो पर्याय के प्रदेश जुदे होने चाहिएँ, द्रव्य के गुण जुदे हो, पर ऐसा तो नहीं है। फिर ये सब स्वतंत्र सत् कैसे हो सकते हैं? स्वतंत्र सत् तो द्रव्य-द्रव्य ही है, और वह द्रव्य गुणपर्यायात्मक है, उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है, ऐसे इन तीन लक्षणों से द्रव्य की पहिचान होती है। इनमें से एक भी लक्षण कहो तो वही अन्य दो लक्षणों की सूचना दे देता है। ये परस्पर विरुद्ध लक्षण नहीं हैं, किन्तु एक दूसरे के पूरक हैं। ऐसे द्रव्य के लक्षण के परिचय में यह स्पष्ट हो जाता कि प्रत्येक द्रव्य जो कि अपने गुणपर्याय में ही है वह प्रत्येक द्रव्य मेरे से अत्यन्त भिन्न है कोई सम्बंध नहीं, कुछ उपग्रह नहीं। सिद्ध भगवन्त, अरहंत भगवन्त किनका नाम है? आत्मा सबसे निराला है, ऐसा निराला हो जाना कर्म, शरीर, विकार सबसे ही भगवन्तपना है। अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में निरन्तर लीन हो जाने का ही नाम तो भगवान है, वह मेरे स्वरूप में है, उसकी जानकारी नहीं है तब तक अज्ञान है, मोह है, पर को यह जीव अपनाता है, यों दुःखी होता है। तो पदार्थ के स्वरूप का परिचय करना यह एक समस्त धर्मपालन का एक मूल सोपान है, पहली सीढ़ी है, उसी का इस गाथा में वर्णन किया।

गाथा ११

उप्पत्ती व विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो।
विगमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जाया।।११।।

द्रव्य की पर्यायमयता—लोक में जो कुछ है वह कैसा है उसके स्वरूप का निर्णय चल रहा है। जो भी पदार्थ है उसमें दो बातें अवश्य हैं। एक सदा रहने वाला तत्त्व और दूसरा—उसकी प्रति समय बदलने वाली अवस्था। है और अवस्थायें बनाता रहता है। जो भी पदार्थ है उसमें तीन बातें अवश्य हैं—(१) बनना, (२) बिगड़ना और (३) बना रहना। ये तीन बातें किसी की समझ में आये तो, न आयें तो, होती सबमें हैं। यह अनिवार्य बात है। द्रव्य और पर्याय इनके बिना सत्त्व नहीं होता। अगर है कुछ तो सदा रहेगा और अपनी अवस्थायें बनाता रहेगा। यह है प्रत्येक पदार्थ का इतिहास। यह ही अनादि से प्रत्येक पदार्थ करता आया है। अनन्तकाल तक यह ही करता रहेगा। तो द्रव्यपर्यायात्मक वस्तु है। जैसे जीव द्रव्य क्या है? जो त्रिकाल रहने वाला चैतन्यस्वरूप है एक द्रव्य दृष्टि में ज्ञात हुआ। पर्याय क्या है ? तो पदार्थ को पर्यायें दो प्रकार से होती हैं—एक तो आकाररूप में और एक गुण परिणतिरूप में । दोनों ही प्रकार की पर्यायें प्रत्येक पदार्थ में हैं। जैसे परमाणु वह एक प्रदेशाकार है, बहुप्रदेशी नहीं है। जो भी एकप्रदेश है वही उसका आकार है, और गुण परिणमन क्या है ? स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये बदलते रहते हैं, ये उनकी गुणपर्यायें हैं। जीव में क्या है? नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव ये आकार पर्यायें हैं। जिस शरीर में जीव जाता उसही आकार में जीव प्रदेश रहते हैं। जीव एक अखण्ड है, प्रदेश भी अखण्ड है, मगर उस अखण्ड प्रदेश का

इतना विस्तार हो जाता है कि उसे अगर प्रदेश के रूप से नापे तो असंख्यात प्रदेश कहलाता है। कहीं ये असंख्यात प्रदेश एक-एक अलग-अलग हों और उनको जोड़-जोड़कर बनाया हो, ऐसा नहीं है। वह निश्चय से अखण्ड प्रदेशी है, किन्तु उसका विस्तार होता है, संकोच होता है तो समझा कि वह बहुप्रदेशी कहलाता है। जैसे प्रकाश खाली प्रकाश मात्र वह तो एकस्वरूप है, मगर उसके फैलाव की दृष्टि से देखो तो कोई दो हाथ दूर तक प्रकाश है, कोई १० हाथ तक, कोई ५० हाथ तक। तो फैलाव की दृष्टि से बहुप्रदेशी है और स्वरूप की दृष्टि से वह अखण्ड है। जीव भी अखंड प्रदेशी है वस्तुतः, किन्तु उसका कारण पाकर संकोच विस्तार होता है तो वह एक ही बढ़ा, एक ही घटा। उस घटा बढ़ी में जो नाप बना वह बहुप्रदेशी है, और ऐसे कितने प्रदेश हैं? तो यह कल्पना करो कि अगर जीव फैले तो कितनी दूर तक फैलेगा? पूरे लोक में फैलेगा। तो लोक में जितने प्रदेश हैं उतने प्रमाण आत्मा के प्रदेश हैं, इस प्रकार जीव के प्रदेश लोक प्रमाण असंख्यात कहे गए हैं। धर्मद्रव्य का आकार परिणमन क्या है ? जितना लोकाकाश है वहीं तक धर्मद्रव्य है, उतना ही अधर्मद्रव्य है। आकाश अनन्तप्रदेशी है, आकाश एक अखण्ड है। उस आकाश में जितने में समस्त द्रव्य रहते हैं उसका नाम रखा है लोकाकाश और उसके बाहर में जो आकाश है उसका नाम है अलोकाकाश। लोकाकाश की सीमा है, अलोकाकाश की सीमा नहीं है। वस्तुत: आकाश के दो भेद नहीं हैं, आकाश तो एक ही है। जैसे एक मैदान में आकाश है उसमें किसी ने एक बड़ा मकान बना लिया तो अब सम्बंध से दो भेद कर दो, एक मकान में रहने वाला आकाश और एक मकान से बाहर का आकाश। पर आकाश के क्या दो टुकड़े हो गए? वह अखण्ड प्रदेशी है, सभी पदार्थ अखण्ड प्रदेशी हैं। कालद्रव्य का क्या आकार है? कालद्रव्य एकप्रदेशी होता है। लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य स्थित है, उसका भी एक प्रदेशाकार है। प्रत्येक पदार्थ में आकार होता है। आत्मा को निराकार जो कहा है तो अमूर्त होने से कहा है, पर फैलाव की दृष्टि से आत्मा भी साकार है, प्रत्येक पदार्थ साकार है। उनका कोई निज-निज प्रदेश है और उस प्रदेश में फैलाव होता है। यों प्रत्येक पदार्थ में आकार का परिणमन है और सभी पदार्थों में गुण का परिणमन है। जो भी जिसका असाधारण गुण है उनका प्रति समय परिणमन होता रहता है, इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य पर्यायवान है।

उत्पादव्ययध्रौव्यमयता के परिचय से हित की शिक्षा—अब वस्तु को द्रव्य की दृष्टि से देखो तो पदार्थ सदा काल रहता है और पर्यायदृष्टि से देखो तो प्रति समय अपनी नई अवस्था बनाता रहता है, पुरानी अवस्था विलीन करता है। ये बातें सभी पदार्थों में पायी जाती हैं। इसके परिचय से अपने को क्या शिक्षा मिलती है कि भाई सभी पदार्थों का ऐसा ही स्वरूप है। प्रत्येक पदार्थ है और वह अपनी नई-नई अवस्था बनाता रहता है। कोई पदार्थ किसी दूसरे की अवस्था नहीं बनाता। कोई पदार्थ अपने प्रदेश से हटकर किसी दूसरे पदार्थ में नहीं जाता। इसलिए उसका किसी भी पदार्थ से कुछ भी सम्बन्ध नहीं। दूसरी बात उसकी जो परिस्थिति बन रही है, जो दु:ख भरी स्थिति है यह स्थिति मिट सकती है क्या? हाँ मिट सकती है। क्यों? यों मिट सकती कि आत्मा का स्वरूप है ऐसा कि पुरानी अवस्था विलीन करे और नई अवस्था बनाये। जिन सिद्धान्तों का यह मत है कि जीव तो एकान्तत: नित्य है, परिणमता नहीं। उनका जीव दु:खी है तो दु:खी रहेगा, सुखी है तो सुखी रहेगा, वहाँ तो परिणमन नहीं माना, तो उनकी कल्पना में जो मंतव्य है उस पदार्थ से दु:ख नहीं मिट सकता, पर ऐसा नहीं है। मैं जीव हूँ, प्रतिसमय अपनी अवस्थायें बनाता रहता हूँ । मैं अपनी दु:खमयी अवस्था मिटा दूं और आनन्द अवस्था को लाऊँ यह मेरी प्रकृति है, ऐसा मैं कर सकता हूँ । इस बात की हमको उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वाले स्वरूप से शिक्षा मिलती है।

अवक्तव्य अखंड वस्तु में भेददृष्टि, उत्पाद व्यय व ध्रौव्य का परिचय—प्रत्येक पदार्थ द्रव्यस्वरूप से न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है, किन्तु पर्याय ही उत्पाद व्यय और ध्रौव्यपने को प्राप्त होती है। देखिये ये

तीनों ही बातें पर्यायदृष्टि से कही गई हैं। तो उत्पादव्यय की बात तो भली प्रकार समझ में आयगी कि हाँ पर्यायदृष्टि से प्रत्येक पदार्थ नया-नया बनता रहता है, मगर ध्रुवपना कैसे आता है? तो देखो जहाँ द्रव्यदृष्टि है वहाँ अखण्ड सत् का परिचय है। उसमें उत्पाद है, व्यय है, ध्रौव्य है। ये तीन अंश व्यवहारनय से किए जाते हैं और अंश का ही नाम पर्याय है। पर्याय अंशादिक अर्थों में पर्याय शब्द का प्रयोग है, तो उस दृष्टि से पर्याय ही ध्रुवपने को, पर्याय ही उत्पादव्यय को प्राप्त होती है। अब इससे यह बात समझना कि जो पर्याय विशेष है, क्षण-क्षण में जो पर्यायें हैं उसे दृष्टि से तो पर्याय विशेष है, क्षण-क्षण में जो पर्यायें हैं उस दृष्टि से तो उत्पादव्यय है और जो पर्याय सामान्य हैं, सर्वपर्यायों में पर्यायपना तो है ही उस पर्याय जाति की दृष्टि से वहाँ ध्रुवता भी है। पर्याय होती ही रहेगी। इस तथ्य को तत्त्वार्थ सूत्र के एक सूत्र में बताया गया है—तद्भावाव्ययं नित्यं। पदार्थ के होने का, होते रहने का, व्यय न होने का नाम नित्य है, याने अवस्थायें निरन्तर होती ही रहें ऐसी धारा बनी रहने का नाम नित्य है। कोई भी पदार्थ ऐसा नित्य नहीं होता कि उसमें उत्पाद व्यय न हो। ऐसा यह मैं जीव तत्त्व द्रव्यदृष्टि से तो सद्भावरूप हूँ, अखण्ड हूँ, पर्यायदृष्टि से मेरे में उत्पाद है, व्यय है और ध्रौव्यपना है। ऐसा यह मैं परिपूर्ण अखण्ड आत्मा जगत के समस्त पदार्थों से निराला हूँ।

विकल्प का विच्छेद होने पर ही आत्मानुभव की निर्भरता—जैसे सबका घाट एक होता है। मरना सबको होता है। संसार में जीवन भी सबका एक ढंग से चलता है। आयु का उदय सो जीवन, आयु का क्षय सो विनाश, ऐसे ही शान्ति और कल्याण का लाभ भी एक ही विधि से होगा। जिसे आत्मानुभव चाहिए उसे बहुत-बहुत त्याग करना होगा। जैसे भीतर में जितनी कल्पनायें बनती उनका त्याग करना होगा, उनके संस्कार का त्याग करना होगा। ऐसा जब सहज उदार हो जाय तो वहां आत्मानुभव जगता है। देखो मैं किस जगह बैठा हूँ, यह थोड़ा बहुत भी याद रहेगा तो आत्मानुभव न बनेगा। मैं किस वक्त बैठा हूँ, कौनसा समय है, कितने बज गए हैं? यह बात जब तक थोड़ी भी चित्त में रहेगी आत्मानुभव न जगेगा। मैं मनुष्य हूँ, व्यापारी हूँ, वैश्य हूँ, जैन हूँ, गृहस्थ हूँ, साधु हूँ, परिवार वाला हूँ, बालबच्चों वाला हूं, मैं उच्चकुल का हूँ, ऐसी कोई भी बात, कुछ भी संस्कार जब तक चित्त में ऊधम मचायेगा तब तक आत्मानुभव न जगेगा। व्यवहारधर्म की प्रवृत्ति का मूड दूसरा होता है और आत्मानुभव की वृत्ति का मूड दूसरा होता है। कैसी व्यवहार से परे है यह आत्मानुभव की स्थिति?

व्यवहारधर्म का प्रयोजन आत्मानुभव की अपात्रता से बचाव रखना—आत्मानुभव की स्थिति व्यवहार से परे है, इसके मायने यह नहीं हैं कि जब व्यवहार का मार्ग बिल्कुल जुदा है व आत्मानुभव का मार्ग जुदा है और निश्चयनय का मार्ग आत्मानुभव में ले जाता है तो व्यवहार क्यों किया जाय? छोड़ दो। हाँ हाँ भाई छोड़ दो। कब छोड़ दो? जब इतनी पात्रता है कि हम सहजदृष्टि से स्वतंत्रता इतनी पा गए हों, इतना समर्थ हों कि हम आत्मानुभव में गर्त रहा करते हों, तो छोड़ोगे क्या, वह तो छूट ही जायगा, किन्तु जब तक आत्मानुभव की स्थिति नहीं पायी, तब तक आप कुछ करेंगे तो सही। मन, वचन, काय ये खाली न रहेंगे, इनकी प्रवृत्ति रहेगी, वह कैसी प्रवृत्ति रहेगी? आप कहेंगे कि आत्मानुभव करने के लिए धुन बन जाय, सोचा करें, यह प्रवृत्ति बन जायगी, बस यह ही व्यवहार धर्म है। आप कहेंगे कि उस आत्मानुभव की गाथा गाया करें, शास्त्र पढ़ें, पढ़ाये, अध्ययन करें, चर्चा करें, किसी भी प्रसंग के रूप में हम आत्मानुभव की गाथा बनाये रहें, बनाइये, यह ही तो व्यवहार धर्म है। शरीर से प्रवृत्ति क्या करेंगे? भाई जिन्होंने आत्मानुभव का फल पाया है उनकी वंदना करेंगे। जो आत्मानुभव के कार्य में लगे हैं उनकी सेवा करेंगे। करो, यह ही तो व्यवहार धर्म है। सब जीवों में हम उसी स्वरूप को निरखेंगे जैसा कि मैंने अपने में अनुभव किया है और उस स्वरूप को जब निरख लूंगा, सब जीवों में मैं उस चैतन्यस्वरूप को निरखूँगा

तो उसके प्रति आदर भी करेंगे वह फिर हिंसा कैसे कर सकेगा? हिंसा न करेगा, किसी को दुर्वचन न बोलेगा, दुर्व्यवहार न करेगा। हाँ तो करेगा ऐसा, यह ही तो व्यवहार धर्म है। तो व्यवहार धर्म आत्मानुभव के लिए पात्रता बनाये रखता है। कहीं यह उल्टा न हो जाय, व्यसनी न हो जाय, पापी न हो जाय, एकदम पतित न हो जाय, अज्ञान न आ जाय—इन सब बातों का बचाव व्यवहार धर्म करने से होता है। मगर आत्मानुभव की दशा में व्यवहार धर्म छूटकर एकमात्र शान्त सनातन सत्य कल्याणमय एक शुद्ध चित्प्रकाश अनुभव होता है। यह बात हो सकती है, इसका संकेत मिल रहा है इस कथन से कि प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है। जो पर्याय मिला है यह पर्याय मिट सकता है। अज्ञान दशा तो मिटेगी, ज्ञानदशा में आयगी। इस पर्याय को मिटाना दो उपायों से होता है एक तो व्यावहारिक और दूसरा नैश्चयिक। व्यावहारिक उपाय यह है कि बाह्यपदार्थों का सम्बन्ध यह हमारी ममता का कारण बनता है। इसका त्याग करें। नैश्चयिक उपाय यह है कि अपने आत्मा के उस ध्रुव चैतन्यस्वरूप को ज्ञान में लेना, मैं यह हूँ ।

परमार्थ पुरुषार्थ—कोई कठिन बात है क्या निज परिचय की? आप कुछ न कुछ अपने बारे में विचारते हैं कि नहीं कि मैं यह हूँ, मैं गृहस्थ हूँ, साधु हूँ, बाबू हूँ, श्रावक हूँ, उच्च कुली हूँ । रास्ते में जाते हैं और कुछ छोटी जाति के लोग जब वहाँ से निकलते हैं तो आप उन्हें छोटा मानकर उनसे बचकर चलते हैं, क्यों आप ऐसा करते हैं? इसलिए कि आपने अपने को भीतर में कुछ समझ रखा है कि मैं यह हूँ, और जब कोई अपनी पार्टी का दिख जाता है तो आप उसे अपनी ओर खींचते हैं, अपने पास बुलाकर अपने पास बैठाते हैं, आप उसका आदर करते हैं, बाकी और जीवों को आप उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, क्योंकि आपने कुछ समझ रखा है पर में कि मैं यह हूँ । निरन्तर यह ध्यान में रखते हैं कि मैं यह हूँ । मैं होने को कभी नहीं भूलते। बस जो मैं हूँ उसे नहीं भूलना है, किन्तु सही तो जानें कि मैं क्या हूं? जो-जो कल्पनायें की जाती हैं वे मैं नहीं हूँ । मैं सहज चैतन्यस्वभावमात्र हूँ, कैसा निस्तरंग, धीर, गम्भीर, उदार, शाश्वत, अनवरत, अन्तःप्रकाशमान ऐसा मैं चैतन्यस्वरूप हूँ, ऐसा मैं होने का बोध रहे, लगा रहे तो प्रतिक्षण कर्मनिर्जरा होती है। बडे-बड़े तपश्चरणों का तथ्य और है क्या? जिस किसी भी प्रकार इस अन्त:स्वरूप में रमण हो जाय। अगर तपश्चरण नहीं कर सकते, जो समझ में देखने में आता है—अनशन करना, ऊनोदर करना, रसत्याग, कायक्लेश, विविक्त शय्यासन आदिक नहीं बनता, उनके करने को समय नहीं मिलता और यह अन्तस्तत्त्व की दृष्टि दृढ़तया बन गई तो तपश्चरण का फल पा लिया। उसे तपश्चरण की क्या अनिवार्यता? इसके मायने यह नहीं कि तपश्चरण अनावश्यक हो गया। अनावश्यक भी है, आवश्यक भी है। जो परमार्थ पद में प्रविष्ट नहीं हैं उन्हें आवश्यक है और जो प्रविष्ट हैं, परम चैतन्यस्वरूप का अनुभव कर रहे हैं वे तो इस तपश्चरण से भी ऊँचा तपश्चरण कर रहे हैं, जिसे कहते हैं चैतन्यस्वरूप का प्रयत्न। यह स्थिति बने, बस इसके लिए समस्त प्रवचन हैं, आगम है, सम्बोधन है। वही शिक्षा हम को पदार्थों के स्वरूप के निर्णय में मिलती है।

द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टि से पदार्थ का परिचय—पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यवान है, द्रव्यस्वरूप से नहीं, पर्यायरूप से। द्रव्यस्वरूप से कैसा है? सत्स्वरूप अखण्ड अवक्तव्य। ओह ! उत्पादव्ययध्रौव्यवान होकर भी अखण्ड की दृष्टि में है यह जीव और अखण्ड होने पर भी उत्पादव्ययध्रौव्य की दृष्टि में है यह जीव। जो जीव उत्पादव्ययध्रौव्य की बात सुन रहा है, समझ रहा है वह अखण्ड होकर भी समझ रहा है, और जो अखण्ड की बात सुन रहा है, समझ रहा है, अखण्डस्वरूप में प्रवेश कर रहा है वह उत्पादव्ययध्रौव्यरूप से रहता हुआ ही प्रवेश कर रहा है, इन दो बातों में किसको असत्य कहा जाय? पदार्थ का स्वरूप सत्य है, उत्पादव्ययध्रौव्य यह सत्य है और अखण्ड है, यह असत्य है, यह नहीं कहा जा सकता। अखण्डता नहीं है तो उत्पादव्ययध्रौव्य न बनेगा और जहाँ उत्पादव्ययध्रौव्य नहीं हो रहा वहाँ अखण्ड तत्त्व ही नहीं। किसके

आश्रय में उत्पादव्ययध्रौव्य हो? तो ये दो किनारे जैसे वस्तु के होते ही हैं लाठी में या रस्सी में या अन्य चीजों में, ऐसे ही प्रत्येक पदार्थ में दो बातें होती ही हैं। पदार्थ द्रव्यरूप है, पदार्थ पर्यायरूप है, द्रव्यपर्यायात्मक वस्तु होती है। मेरा द्रव्यपर्याय मुझमें समाप्त है, मेरे से बाहर नहीं। प्रत्येक अणु मुझ से भिन्न है। कितना भिन्न? पूरा भिन्न। प्रत्येक परजीव मुझ से भिन्न है। कितना भिन्न? पूरा भिन्न। जो इस श्रद्धा में कमी रखेगा उसके सम्यक्त्व नहीं है। घर में रहने वाले जीव पुत्र पुत्री और-और सब ये जीव ये तो कुछ मेरे लगते हैं, ऐसी श्रद्धा में बात होगी तो वह अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, संसार में जन्ममरण की परम्परा बढ़ाने वाला है। हम राग न छोड़ सकें, यह बात तो क्षम्य है, पर श्रद्धा यदि ऐसी बनी है कि ये तो मेरे हैं, बाकी अन्य जीव मेरे कुछ नहीं, तो यह अक्षम्य अपराध हैं। इसका फल तो कुगतियों में जन्म मरण है। अज्ञान हटने के बाद जो राग रह जाता है उसमें तो बड़े-बड़े पुण्यबंध भी होते हैं, किन्तु अज्ञान रहते हुए यदि कुछ धार्मिक क्रियावों का भी राग चलता है तो वहाँ तो पापबंध होता है, मिथ्यात्व का असर विशेष होता है और आपके शुभ मन, वचन, काय की क्रियावों का तेज न होगा। भीतर देखो तो यह बात हम को यह द्रव्यस्वरूप का परिचय कराती है कि हम अज्ञानअवस्था में मत रहें। इस अवस्था को बदलकर ज्ञानअवस्था में आयें और अपने ध्रुवस्वरूप की दृष्टि बनावें।

गाथा १२

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविति।।१२।।

विस्तृत परिचय से प्रायोजनिक परिचय में स्पष्टता—पदार्थों के स्वरूप की कथनी चल रही है। हम आपको जो संसर्ग मिलता है उस संसर्ग में कभी सुख मानते, कभी दुःख मानते। सो संसर्ग सुख नहीं दे रहा, दुःख नहीं दे रहा, किन्तु अपने आपके जो ज्ञान विकल्प हो रहे हैं वस्तुस्वरूप के विपरीत, उनसे सुख और दुःख होता है, यह कैसे समझ में आये? इसके लिए, पदार्थों के स्वरूप का वर्णन किया गया है। बात तो थोड़ी ही है, मगर जानना पड़ेगा बहुत, तब वह थोड़ी जानकारी बनेगी। कोई कहे कि भेदविज्ञान करना है, जीव अलग है, शरीर अलग है, कुटुम्ब के लोग अलग हैं, मैं अलग हूँ, इतना जान ले तो बेड़ा पार हो जायगा। बात तो ठीक कह रहे, मगर इतनी जानकारी बनाने के लिए बहुत जानना होगा तब इतनी जानकारी बन पयेगी सही तरीके से । एक सेठ के यहाँ एक मुनीम था और कई पल्लेदार थे। तो मानो मुनीम को तो मिलते थे १००) रु० माहवार तनख्वाह के और मजदूरों को कोई ३०-३० रुपये माहवार मिलते थे। तो एक बार वे मजदूर सेठजी से बोले कि सेठजी आप तो हम लोगों के साथ बड़ा अन्याय कर रहे हैं। कैसे? देखिये—मुनीम जो बैठे-बैठे सिर्फ कलम चलाता रहता है, उसे तो आप १००) रु० माहवार वेतन देते हैं और हम लोग जो रात-दिन बड़ा बोझ ढोते हैं उन्हें सिर्फ ३०) रु० माहवार देते हैं, तो ऐसा क्यों? तो सेठ ने वहाँ सोचा कि इनको इस तरह से समझाने से समाधान न मिलेगा, कोई प्रयोगात्मक घटना बने तब इनको समाधान मिल पायगा। आखिर कुछ ही दिन बाद एक घटना घटी। क्या, कि सड़क पर कोई बारात खूब सज-धजकर जा रही थी तो वहाँ सेठ ने एक पल्लेदार को भेजा कि जावो जानकारी करके आवो कि सड़क पर क्या चीज जा रही है, तो पल्लेदार सड़क पर पहुंचा और पूछकर जान लिया कि बारात जा रही है तो झट वापिस आया और सेठजी से बताया कि बारात जा रही है, और कुछ विशेष विवरण वह न दे सका । उसके बाद मुनीम को भेजा उसी जानकारी के लिए। मुनीम पहुंचा सड़क पर, सब प्रकार की जानकारी कर लिया कि बारात कहां से आ रही है, कहाँ जा रही है, किसके यहाँ से आ रही है, किसके यहाँ जा रही है, कितने बजे फेरे पड़ेंगे, किस सवारी से आ रहे हैं आदि, और आकर सेठजी से सारा हाल कह सुनाया। तो सेठ ने सभी पल्लेदारों को बुलाकर समझाया कि देखो तुम लोगों में और मुनीम में इस बात का अन्तर है कि शब्द तो हमने उतने ही दोनों से कहे कि

जावो जानकारी करके आवो कि सड़क पर क्या जा रहा है, तो पल्लेदार ने तो सिर्फ इतना ही बताया कि बारात जा रही है और मुनीम ने सारी बात पूरे विवरण के साथ बताई, तो तुम दोनों में बुद्धि का अन्तर है। इस कारण तुम्हारी तनख्वाह में भिन्नता है। तो एक भेदविज्ञान करो, इतनी सी बात कह दिया कि द्रव्य भिन्न है, कोई किसी का कर्ता नहीं है, सब अपने-अपने में परिणमते हैं, बस ये बातें जरा करने लगे। दो-तीन दिन की कुल पढ़ाई है, भेदविज्ञान की बात करने के लिए। कौनसे शब्द हैं उन्हें रट लिया और बोलने लगे तो इतने से भेदविज्ञान स्पष्ट आ पाया क्या समझ में? उसके लिए पदार्थों का स्वरूप विस्तारपूर्वक जानना होगा तब इतनी बात समझ में आयगी कि प्रत्येक पदार्थ एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न है। अभी किसी का झगड़ा घर में ही हो रहा हो भाई-भाई में या पड़ोसी में हो रहा हो और कोई कहे कि देखना, क्या बात है? तो एक व्यक्ति पहुंचा तो वह यह जानकारी करके आया कि भाई-भाई में लड़ाई हो रही है, और कुछ न बता सका, और दूसरा व्यक्ति पहुंचा तो वह सब जानकारी कर आया कि भाई-भाई में लड़ाई हो रही है, किस बात की लड़ाई है, कौन अन्याय कर रहा है, किसका पक्ष सही है आदि। तो इसी तरह समझो कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से अत्यन्त भिन्न है। मैं आत्मा शरीर के अणु-अणु से अत्यंत भिन्न हूँ । मैं आत्मा अपने आपके सहजचैतन्यस्वरूप में हूँ, यह बात कब समझ में आयगी जब तक कि पदार्थ के स्वरूप का विस्तार के साथ परिचय पाये।

सयुक्तिक विस्तृत परिचय और वैराग्यभाव में भेदविज्ञान का सही परिचय—विस्तार से वर्णन भी सुन लिया, समझ लिया, इतने पर भी वैराग्य परिणति हो तो समझ में आयगा कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से अत्यन्त भिन्न है। यह समझ किस प्रकार होती है? तो उसके लिए प्रथमानुयोग का स्वाध्याय करें, करणानुयोग का स्वाध्याय करें, करणानुयोग से जब लोक का, काल का बहुत वर्णन मनन में आये, ऊँची-ऊँची बातें कर्मों की सब मनन में आयें तो कई वजह हैं, ऐसी कि जिन कारणों से इसके वैराग्य बढ़ता है, आचार्यों के प्रति भक्ति बढ़ती है, वे जो कह रहे सो सही है ऐसा भान होता है, ये सब बातें वैराग्य की मजबूत करने वाली हैं। प्रथमानुयोग में बड़े पुरुषों का चरित्र समझें, उसके अनुसार अपनी बुद्धि बने, अपने में वैराग्य भाव बढ़े तब कहियेगा कि इसने भेदविज्ञान को अब समझा। अब समझ लो कितना पौरुष चाहिए कि हम आपके भेद विज्ञान बने, उसी सिलसिले में यह पदार्थों के स्वरूप के विस्तार की चर्चा चल रही है। कोई भी काम हो, जी जान लगाकर करें तब उसमें सफलता मिलती है। इतना तो समझ ही रहे ना। आप दूकान करते हैं तो खूब उपयोग लगाकर, मेहनत करके, कष्ट उठाकर सब तरह के व्यवहार बनाकर चलना होता है, उसके लिए साहस है, उसके लिए संकल्प है, और मोक्ष का काम कितना महान है, कितना महत्त्वपूर्ण है कि हो जाय तो सदा के लिए संकट मिटे। तो मोक्ष क्या है? अपने आपका जो विविक्त सहज चैतन्यस्वरूप है वह यथावत रह जाय, यही तो मोक्ष है। यह पाया जिन्होंने उन्हें अनन्तआनन्द, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति प्राप्त होती है, और मोक्षमार्ग के पाने के प्रसंग में इतना महत्त्वपूर्ण कार्य है कि इसके लिए तन लगे, मन लगे, धन लगे, वचन लगें, प्राण लगें, सब कुछ लगने पर भी यदि ज्ञान में अपने आपके सहजज्ञानस्वरूप का अनुभव बने तो बस बेड़ा पार है, ये सब बातें पदार्थों के स्वरूप की जानकारी में मिलेंगी।

पदार्थों की अखण्डद्रव्यपर्यायमयता—सत् में द्रव्य और पर्याय, दो बातें तो माननी पड़ेगी ही। चीज है, सदाकाल रहती है, अच्छा यह बात तो मान ली, पर उसकी अवस्थायें भी बनती रहती हैं। पर्यायें बनती रहती हैं, यह भी बात है कि नहीं। इसी बात को इस गाथा में स्पष्ट किया है कि पर्याय से रहित द्रव्य नहीं, द्रव्य से रहित पर्याय नहीं, इस प्रसंग में एक बात और समझना, बहुत ऊँचे अभेददृष्टि के ख्याल से बढ़कर चले तो एक बार गुणों को तो मना कर सकते हो, गुण नहीं, और मना करके उसके एवज में क्या

जाने? स्वभाव। और गुण क्या है कि स्वभाव है वस्तु में अभेददृष्टि से परखा जाने वाला एक अभिन्न लक्षण और गुण है, उसी स्वभाव को समझने के लिए उस स्वभाव के भेददृष्टि से अनेक खण्ड कर देना। खण्ड न करना, मत करें द्रव्य है, स्वभाव है उसका। इतना तो मानना ही होगा। इतना माने बिना तो आगे न बढ़ सकेंगे और साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि प्रत्येक समय में द्रव्य की कोई न कोई अवस्था रहती है, उसका नाम है पर्याय। अब इस पर्याय को कोई विशेष न जाने तो परिणमन है सामान्य परिणमन, इतना तो मानना ही होगा और जो एक परिणमन है वह अवक्तव्य परिणमन है, जिस दृष्टि में गुणों को स्वीकार नहीं किया। हमें न चाहिए भेद दर्शन, हम अभेददृष्टि से चलकर अपने में परखेंगे, पर का द्रव्य अभेद है, अवक्तव्य है, अखण्ड है, हाँ ठीक समझ गए, पर पर्याय बिना नहीं है कुछ। वह पर्याय भी अवक्तव्य अखण्ड अभेद, यों निरखा जायगा। पर्याय में विशेष तब निरखा जायगा जब गुण मानकर चले। यह अमुक पर्याय है, यह अमुक पर्याय है, यह बात तब कह सकेंगे जब गुण मानकर चलें। हम गुण नहीं मान रहे, हमारी दृष्टि अभेद है, इस द्रव्य और स्वभाव को समझ रहे हैं अखण्ड अवक्तव्य। तो पर्याय को अखण्ड अवक्तव्य मानना होगा हर समय। प्रतिसमय वस्तु में प्रत्येक अखण्ड है, अवक्तव्य है। अगर कुछ बताया जा रहा है तो पूरी बात नहीं कही जा रही, अंश कहा जा रहा। जीव की इस समय भीतर में क्या अवस्था बन रही? उसका पूरा विवरण आप दे सकेंगे क्या? नहीं दे सकते। वह अवक्तव्य है, अखण्ड है याने तिर्यक् खण्ड भी नहीं है, और जब यह कहते कि वाह क्रोध है, मान है, लोभ है, शान्ति, समाधि, ज्ञान दृष्टि लगन ये सब हो रहे हैं, तो इनमें से कोई भी आप एक बात कहें वर्तमान अवस्था की, उसमें से एक अंश ही तो आपने बताया। तो इतना तो मानना ही पड़ेगा—द्रव्य और पर्याय, गुण को छोड़ दो, उसकी चर्चा न करें, पर अखण्ड कोई वस्तु है शाश्वत और उसका प्रतिसमय परिणमन है, वह परिणमन अभेद है, अखण्ड है, इन्हीं दो की चर्चा चल रही है कि पदार्थ द्रव्यपर्यायात्मक है। द्रव्य से रहित पर्याय कुछ होती ही नहीं, पर्याय से रहित द्रव्य कुछ होता ही नहीं।

दृष्टान्तपूर्वक द्रव्य व पर्याय की अविनाभाविता का निरीक्षण—दृष्टान्त लो गोरस, मायने गाय का जो निकला हुआ दूध है वही दही बन गया, घी बन गया, मावा बन गया, छेना बन गया, जो-जो भी बना, यह बताओ कि उन सब अवस्थाओं में गोरस होता कि नहीं? आप घी दिखाओ, दही लावो, लेकिन गोरस न होना चाहिए। तो क्या आप ला सकेंगे? न ला सकेंगे, क्योंकि गोरस तो उन सब अवस्थाओं से व्यापक है। दूध है तो गोरस, दही बना तो गोरस, मट्ठा बना तो गोरस, गोरस बिना इनमें से कुछ भी नहीं है। न दूध मिलेगा, न दही। तो गोरस से रहित दूध दही कहीं मिलेगा क्या? न मिलेगा। और दूध, दही, घी, छाछ, छेना, मावा आदिक इनके बिना गोरस आपको कहीं दिखेगा क्या? न दिखेगा। आप सोना चांदी में यह घटना ले लो। स्वर्ण द्रव्य के बिना डला, बिस्कुट, अंगूठी, करधनी आदिक सारी पर्यायों के नाम ले लो। ये सब मिलेंगे क्या? न मिलेंगे। और इन सबके बिना स्वर्ण मिलेगा क्या? कोई कहे कि देखो न तो पिण्ड लाना, न कोई आभूषण लाना, सिर्फ सोना लाना, तो वह ला सकेगा क्या? नहीं ला सकता। स्वर्ण द्रव्य बिना ये अलंकार आदिक नहीं और अलंकार आदिक के बिना स्वर्ण द्रव्य नहीं है। स्वर्ण द्रव्य हो तो कोई न कोई अवस्था में होगा। है अवस्था जरूर तो कोई वस्तु की ही तो अवस्था है। इस प्रकार द्रव्य बिना पर्याय नहीं, पर्याय बिना द्रव्य नहीं। ये दोनों ऐसे अनन्यभूत हैं।

वस्तुस्वरूप के परिचय से भेदविज्ञानी की शिक्षा—बात क्या समझनी है कि जो भी वस्तु है वह द्रव्यपर्यायरूप है। सो अपने द्रव्यपर्यायरूप है। मुझ में उसका कुछ नहीं, मैं जो हूँ सो अपने द्रव्यपर्यायरूप हूँ । मेरा अन्य में कुछ नहीं। अब तत्त्व ज्ञान बने और वैराग्य की बढ़वारी बने ये दो ही इस जीव के रक्षक हैं। ये दो बातें न हों तो जीव की कहीं रक्षा नहीं है। झगड़ा-फसाद, लड़ाई आपत्तियां ये नारकीय लीला जहाँ भी हो, जिस घर में हो, जो करने वाला हो, उसका आधार क्या है? वस्तुस्वरूप का ज्ञान

नहीं। स्वपर का भान नहीं, सो यह सब गड़बड़ी चल रही। निज को निज पर को पर जान, यह बात नहीं है वहाँ विसम्वाद है। तो सर्व पदार्थ पृथक्-पृथक् है, यह बात कब स्पष्ट झलकी? जब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव गुण पर्याय सब नजरों से यह ज्ञान होगा कि प्रत्येक वस्तु अपने आपके स्वक्षेत्र में है और उसमें ही उसकी सारी फैक्टरी है, उससे बाहर मेरा कुछ नहीं है। वस्तु के सहज स्वातन्त्र्य के ज्ञाता को मिलेगा तत्त्वज्ञान।

निर्वाध हितयात्रा का साधन प्रभुशासनप्रदीप—देखो इस जीवन में क्लेश के गड्ढे बहुत खुदे हैं, एक यात्रा हो रही है अपनी याने समय गुजर रहा और समय-समय में हम पग बढ़ा रहे हैं, परिणमन तो हो ही रहा ना, यही है हमारी यात्रा। इस यात्रा के पथ में जगह-जगह गहरे-गहरे क्लेशों के गड्ढे खुदे हुए हैं। एक तो यह आपत्ति, दूसरे अज्ञान पाप का अंधकार फैला हुआ है। अब लौकिक उदाहरण ले लो कि आपको कहीं बाहर जाना है और अंधेरी रात है, और जिस मार्ग से जाना है उसमें बड़े-बड़े गड्ढे जगह-जगह खुदे हैं, जाना तो आपको पड़ेगा, ऐसी मजबूरी में तो अच्छी तरह आप जा सकें, इसके लिए आप लोगों को कोई उपाय समझ में आया कि नहीं? आप जा सकते हैं किस उपाय से? हाथ में दीपक ले लो, बस बेधड़क चले जावोगे। एक ही तो उपाय है, अगर कठिन उपाय हो तो चिन्ता करो, क्यों चिंता करते, एक ही सीधी बात है—हाथ में दीपक लो और पार कर जावो उस रास्ते को। इसी तरह हम आपके इस जीवन पथ में बड़े-बड़े कष्ट के गड्ढे खुदे हैं। वस्तुत: अब भी कष्ट की कोई बात भी है क्या? अच्छी तरह बैठे हैं, स्वस्थ भी हैं, सारी बात है, मन में कल्पना जगी तो कष्ट हो गया। कोई छोटा बच्चा है, आपके पास बैठा है, आप उसे अपनी गोद में बैठाये हैं, उसे चिपटाये भी हैं, कोई चीज वह बच्चा मांगे तो आप उसे देने को तैयार हैं, खाना माँगे तो खाना तैयार है खिलौना माँगे तो खिलौना तैयार है। खेल भी रहा है, अब उस बच्चे के मन में आ जाय कि घर जाना है और आप नहीं उसे घर लिए जा रहे तो वह बच्चा बड़ा कष्ट मानता है, रोता है। बताओ उसे किस बात का कष्ट है? कोई उसे मारपीट नहीं रहा, कोई कुछ कह नहीं रहा फिर उसे कष्ट किस बात का? बस दु:ख है उसकी कल्पना का, अज्ञानता का । तो जैसी बात उन बालकों की है, ऐसी ही बात हम आप सबकी है। कोई कष्ट नहीं है, आनन्द है। दो रोटियाँ खाने को मिल ही जातीं, तन ढकने को कपड़े मिल ही जाते, सब सुविधा है, सारी बात है, मगर कल्पना जगी तो सब कुछ रहते हुए भी आनन्द तो पाया नहीं। कष्ट ही मिला। कल्पना जगी, उसकी और दृष्टि बनी जो कल्पना में आया और वर्तमान में जो सुख-सुविधा साधन हैं उनका सब खातमा हो गया। तो क्लेश के गड्ढे कितने खुदे हैं जीवन पथ में और इसके अतिरिक्त पाप अज्ञान का अंधकार छाया हुआ है, कुछ नहीं सूझता, ऐसी विकट परिस्थिति में आप अपना भविष्य ठीक बना सकते हैं क्या? कोई उपाय है क्या आपके पास? उस लौकिक गमन का तो उपाय मिल गया था, वहाँ तो दीपक आप ले लेंगे, पर बतलाओ इस जीवन पथ में जो क्लेशों के गड्ढे खुदे हैं, अज्ञान और पाप का अंधकार छाया है, कुछ सूझ नहीं रहा है, ऐसी हालत में कोई उपाय है आपके पास क्या कि आपकी यात्रा अच्छी बने और आपको सुख शान्ति संतोष हो? उसका उपाय यह है कि जिनवाणी रूपी रत्न का दीपक तत्त्वज्ञान आप हाथ में ले लें, पदार्थ का सही-सही बोध उस ज्ञान को लेकर चले तो कहीं आपको कष्ट नहीं। सारे काम आप अच्छी तरह निभा लेंगे।

औपाधिक माया से हटकर परमार्थ सहज चित्प्रकाश में आने की भावना—सकल संकटहारी एक मौलिक ज्ञान की बात चल रही है। भेदविज्ञान कैसे बने? अज्ञानअंधकार से हटकर ज्ञानप्रकाश में कैसे आये? करें प्रार्थना, किससे? भगवान से । किस भगवान से? अंतर्भगवान से । क्या करें? तमसो मा ज्योतिर्गमय, हे अन्तर्नाथ ! मुझ को अंधकार से तो दूर करो और ज्योति में ला दो। इस अन्तर्नाथ का मायारूप जो परिणाम है वह अंधकार है और सहजस्वभावरूप जो भाव है वह परमप्रकाश है। इस ही प्रभु

की माया और इस ही प्रभु का ब्रह्मस्वरूप है। माया से हटाकर इस ब्रह्मस्वरूप में ले जावो। यह कब प्रेरणा मिलेगी? कैसे इस और हमारी गति चलेगी? तत्त्वज्ञान से । वह तत्त्वज्ञान है इस जिनवचन में । पदार्थ के स्वरूप के सम्बंध में कहा जा रहा है कि जो है वह द्रव्यपर्यायात्मक है। द्रव्य नहीं तो पर्याय नहीं और पर्याय नहीं तो द्रव्य नहीं। ऐसा समस्त पदार्थों का स्वरूप निश्चित हो रहा है ताकि यह स्पष्ट रहे कि प्रत्येक पदार्थ अन्य समस्त प्रत्येक पदार्थों से अत्यन्त जुदा है। यह बात तब ही तो मालूम पड़ेगी जब उनका वह गठित स्वरूप हमारी दृष्टि में आये। टोकरी में १० फल रखे हैं तो आपने १० फल कैसे जान लिया? प्रत्येक फल का अपना-अपना गठित स्वरूप खुद ही में है, दूसरे में नहीं। तब आपने १० जान लिया। एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न हैं तब ही तो बनी समझ। तो ऐसे ही प्रत्येक जीव का, प्रत्येक अणु का, प्रत्येक पदार्थ का द्रव्यपर्यायात्मक स्वरूप है। दृष्टि में हो तो यह ध्यान में जगेगा कि प्रत्येक पदार्थ अन्य समस्त पदार्थों से जुदा है।

पर्यायरहित, द्रव्य को तथा द्रव्य रहित मात्र पर्याय को मानने वालों के सिद्धान्त की शोधना—प्रकरण यह चल रहा है कि पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता और द्रव्य से रहित पर्याय नहीं होती। इस बात को सुनकर यह शंका रख सकते हैं कि क्या कोई ऐसा भी पुरुष हुआ जो यह मानता हो कि पर्याय से रहित द्रव्य है और द्रव्य से रहित पर्याय है? जब कोई इस विचार के लोग हों तब तो यह बात कहना भला है, अन्यथा कहने का क्या अर्थ है? सो यह शंका ठीक है। उत्तर यह है कि हाँ, हैं ऐसे लोग जो पर्याय से रहित द्रव्य मानते हैं और द्रव्य से रहित पर्याय मानते हैं। मायने बात दो हैं ना—तीन काल रहने वाली वस्तु और उसकी अवस्था। हर जगह घटा लो। कोई भी अगर पदार्थ है तो वहाँ दो बातें आप समझेंगे—तीन काल में रहने वाला पदार्थ और उसकी अवस्था। तो कोई दार्शनिक ऐसे हैं कि तीनों काल रहने वाला पदार्थ तो मानते हैं, पर अवस्था नहीं मानते। अवस्था कोई होती ही नहीं। ऐसे कौन लोग हैं? नित्य एकान्तवादी, ब्रह्मवादी, जो कहते हैं कि है एक ब्रह्म, पर वह परिणमता नहीं है। परिणमन जो है, यह प्रकृति की चीज है। सांख्य भी यही कहते हैं। तो कुछ दार्शनिक हैं ऐसे कि जो पर्याय रहित द्रव्य मानते हैं और कुछ लोग ऐसे हैं कि जो द्रव्य रहित पर्याय मानते हैं याने तीनकाल में रहने वाली वस्तु कोई नहीं होती। जो कुछ है सो तुरन्त पैदा हुआ और तुरन्त मिट गया। अब समय-समय में जो-जो बात सामने आयी, बस वह एकदम आ गया। उसका कोई लगार पहले न था, वस्तु ही न थी, वह तो नई वस्तु उत्पन्न हुई है और उत्पन्न होते ही मिट जाती है। ऐसे वे लोग कौन हैं? क्षणिक एकान्त वाले। तो ऐसे अभिप्राय के लोग हैं और जो प्रकट नहीं हैं अन्य दार्शनिक रूप में ऐसे जैनधर्म के ही शासन में चलते हों उनका भी कभी-कभी ख्याल हो सकता किसी के, इसलिए कुन्दकुन्दाचार्य ने गाथा में यह बताया कि पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता और द्रव्य रहित पर्याय नहीं होती। तो क्या है? जो है वह द्रव्यपर्यायात्मक है, द्रव्य से पर्याय अनन्यभूत है, अलग नहीं है। वही एक पदार्थ परिणमता हुआ चला जा रहा है अब तक। किसी भी भाषा में समझ लो—इस तरह पर्याय और द्रव्य में भेद नहीं। तो जैसे इस गाथा में बताया कि द्रव्य और पर्याय में भेद नहीं, ऐसे ही अगली गाथा में कह रहे हैं कि द्रव्य और गुण में भेद नहीं।

गाथा १३

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।
अव्विदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा।।१३।।

द्रव्य और गुण का तादात्म्य और अविनाभाव—द्रव्य के बिना गुण नहीं होते, इसी प्रकार गुणों के बिना द्रव्य सम्भव नहीं। यों द्रव्य और गुण में परस्पर अभेद है। बात क्या कही जा रही है? दो बातें—द्रव्य और गुण। द्रव्य क्या कहलाता है? अखण्ड वस्तु, पूर्ण वस्तु जो त्रिकाल रहता है। अनादि से अनन्तकाल तक है, ऐसे वस्तु को कहते हैं द्रव्य। अब जो भी द्रव्य है उसका कोई न कोई स्वरूप जरूर है। स्वरूप न

हो तो उसका अभाव हो जायगा। तो जो स्वरूप है वही स्वभाव है। तो द्रव्य अनादि अनन्त है। उसका स्वभाव अनादि अनन्त है। अब उस स्वभाव को पहिचानने के लिए भेददृष्टि से गुण भेद करके बताया जा रहा है। जैसे आत्मा चित्स्वरूप है, बस बात समाप्त। इसके आगे अब गाड़ी नहीं चल रही। इतने से तो कोई समझा नहीं, गाड़ी तो चलानी पड़ेगी अन्यथा तत्त्व ही न समझा जा पायगा। तो लो अब व्यवहारनय से उस स्वभाव में भेद करके समझाया जा रहा है। जहाँ स्वभाव में भेद किया और भेद करके जो समझ में आया उसका नाम गुण है। देखो यह गुण समझाया तो गया भेददृष्टि से, किन्तु असत्य नहीं है। जिस प्रकार बताया है उस प्रकार से वस्तु तक पहुंचा जाता है। अगर कोई बात असत्य हो तो उसके सहारे सत्य पर कहाँ पहुंच जायेंगे, उस अखण्ड वस्तु तक कैसे पहुंच जायेंगे? इसलिए एक स्वभाव के भेद करके गुण बताये गए कि वे गुण भी अनादि अनन्त हैं।

अब यहाँ द्रव्य और गुणों की परस्पर चर्चा है। द्रव्य के बिना गुण नहीं, गुण के बिना द्रव्य नहीं। जैसे कोई समझ लो पुद्गल द्रव्य का दृष्टान्त लो—पुद्गल परमाणु का लक्षण क्या है? रूप, रस, गंध, स्पर्श। पुद्गल का लक्षण जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हो। पुद्गल द्रव्य न हो तो रूप, रस, गंध, स्पर्श कहाँ से होगा? रूप, रस, गंध, स्पर्श न हो तो पुद्गल द्रव्य कहाँ से होगा? और दृष्टान्त लो जीव द्रव्य और उसके गुण क्या हैं? ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द वगैरह। अगर एक जीव पदार्थ नहीं है तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी कहां से हो? अगर दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदिक नहीं हैं तो जीव द्रव्य भी नहीं रह सकता। क्या है कोई ऐसा द्रव्य जो गुणरहित हो, जिसमें साधारण असाधारण कोई भी गुण न हो? मायने न अस्तित्व है, न वस्तुत्व है, न द्रव्यत्व है न कोई असाधारण है। पदार्थ हो जाय तो कभी नहीं हो सकता। तो क्या निष्कर्ष निकला? द्रव्य के बिना गुण सम्भव नहीं और गुणों के बिना द्रव्य सम्भव नहीं। जैसे कोई फल खरीदा तो उसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श चारों हैं कि नहीं? चारों हैं। फल न हो तो ये चारों हैं क्या? नहीं हैं। ये चारों न हों और कोई ऐसा फल लाकर दिखाओ जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श कुछ न हो। चलो बाजार से आज ऐसा कोई अनहोना फल लाकर दिखाओ। कैसा फल चाहिए, जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये कुछ न हों। ऐसा कोई आर्डर दे सकेगा? हाँ दे सकेगा। कंजूस (हँसी) तो द्रव्य के बिना गुण नहीं और गुण के बिना द्रव्य नहीं। तो द्रव्य गुण ये कोई ऐसे भिन्न-भिन्न नहीं हैं जो अलग-अलग पड़े हों । है बात एक ही, तदात्मक है। गुणमय ही द्रव्य है, मगर अपेक्षा के वश से उनमें भेद किए जाते हैं। तो भेद तो कर दिया कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदिक गुण हैं और द्रव्य बता दिया, पर उनका अस्तित्व तो एक ही है। ऐसा नहीं कि द्रव्य अलग सत् है, गुण अलग सत् है। इसलिए वास्तव में द्रव्य और गुण में भेद नहीं, किन्तु अभेद है।

द्रव्य और गुण को स्वतंत्र-स्वतंत्र पदार्थ की मान्यता की शोधना—उक्त वार्ता को सुनकर यह सोचा जा सकता है कि यह कैसे समझें कि द्रव्य के बिना गुण नहीं होते और गुण के बिना द्रव्य नहीं होते? क्या कोई आदमी ऐसे भी हैं जो ऐसा मानते हों कि द्रव्य के बिना ही गुण हो जाते हैं और गुणों के बिना ही द्रव्य हो जाते हैं? यहाँ गुण और द्रव्य का अर्थ धन का न लेना याने कमाने की कुशलता हो तो उसे कह लो गुण और धन कमाये उसे कह लो द्रव्य, और उसकी पुष्टि में कुछ एक उदाहरण लौकिक दे दो। 'सर्वेगुणा: कांचनमाश्रयन्ति।' सारे गुण धन का आश्रय करते हैं, तो ये तो सब लौकिक मोहियों की बातें हैं। यहाँ गुण के मायने हैं पदार्थों में रहने वाली अनादि अनन्त शक्तियाँ और द्रव्य के मायने हैं एक अखण्ड वस्तु। देखो द्रव्य के बिना गुण नहीं होता और गुण के बिना द्रव्य नहीं होते। तो यह आशंका हुई ना कि क्या कोई लोग ऐसे भी होते जो द्रव्य के बिना ही गुण मान लेते। खाली गुण है द्रव्य कुछ नहीं, पदार्थ कुछ नहीं, और कोई ऐसे भी दार्शनिक हैं क्या कि जो गुण के बिना द्रव्य मान ले? खाली द्रव्य है, पदार्थ

है गुण आदिक कुछ नहीं। हाँ, हैं ऐसे दार्शनिक जिनमें मुख्य है मीमांसक। उन्होंने ७ पदार्थ माने हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। ये ६ तो भावात्मक हैं और एक है अभाव नाम का पदार्थ, जो अभावात्मक है। तो पदार्थ तो वह ही कहलाता जो स्वतंत्र है। कोई किसी के अधीन नहीं। तो द्रव्य, गुण ये स्वतंत्र हैं ना? गुण की सत्ता अलग है, द्रव्य की सत्ता अलग है मीमांसकों के यहाँ, पर वस्तुतः ऐसा है नहीं, फिर मानने क्यों लगे ऐसा? भाई बुद्धि ही तो है, बुद्धि तो एक में भी बहुत भेद कर देती है। जैसे एक पुद्गल द्रव्य है, उसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श समझ में आ रहे हैं, रूप समझ में खूब आ रहा कि इस पुद्गल में रूप है और बल्कि जिस समय रूप समझ में आ रहा, उस समय रस, गंध, स्पर्श ये समझ में नहीं आ रहे। दूर चीज है, भीत है, उसका रूप तो समझ में आ रहा, पर रस, गंध, स्पर्श ये समझ में नहीं आते। जब ऐसी स्थितियां होती हैं लोगों की तो क्यों न वे इस बात पर अड़ जायें कि रूप अलग चीज है, रस अलग चीज है गंध अलग है, स्पर्श अलग है, वह भीत अलग है, ऐसा कोई मनचला सोच नहीं सकता क्या? जब इन बातों का जुदा-जुदा करके ज्ञान बन रहा है तो ऐसा सोचने में क्या दिक्कत? तो भले ही सोच तो डाले वे, पर वास्तविकता नहीं समझे। अरे वह चीज एक ही है, आम एक ही है, उसका जब रसना इन्द्रिय द्वारा परिचय किया तो रस समझ में आया, और घ्राण द्वारा परिचय किया तो गंध समझ में आया, छूकर समझा तो स्पर्श समझ में आया और देखकर समझा तो रूप समझ में आया, पर ये रूप,रस, गंध, स्पर्श अलग-अलग हों सो बात नही। आप कहेंगे कि हमें क्यों ज्यादा समझाते? सब जानते हैं कि रूप, रस, गंध, स्पर्श अलग नहीं होते, एक ही आधार है, एक ही प्रदेश है वस्तु में, पुद्गल में, कहीं ऐसा नहीं है कि इस हिस्से में तो रूप है, इसमें रस है, क्या है ऐसा? आम के एक हिस्से में रूप हो और आगे पीछे रस हो, क्या ऐसा है? ऐसी बात नहीं है। जहाँ डंठल होता है ठीक उस जगह रस तो नहीं होता तब ही तो लोग उस आम को मसक कर डंठल वाली जगह से कुछ पानी सा निकाल देते हैं, फिर चूसते हैं। अरे तो उसमें मीठा रस नहीं हैं तो न सही, मगर रस तो है। चाहे कैसा ही हो।

गुणों में भी गुणों को स्वतंत्र-स्वतंत्र मानने की मान्यता का शोधन—रूप, रस, गंध, स्पर्श पुद्गलों के उसी प्रदेश में है चारों के चारों, फिर क्यों समझा रहे? क्यों कोई लोग ऐसे हैं कि रूप, रस, गंध, स्पर्श को एक जगह न मानते हों, अलग-अलग मानते हों और यहाँ परस्पर भिन्न-भिन्न हों, क्या कोई लोग हैं ऐसे? हैं, तब ही तो समझाना पड़ता है, निरंशवादी, जिसका एक भेद बौद्ध भी है। निरंशवादियों के सिद्धान्त में यह बताया है कि रूपक्षण पूर्ण वस्तु है, किसी की अपेक्षा नहीं करता। रसक्षण अलग वस्तु है, गंधक्षण अलग वस्तु है, स्पर्शक्षण अलग वस्तु है, और इतना ही नही, नीलक्षण, पीतक्षण, रक्तक्षण, रंगों में भी जितने भेद हैं वे इतने ही स्वतंत्र-स्वतंत्र अलग-अलग पदार्थ हैं। तब ही तो समझाने की जरूरत पड़ती है कि ये रूप, रस आदिक भिन्न-भिन्न नहीं, किन्तु एक ही अखण्ड द्रव्य के गुण हैं, ऐसी ही बात जीव में लगा लो। जीव में ज्ञान, दर्शन, सुख दुःख, आनन्द ये क्या अलग-अलग हैं? एक ही जगह हैं। कहीं उपाधि के सम्बन्ध से सुख दुःख हों, उपाधि का सम्बन्ध नहीं तो आनन्द हो गया। कैसे ही हो, चाहे विभाव हो, चाहे स्वभाव हो, रहता तो जीव के प्रदेशों में ही ना? भिन्न-भिन्न कहाँ? अच्छा तो कोई लोग है क्या ऐसे जो ज्ञान को अलग मानते हों, सुख दुःख को अलग मानते हों, आनन्द इच्छा को अलग मानते हों? हाँ, हैं। नैयायिक सिद्धान्त है ऐसा जो ये अलग-अलग चीज मानते हैं और भी हैं। जैनों में भी कुछ लोग ऐसे ही ख्याल के हो सकते हैं। तो बात यह बतलायी जा रही है कि जितने गुण हैं वे गुण अलग-अलग कुछ नहीं हैं, एक ही अस्तित्व में हैं, एक ही आधार में हैं, वह आधार है द्रव्य का । द्रव्य के बिना गुण नहीं और गुण के बिना द्रव्य नहीं, क्योंकि द्रव्य गुणों में अभिन्नता का भाव है। व्यतिरेक कुछ नहीं है, इसलिए द्रव्यगुण में चूंकि ये अभिन्न सत्व से निष्पन्न हैं, सत्ता इनकी न्यारी-न्यारी नहीं है, इस कारण इनमें अभेद

है। द्रव्य और गुण ये अभिन्न प्रदेश में निष्पन्न हैं। द्रव्य के प्रदेश अलग, गुण के प्रदेश अलग, ऐसा नहीं है, इस कारण से इनमें भिन्नता नहीं। द्रव्य का और गुण का एक ही काल है। जब से द्रव्य है, जब तक द्रव्य है तब ही से गुण है, तब ही तक गुण है। सा शाश्वत एक क्षण की भी लहुराई, जेठाई (छोटा, बड़ा) पन नहीं है। सब सहजात हैं, एक ही रूप है। तो एक ही काल में इन सबका उत्पादव्ययध्रौव्य सब कुछ एक ही साथ एक ही प्रदेश में होता है। इस कारण द्रव्य गुण अभिन्न है और एक ही स्वरूप है। तो यों द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से द्रव्य और गुणों में अभेद है। इस कारण से ये भिन्न-भिन्न नहीं हैं। अच्छा, यह वस्तु तथ्य तो जाना जा रहा है, पर ऐसा सब कुछ जानकर हम को शिक्षा क्या मिलती है कि अपने आपके द्रव्य को देखो। मैं आत्मा द्रव्य हूँ, निरन्तर परिणमता रहता हूँ,अपना कोई स्वभाव रख रहा हू, उस ही स्वभाव में इसमें परिणमन चल रहा। उस स्वभाव के भेद करें। अनन्त गुण हैं, उन गुणों का, स्वभाव का जो सही परिणमन होना चाहिए याने अपने आप अपने ही सत्त्व से पर की अपेक्षा बिना, पर के सम्बन्ध बिना जो उसकी हालत होनी चाहिए वह हालत है निर्विकार, शुद्ध आत्मद्रव्य। जिसे कह लो सिद्धभगवान। उनमें लगा लो द्रव्य गुण पर्याय, सब एक रस रहते हैं और वहाँ द्रव्य, गुण पर्याय को समझना कुछ कठिन है वनिस्वत हम आपके द्रव्यगुणपर्याय के। हम अपनी पर्याय में जल्दी क्यों समझ लेते हैं कि हमारे ये सब उल्टे-उल्टे हैं। देव, नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, क्रोध, मान, माया, लोभ, झट समझ में आ जाता है कि परिणम रहा है यह जीव। सिद्ध की बात नहीं समझ में आती जल्दी कि वे परिणम रहे हैं, क्योंकि वहाँ विषमता तो नहीं है। कोई दूसरी चीज डबल पड़ी हो किसी चीज में, जैसे गेहूं में चने मिले हैं तो बड़ी जल्दी समझ में आता है क्योंकि ये भिन्न चीज हैं। ये पड़े हैं, दूर से ही देख लिया। तो वह भगवान एक रस हैं, द्रव्य गुण पर्याय सब एक तन्मय हैं, वह अवस्था प्राप्त है। वहाँ ही अनन्त आनन्द है। विषमता में लाभ नहीं तो वह चीज प्राप्त कैसे हो? वह शुद्धस्वरूप हम को कैसे मिल जाय? शुद्ध का ध्यान करें तो शुद्धस्वरूप मिल जायगा। अशुद्ध का ध्यान करेंगे तो अशुद्ध ही अशुद्ध बने रहेंगे।

शुद्ध अंतस्तत्त्व की आराध्यता—जिसको शुद्ध बनना है उसको जरूरत है कि शुद्ध का ध्यान करे। अब देखो शुद्ध का कहां ध्यान करना? जो अरहंत सिद्ध भगवान हैं वे शुद्ध हैं ना? उनका ध्यान करने से मिल जायगा क्या मोक्ष? आप लोग कहेंगे कि हाँ मिल जायगा मोक्ष, क्योंकि श्रद्धा बनी है ना, मगर न मिलेगा। देखिये यह बात सुनकर घबड़ाना नहीं। साक्षात् और परम्परा का भेद समझना है। जो अरहंत हैं, सिद्ध हैं वे परवस्तु हैं, उनके निर्विकारता होती रहती है। अब वहाँ ही तुम्हारी आँख गड़ी है, वे भगवान हैं, बल्कि स्थिति में क्या किया तुमने कि अपने ज्ञान को अपने से हटाकर बहुत दूर ले जाकर उस सिद्धक्षेत्र में या उस दूसरी जगह में तुमने ध्यान बनाया—वे हैं सिद्धभगवान, वे हैं अरहंत, वे समवशरण में हैं। देखो इसमें भी फर्क तो आया। अभी आपकी कोई बम्बई में मानो दुकान है वहाँ ध्यान दो, वह है दुकान, तो जैसे वहाँ ध्यान दिया, वह है दुकान, ऐसे ही यहाँ ध्यान दिया कि वे हैं भगवान जो लोक के अंत में विराजमान हैं तो एक सीमा तो बनी एक समान, मगर इन दोनों में अन्तर बहुत है। वह तो स्वरूप की सुध दिलाने के काबिल रख रहा है वह अनुराग, शुद्धआत्मा का अनुराग। हम को शुद्ध आत्मद्रव्य में प्रवेश कराने के काबिल बनाये रखे ऐसा है वह ध्यान, और जो दुकान के प्रति ध्यान बनाया, उसमें यह बात तो नहीं है। तो इन दोनों ध्यानों में अन्तर है। इससे कह सकते हैं कि अरहंत सिद्ध का ध्यान परम्परया मोक्ष का कारण है। जब सिद्धभगवान के स्वरूप का ध्यान करते हैं तो चूंकि उनका स्वरूप एकरस सम है। द्रव्य, गुण, पर्याय सर्व शुद्ध हैं तो वह ध्यान होने से तनिक जरा और दृढ़ता से ध्यान बने तो वह पराश्रय छूटकर अपने शुद्ध आत्मस्वरूप का भान हो जाता है तो आखिर में निश्चय से सहारा किसका लिया गया? निज शुद्धआत्मा का। इतनी बात सुनकर आप चौंक सकते हैं कि खुद में कहाँ धरा शुद्ध द्रव्य, जिसका हम सहारा ले और बाहर में अरहंत सिद्ध के आत्मा में वह शुद्ध आत्मद्रव्य है। उसके लिए तुम

कह रहे कि उसके विकल्प में साक्षात् मुक्ति नहीं है और यहाँ शुद्ध आत्मद्रव्य नहीं है, रागद्वेष मोह भरा है, यहाँ सहारा लें कैसे? तो भाई सुनो—शुद्ध आत्मद्रव्य के मायने यहाँ यह नहीं है कि जहाँ राग नहीं, द्वेष नहीं, मोह नहीं, पवित्रता है, निर्विकार दशा है उसे शुद्ध आत्मद्रव्य कहा जा रहा है। बड़ा ध्यान देने की बात है, किन्तु एकत्व, एकाकी, एक, अकेला आत्मा ही आत्मा यह ध्यान में दो, इसका क्या मतलब? उस आत्मद्रव्य के साथ कर्म न सोचें, विभाव न सोचें, नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव पर्याय न सोचें, और की बात तो दूर रहो, जो भीतर जानकारी, अवस्थायें होती हैं उन पर भी ध्यान न दें, उन सब विकल्पों को हटावें। केवल एक आत्मतत्त्व, अब उसके साथ स्वभाव भी आयगा, स्वभाव बिना द्रव्य नहीं होता, स्वभावरूप में ही द्रव्य का परिचय बनेगा, सो स्वभावमय जानो। शब्द नहीं हैं बताने को, परन्तु करके जान लो। सारे बाहरी बातों के ख्याल छोड़कर विश्राम से जब आप अपनी ओर झुकते हुये आराम से बैठोगे तो आ जायगा वह शुद्धज्ञान स्वरूप। जिसकी ख्याति के लिये सर्व विशुद्ध ज्ञानाधिकार बनाया गया समयसार में उस शुद्ध आत्मद्रव्य की बात कह रहे हैं। कैसे मिले? कैसे ज्ञान में आये? तो निर्विकल्पसमाधि के बल से, जो एक सहज परमआनन्द का अनुभव हुआ, प्रतीति हुई, उस समय किया हुआ स्वसम्वेदनज्ञान। ज्ञान अपने सहजज्ञानस्वरूप को जान रहा है यह स्थिति है, उस ज्ञान स्थिति के द्वारा यह शुद्ध आत्मद्रव्य जाना जाता है। क्या रागद्वेषादिक भाव नहीं, विकल्प नहीं, शरीर नहीं? अरे आंखें खुली तो हैं तो सही, अब नहीं है उसकी दृष्टि में । और क्या है? अनन्त आनंद, अनंतशक्ति, अनन्तज्ञान। इनसे भरा हुआ सहज अनन्तचतुष्टय निज एक शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्धद्रव्य है उसे जानें, उसका मन में ध्यान करें, वचन से बोले और उसके अनुसार चले, यह है द्रव्यगुण की अभिन्नता का ज्ञान करने का काम।

गाथा १४

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि।।१४।।

वस्तु के किसी भी एक धर्म को समझने के लिये उद्यत होने पर सप्तभंगों का औचित्य—द्रव्य की सिद्धि का प्रकरण चल रहा है। द्रव्य के विषय में तीन लक्षणों द्वारा काफी प्रकाश दिया गया। द्रव्य सत् लक्षण वाला है, द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त है, द्रव्य गुणपर्यायमय है, ऐसे परस्पर सहयोगी तीन लक्षणों द्वारा द्रव्य के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है, और भली-भाँति न्याय विधि से उस द्रव्य के अस्तित्व की प्रसिद्धि की गई है। उस जाने हुए द्रव्य के विषय में अब यहाँ सर्व अपेक्षाओं से द्रव्य का परिचय कराया जा रहा है। जब कभी यह धर्म उपस्थित हो अस्ति अथवा नास्ति तो एक कोई सी भी बात चर्चा के लिए हो जाय तो उस एक बात के दिये जाने पर उसके भङ्ग ७ हो जाते हैं। उसका कारण यह है कि जो एक बात पेश की, जैसे द्रव्य के विषय में द्रव्य अस्ति है, यह बात पेश की तो किसी अपेक्षा से ही तो यह बात रही, तो उसके विपक्ष नय से यह जोड़ना पड़ेगा कि स्याद् नास्ति। अब एक के कहते ही दो तो हो ही गए। वस्तु के बारे में कोई कुछ कहे एक तो वह और एक उसके खिलाफ, ऐसी दो बातें एक के कहते ही आ गई। अब उन दो बातों को एक साथ बोला न जा सकेगा, क्योंकि दृष्टियाँ भिन्न-भिन्न हैं। उन दृष्टियों का वाच्य भिन्न है, उन सबको एक निगाह से एक बोला जाय इस कारण तीसरी बात तभी आ जाती है कि अवक्तव्य है। तो सप्तभङ्गी में पहले तीन भङ्ग हैं—स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति और स्याद् अवक्तव्य। ऐसे तीन न जानना कि स्याद्अस्ति, स्याद्नास्ति, स्यादअस्तिनास्ति। किन्तु तीन भङ्ग हैं—अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य। प्रसिद्धि यद्यपि लोगों में ऐसी है कि जब भङ्ग बोलेंगे तो पहले अस्ति, फिर नास्ति, फिर अस्ति-नास्ति, लेकिन ऐसा प्रयोग करना क्रमरहित है। क्रम क्या है कि पहले इकहरे भङ्ग बताओ। तो इकहरे भङ्ग ये हैं अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य। अस्ति-नास्ति तो संयोगी भङ्ग हैं, वह स्वतंत्र अकेला भङ्ग नहीं है। इसलिए पहले एक-एक भङ्ग बताना चाहिए, फिर दो-दो के संयोग वाले बताने चाहिए, फिर तीन-तीन के संयोग वाले

कहने चाहिए। द्रव्य के बारे में कहा जा रहा—द्रव्यं स्यात् अस्ति, याने द्रव्य कथञ्चित् है, कौनसी अपेक्षा आयी? अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है। इस 'है' के कहते ही विपक्ष की बात आ जाती है। द्रव्य स्यात् नास्ति, किसी अपेक्षा से नहीं है, किस अपेक्षा से नहीं है? पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से नहीं है।

प्रस्तुतपक्ष और विपक्ष का तथा अवक्तव्यता का एकत्वदर्शन—देखो हर एक चीज में ये दो बातें अनिवार्य हैं कि नहीं? मोटेरूप से ही देख लो—जैसे कहा कि यह चौकी स्यात् अस्ति, चौकी किसी अपेक्षा से है, किस अपेक्षा से है? चौकी में जो द्रव्य है, क्षेत्र है, काल है, भाव है उसकी अपेक्षा से है, ऐसा कहते ही विपक्ष की बात भी आ जाती। चौकी स्यात् नास्ति, चौकी किसी अपेक्षा से नहीं है। किस अपेक्षा से नहीं है? चौकी को छोड़कर बाकी जितने पदार्थ हैं भीत, दरी, आदमी वगैरा, इनके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं है। बताओ चौकी में ये दो बातें जरूर हैं कि नहीं? चौकी अपने स्वरूप से है दूसरे के स्वरूप से नहीं है। यदि आप यह कहे कि हम दो नहीं मानते, एक मानते हैं तो भला कौनसा एक मानते? दो बातें अभी रखी हैं। चौकी अपने स्वरूप से है, दूसरी बात क्या कि चौकी अन्य चीज की अपेक्षा से नहीं है। इन दो में से कौन-सी बात बोलते हो और किसको मना करते हो? अगर कहो कि हम नास्ति की बात मना करते हैं, सिर्फ एक ही बात कहेंगे कि चौकी स्यात् अस्ति तो मना किसे किया? चौकी दरी, चटाई, भीत आदिक के स्वरूप से नहीं है, इसको मना कर रहे, तो इसको मना करने का अर्थ क्या हुआ कि चौकी दरी, चटाई, भीत आदिक के रूप से है। नास्ति को मना करने का अर्थ क्या है? अस्ति। तो जब चौकी, दरी, चटाई आदिक के स्वरूप से हो गयी तो अब चौकी तो न रही । खतम हो गई चौकी । देखो नास्तित्व का भी कितना बल है? पदार्थ में नास्तित्व धर्म है उसका भी कितना महत्व है? स्वरूप, वस्तु की सत्ता बनी रहती है नास्तित्व के बल पर। जैसे अस्तित्त्व के बल पर पदार्थ है ऐसे ही नास्तित्व के बल पर भी पदार्थ में सत्ता है। तो मना तो नहीं किया जा सकता कि चौकी अन्य द्रव्यों के स्वरूप से नहीं है, इस धर्म को कोई मना नहीं कर सकता। अच्छा अब कोई कहे कि हम पहली बात को मना कर देंगे। क्या थी पहली बात? चौकी अपने स्वरूप से है, लो इसको मना कर दिया तो इसका अर्थ क्या निकला कि चौकी अपने स्वरूप से नहीं है। तो चौकी कहाँ रही? सत्ता ही मिट गई। चर्चा किसकी करते? तो अस्ति और नास्ति—ये दो धर्म हुए पदार्थ में। दो बातें लो सिद्ध हो गई। ये स्वतंत्र बातें हैं। अब कोई प्रश्न करे कि तुमने ये दो बातें किस अपेक्षा से कहीं? हम तो एक बार में ही तुम्हारे मुख से सुनना चाहते हैं कि पदार्थ कैसा है? एक बार में कह दो, देर मत करो। वस्तु का स्वरूप समझने को हम बहुत तेज कमर कसकर आये हैं। हम धीरे-धीरे न सुनना चाहेंगे। हमें तो एक बार में बता दो कि पदार्थ कैसा है? देर करके क्यों बताते? पहले कहा—स्यात् अस्ति, फिर बताओगे स्यात् नास्ति। इतनी देर से न कहो, एक बार में बताओ कि द्रव्य क्या है? तो भाई एक बात एक साथ कही ही नहीं जा सकती कि वस्तु क्या है? इस कारण अवक्तव्य है। अब ये तीन धर्म हो गए, तीन की अपेक्षा है। द्रव्य अपने स्वरूप से है, द्रव्य पर के स्वरूप से नहीं है। द्रव्य में दोनों को एक साथ नहीं कहा जा सकता ऐसा अवक्तव्य है। ये तीन स्वतंत्र बातें हुई।

वस्तु में संयोगी चार भंगों का दिग्दर्शन—अब चलो—द्रव्य अपने स्वरूप से है, ऐसा होने पर भी द्रव्य पर स्वरूप से नहीं है, यह भी एक अपेक्षा है, इसे कहेंगे स्यात् अस्ति नास्ति। द्रव्य अवक्तव्य होने पर भी अपने स्वरूप से है, इसे कहेंगे स्यात् अस्ति अवक्तव्य। द्रव्य अवक्तव्य होने पर भी पर के स्वरूप से नहीं है—यह हुआ नास्ति अवक्तव्य। द्रव्य अवक्तव्य होने पर भी स्वरूप से है, पररूप से नहीं है। कहीं सर्वथा अवक्तव्य मत समझ लेना अन्यथा सब चुपचाप बैठो। कुछ बात भी न बोली जा सकेगी क्योंकि अवक्तव्य है। तो इस तरह द्रव्य में अस्ति धर्म के नाते से ७ भङ्ग होते हैं। ऐसे ही और भी उदाहरणों में ले लो।

वस्तु के सभी धर्मों में स्याद्वाद की योजना—बताओ जीव नित्य है कि अनित्य? जीव सदा रहता है ना? जो सत् है वह कभी मिटता नहीं, जीव है वह मिटे नहीं, इसके मायने है कि जीव नित्य है। किस दृष्टि से कहा? द्रव्यदृष्टि से । जीव नित्य है, सदा है, अनादि अनन्त है। अच्छा देखो एक बात पहले बहुत बार आयी कि वस्तु में द्रव्य और पर्याय ये दो बात मानना तो अनिवार्य ही है। गुण की तुम्हारी मर्जी, उसमें तुम कल्पना नहीं करना चाहते तो मत करो, भेददृष्टि नहीं रखना चाहते तो मत बोलो, मगर पर्याय को मना नहीं कर सकते क्योंकि द्रव्य का स्वरूप ही है यह कि सदा रहता हुआ भी प्रति समय परिणमता रहता है। यदि ऐसा न हो तो पदार्थ है ही नहीं बन सकता। तो द्रव्य और पर्याय ये दो अनिवार्य हैं। तो जीव के बारे में या किसी भी द्रव्य के बारे में पूरा वर्णन द्रव्य और पर्याय दोनों से करेंगे तो कहलायगा। तो द्रव्यदृष्टि से जीव नित्य है और पर्याय दृष्टि से जीव नित्य नहीं है। ये दो बातें आयी। स्यात् नित्यं अस्ति, स्यात् नित्यं नास्ति। नित्य है एक भङ्ग, अनित्य है दो भङ्ग। अब एक साथ एक बार में बताओ कि कैसा है द्रव्य? तो एक बार में कहा नहीं जा सकता इस कारण अवक्तव्य है। तीन इकहरे भङ्ग हो गए। द्विसंयोगी भङ्ग तीन और अपनी द्रव्यदृष्टि से नित्य है, पर्यायदृष्टि से अनित्य है, इन दो अपेक्षाओं को एक मूड में लाकर रखा, इसलिए वह एक भङ्ग (चौथा) कहलाया। मूड (आशय) से भङ्ग बनता है। फिर अवक्तव्य होने पर भी जीव द्रव्यदृष्टि से नित्य है। यह ५वां भङ्ग है। जीव अवक्तव्य होने पर भी अनित्य है यह छठा भङ्ग हुआ। अब तीनों का संयोगी भङ्ग। अवक्तव्य होने पर भी जीव द्रव्य से नित्य है, पर्याय से अनित्य है। ये ७ भङ्ग हो गए। देखो—सप्तभङ्गी व्यवहार की मूल जड़ है। इन ७ दृष्टियों से वस्तु का परिचय करने पर पूरा द्रव्य बनता है। किसी आदमी के बारे में सोचो, एक आदमी को लक्ष्य में लेकर कहो। यह पुत्र है। है ना पुत्र? पिता की अपेक्षा से पुत्र है। स्यात् पुत्र: । अच्छा तो स्यात् पुत्र:, एक अपेक्षा से पुत्र नहीं है। किस अपेक्षा से? पुत्र की अपेक्षा से पुत्र नहीं है, भाई आदिक की अपेक्षा से पुत्र नहीं है। पिता को छोड़कर बाकी सबकी अपेक्षा से पुत्र नहीं है। एक बार में तो बताओ? अवक्तव्य है यह पुरुष, जिसका हम परिचय करा रहें? अवक्तव्य है और पुत्र भी है, अपुत्र भी है, पिता की अपेक्षा पुत्र है और अपिता की अपेक्षा अपुत्र है। और अवक्तव्य होने पर भी पुत्र है, अवक्तव्य होने पर भी अपुत्र है। अवक्तव्य होने पर भी पुत्र और अपुत्र है। किसी भी जगह लो, मुख से कुछ बोला कि उसमें ७ भङ्ग आ गए। यह सप्तभङ्गी का तत्त्व विज्ञान पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को कहता है और इस जीव को मोह से बचाता है। एक बार कोई अजैन विद्वान जैन हो गया तो उसका लोग मजाक उड़ाये कि अब तो तुम सप्तभङ्गियों में मिल गए क्योंकि जैन लोग तो सप्तभङ्गियों का शासन मानते हैं। तो वह विद्वान बोला कि भाई क्या बतायें? मुझ पर और आशय में रहने से इतना मैल जम गया था कि ७ भङ्गियों के बिना वह मैल दूर नहीं हो सकता। इसलिए हम सप्तभङ्गी में हो गए । भङ्ग के मायने क्या? धर्म। ७ प्रकार के धर्मों की योजना का नाम है सप्तभङ्गी।

सप्तभङ्गी के परिचय से शिक्षण—सप्तभङ्गी के विज्ञान से हमें क्या शिक्षा मिलती है? भली प्रकार परख कर लेने पर जो एक फल मिलता है किसी भी काम में किसी भी पुरुषार्थ का फल मिलता है, परमविश्राम मिलता है। लोक में भी तो दुनिया के बहुत काम करके आप चाहते क्या हैं ? इकट्ठा पूरा आराम मिल जाय। अच्छा तो इसी प्रकार से सप्तभङ्गों द्वारा पदार्थ का खूब स्वरूप जानकर आपको चाहिए क्या? परम विश्राम। वो कैसे मिलता? भली-भांति जीव का परिचय कर लो। परिचय करने के बाद अपने आप ही यह विदित हो गया कि जीव में सारतत्त्व है सहजचैतन्यस्वरूप। बस यह उपादेय है। काम की बात अनेक परिश्रमों के बाद मिली। जैसे कोई रोटियां ही न खा लेगा। बहुत परिश्रम के बाद रोटी मिलेगी। पहले कमायी करेगा, फिर वह रोटी बनाने बैठेगा, बड़ा श्रम करेगा, और उसके बाद जब भोजन करने बैठता तो

बहुत मौज और आराम से हर्षित होता हुआ बैठता कि हमने अथक परिश्रम किया और अब उसका फल पा रहे हैं। तो ऐसे ही समझिये ज्ञान के क्षेत्र में हमने नाना दृष्टियों से वस्तु का स्वरूप समझा तो इतना समझ करके अब हमें करना क्या है? अपना जो सहज शुद्ध आत्मद्रव्य है उसमें रमण करना है यह फल है। सब चीजों के भारी-भारी जानने का क्या फल है उनका जानना छोड़ दो, आराम से बैठो वाह बहुत बढ़िया फल बताया। बहुत-बहुत जानने के बाद द्रव्य से, पर्याय से, भेद से, अभेद से, स्व से, पर से सारी बात समझ लेने के बाद अब कह रहे कि जो कुछ तुमने समझा, जो तुमने विकल्प किया उनको छोड़ दो और उन विकल्पों से हटकर आराम से बैठ जावो। तो कोई एक नया आदमी कह उठेगा कि आपने बहुत अच्छा कहा, इसीलिए तो हम कुछ जानना नहीं चाहते। कौन बहुत-बहुत पुस्तकें पढ़े, द्रव्य के भेदअभेद पढ़ने में कौन दिमाग लगाए, क्योंकि आप ही तो कहते हो कि जानने का फल है कि जानना छोड़ दो तो हम पहले से ही छोड़ रहे। लोग तो जिन्दगीभर परिश्रम करके जानने के बाद छोड़ेंगे, हम अभी से छोड़ रहे तो ऐसा छोड़ना काम न देगा, क्योंकि अज्ञान बसा है। अज्ञान में विकल्प हट कैसे सकेगा? तो सर्व अपेक्षाओं से वस्तु का परिचय करके एक सारभूत जो एक निर्विकल्प शुद्धचैतन्यमात्र अंतस्तत्त्व है उसको दृष्टि में लो, वह मैं हूँ, इस प्रकार का प्रयत्न करके विश्राम लो, इसके लिए हैं बहुत-बहुत प्रकार की जानकारियाँ।

द्रव्यपर्यायात्मक वस्तु में द्रव्यदृष्टि व पर्यायदृष्टि से भंगों के निर्माण की समीचीनता—देखिये—अनेकान्त होता है पक्ष और विपक्ष की दृष्टि से । अब कुछ दिनों से ऐसा अनेकान्त चला दिया कुछ मनचले लोगों ने। कैसा यह है अनेकान्त? पदार्थ नित्य है, पदार्थ अनित्य नहीं ऐसा क्यों चलाना पड़ा कि जो हमने समझा उसकी हठ रह जाय, उसके विपक्ष में सिद्धि बने। जैसे पर्याय सब नीयत हैं, पर्यायें अनियत नहीं हैं। सुनो—यदि है और नहीं, इन दो शब्दों ने और लुभा दिया लोगों को, पर हुआ कहाँ अनेकान्त? अनेकान्त होता है द्रव्य और पर्याय दो दृष्टियों से । वह तो एक ही दृष्टि की बात रही। जैसे कहा जीव नित्य है, एक यह भङ्ग, दूसरा भङ्ग जीव अनित्य नहीं है, तो भला यह बतलावो—किस दृष्टि से जीव नित्य है? द्रव्यदृष्टि से । और किस दृष्टि से जीव अनित्य नहीं है? द्रव्यदृष्टि से । एक वह दृष्टि जब आयी तो भङ्ग कहाँ बना? पुनरुक्त हो गया इसलिए स्याद्वाद की हँसी उड़ाना अज्ञान से और दूसरे का पद फैलाना, यह तो बड़ा पाप है। जो सही बात है उसको छुपाकर अपनी प्रसिद्धि के लिए एक नये ढंग की बात कहना, यह कोई ज्ञानीपन का काम नहीं है। जैसे घटघट है, घटपट आदिक नहीं है, तो इसमें दो दृष्टियाँ आ गईं—स्व और पर की दृष्टि, भिन्न दो दृष्टि। अगर यह कहो कि घटघट है, खण्ड नहीं है तो एक दृष्टि रहेगी, वहाँ दो दृष्टियाँ नहीं हैं। द्रव्य और पर्याय ये दो दृष्टियाँ चलती हैं। उनके आधार से अनेकान्त की सृष्टि हुई, क्योंकि इन दो को कभी छोड़ा नहीं जा सकता। पदार्थ द्रव्यपर्यायमय है। केवल द्रव्य-द्रव्य ही नहीं है, पर्याय रहित नहीं है, और केवल पर्याय पर्याय ही नहीं है, द्रव्य रहित नहीं है। इसलिए इन दो दृष्टियों के आधार से भङ्ग बनाया जाय तो अनेकान्त बनेगा अन्यथा नहीं, क्योंकि और तरह तो सभी दार्शनिक अनेकान्ती हो गए। कैसे कि बौद्ध कहते हैं कि पदार्थ क्षणिक है तो दूसरा संग ले तो साथ में पदार्थ अक्षणिक नहीं है। उस पदार्थ को अगर अनेकान्त एक माडर्न टाइप का बन गया तो उनका भी अनेकान्त, कैसा? ब्रह्मवादी कहते हैं कि ब्रह्म अथवा सत्त्व कूटस्थ नित्य है, दूसरा भंग बना दो अनित्य नहीं है, वे भी अनेकान्ती हो गए, फिर तो कोई एकान्तवादी ही न रहा। एक ही दृष्टि की बात अस्ति और नास्ति से कही जाय तो कोई भी एकान्ती नहीं। इससे द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टि—इन दोनों दृष्टियों से धर्म का निर्णय करना चाहिए। यहाँ तक बात क्या आयी? पदार्थ अनेकान्तात्मक है, अनेकान्त और स्याद्वाद में अन्तर क्या है? वैसे एक ही घर की बातें हैं, इसलिए चाहे कभी किसी शब्द से बोल दो, कुछ हर्ज नहीं। कभी पुरुष अपनी स्त्री को बुलाये तो वह लड़का या लड़की का नाम लेकर बुला लेता है, स्त्री का नाम

नहीं लेता और स्त्री पति को बुलाती तो लड़के का नाम लेकर कहती है—ऐ फलाने, तो यह अपने घर की बात है, किसी का भी नाम ले लो, बात ठीक है, तो इसी तरह जब एक ही बात की घोषणा है स्याद्वाद और अनेकान्त, तो कोई स्याद्वाद कहता है, कोई अनेकान्त, पर अन्तर यह है कि अनेकान्त तो वस्तु का नाम है और स्याद्वाद कथन शैली का नाम है, यह अन्तर है, क्योंकि अनेकान्त का अर्थ है अनेकान्त: अस्मिन् स अन्त:, जिसमें अनेक धर्म हों उसे अनेकान्त कहते हैं। अनेकान्त क्या हुआ? पदार्थ सहित बुद्धि और स्याद्वाद क्या हुआ? स्या, मायने अपेक्षा से, वाद मायने कथन करना, अपेक्षा से कथन करना, इसका नाम है स्याद्वाद। तो स्याद्वाद द्वारा अनेकान्त वस्तु का परिचय होता है।

सर्व अपेक्षाओं से विदित वस्तु में भूतार्थता के परिचय की सुविधा—देखो जब कोई बात सब तरफ से समझ ली जाती है तो उसकी समझ दृढ़ हो जाती है। कोई आदमी आया आपके घर का अतिथि जो बड़े शहर में रहता है, आपके घर के ६ रास्ते है, आते ही वह घर तो आ गया, मगर रास्ते का परिचय नहीं है, सो वह घर के पीछे के रास्ते से आया तो वह वहीं डोलता रहेगा, कुछ न जान पायगा। सभी रास्तों का, आपके मकान के सब ओर के रास्तों का परिचय हो तो वह दृढ़ परिचय है। बनारस में एक ब्राह्मण विद्वान था। जैन न्याय पढ़ाते-पढ़ाते उसको जैन धर्म पर दृढ़ श्रद्धा हुई। तो उस ब्राह्मण के अनेक बिरादरी के लोग उसके पास आये और बोले—साहब ! आप यह क्या कर रहे? अपने कुल की बात छोड़ रहे और जैनशासन की महिमा आप बखानते रहते हैं, यह क्या है स्याद्वाद? स्यात् नित्य, स्यात् अनित्य। एक पागलों जैसी बात इस धर्म में कहीं गई है, कहीं संदेह मिटता ही नहीं, और वही संशय वाला धर्म आप अपना रहे, ऐसा आप क्यों कर रहे? तो वहाँ उस ब्राह्मण विद्वान ने कहा तो कुछ नहीं। वह अपने घर की फोटो ले आया। उसने पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण इन चारों दिशाओं से अपने मकान का फोटो खिंचवा रखा था। सबसे पहले पूरब दिशा से खींची गई फोटो दिखायी और पूछा कि बताओ यह किसका फोटो है? तो वे बिरादरी के लोग बोले—यह तो आपके मकान का फोटो है। और यह दूसरी? यह भी आपके मकान का ही फोटो है। कैसे? यह मकान के पश्चिम दिशा से ली गई फोटो है, फिर तीसरी फोटो दिखाया तो फिर वही उत्तर दिया कि यह भी आपके मकान का फोटो है पर मकान की उत्तरदिशा से ली गई फोटो है। चौथी फोटो दिखायी तो फिर वही उत्तर मिला—यह आपके मकान की दक्षिणदिशा से ली गई फोटो है। तो वह ब्राह्मण बोला—बस यही उत्तर जैनशासन का है। जब द्रव्यदृष्टि से फोटो लिया तो पदार्थ नित्य लगा, पर्यायदृष्टि से फोटो लिया तो पदार्थ अनित्य लगा। तो तब वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक है। इस प्रकार दोनों दृष्टियों से परीक्षा करें तो वस्तु का परिचय होता है। पूर्ण परिचय करके अपनी सब पर्यायों में व्याप के अनादि अनंत अहेतुक अन्त: द्रव्यत्व का परिचय करें। इस आत्मपरिचय से विशुद्ध आनंद जगता है।

गाथा १५

भावस्य णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
गुणपज्जयेसु भावा उप्पादवये पकुव्वंतिओ?।१५।।

सदुच्छेद व असदुत्पाद न होने पर भी गुणपर्यायों में उत्पादव्यय का संदर्शन—इससे पहली १४वीं गाथा में सप्तभङ्गी का वर्णन किया गया था। द्रव्य स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति आदिकरूप से बहुत विवेचन हुआ। उस विवेचन को सुनकर कोई दार्शनिक यह शंका रख सकता है कि द्रव्य हो तब तो उसके बारे में नास्ति आस्ति भङ्ग बनायें, पर कोई पहले से सत् नहीं है कि जिसकी बाद में अस्ति नास्ति की बात कही जाय। जो उत्पन्न हुआ है वह पहले न था, एक अपूर्व नया ही बनता है। जो उत्पन्न हो चुका अब वह आगे नहीं टिकता। आगे तो कोई नया बनेगा। तो असत् का ही उत्पाद होता है और सत् का विनाश होता है,

ऐसा क्षणिक एकान्त मानने वाले कह रहे हैं। कुछ न था और हो गया, असत् का ही तो उत्पाद हुआ। असत् का उत्पाद हुआ तो वह सत् बन गया । अब उसका ही तो नाश हो गया। सर्वथा क्षणिक एकान्त में सत्ता एक समय को ही रहती है, अगले समय में पदार्थ का विनाश है, उत्पन्न होने से पहले पदार्थ नहीं है, इस तरह से जगत में सब निष्पत्ति चल रही है, ऐसा सिद्धान्त मानने वाले यह आशंका रखते हैं कि जब असत् का उत्पाद है और सत् का विनाश है तो सप्तभङ्गी फिर कहाँ ठहरेगी? इस ही आशंका के उत्तर में इस गाथा का अवतार हुआ। इस गाथा में यह कहा जा रहा है कि सत् का नाश नहीं होता, असत् का उत्पाद नहीं होता। किन्तु पदार्थ है और वह अपने गुण की पर्यायों में उत्पादव्यय किया करता है। ऐसा तो कोई दार्शनिक नहीं मानता है—एक क्षणिकवादियों को छोड़कर असत् का उत्पाद। एक भागवत गीता है, जिसके विषय में बताते कि व्यास जी ने रचा तो वहाँ भी यह बात मानते कि ''न सतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:'' याने जो है नहीं उसका सद्भाव नहीं होता और जो है, सत् है उसका कभी अभाव नहीं होता। क्या-क्या है? जैनशासन की ही तो घोषणा है। पदार्थ है, अनादि से अनन्त काल तक। कहीं असत् का उत्पाद नहीं होता और जो पदार्थ है, अनन्त काल तक रहेगा, सत् का विनाश नहीं है, किन्तु उस वस्तु में गुण की पर्यायें चलती रहती हैं, शक्तियों के परिणमन चलते रहते हैं, शरीर ही में उत्पादव्यय हुआ करते हैं, मूलभूत वस्तु में उत्पादव्यय नहीं होता, इसका स्पष्टीकरण यह है कि जो चीज है, जैसे एक जीव है, द्रव्य है, तो उसका द्रव्यरूप से विनाश नहीं है। अर्थात् जीवद्रव्य ही न रहे ऐसा असंभव है, उसकी अवस्थाओं का ही विनाश है, वस्तु का विनाश नहीं और जीवद्रव्य के परिणमन चल रहे हैं, उत्पाद चल रहे हैं तो उन उत्पादों में कहीं अन्य द्रव्य का उत्पाद नहीं हो गया। वह जीव का ही उस प्रकार का परिणमन चल रहा है। तो जो द्रव्य है उसका विनाश नहीं और उत्पाद होने पर किसी अन्य द्रव्य का उत्पाद नहीं होता। वस्तु है, अपने गुणों में उत्पादव्यय करती है।

उदाहरणपूर्वक वस्तु की उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकता का दिग्दर्शन—जैसे एक अंगुली अभी सीधी है, अब टेढ़ी कर दी तो टेढ़ी कर देने में किसी चीज का नाश तो हुआ है, मगर अंगुली का नाश नहीं हुआ। अंगुली का जो सीधा परिणमन था, उस सीधे परिणमनरूप अवस्था का नाश हुआ, अंगुली का नाश नहीं हुआ। और जब अंगुलि टेढ़ी कर दी गई तो वहाँ एक टेढ़ी अवस्था का उत्पाद हुआ, कहीं अंगुली को छोड़कर अन्य द्रव्य नहीं उत्पन्न हो गया, अंगुली ही रही। गुणपर्यायों में दृष्टान्त लो। एक आम के पेड़ में लो—शुरू-शुरू में वह नीला है, जब जरा बड़ा हुआ तो वह हरा हो गया, तो वहाँ आम का विनाश नहीं हुआ, और न आम को छोड़कर अन्य कुछ बन गया क्या? हरा हो जाने से जामुन बन जाय, केला बन जाय, ऐसा तो वहाँ नहीं दिखता और नीला मिट जाने से आम मिट जाय, ऐसा तो नहीं है वहाँ। एक दृष्टान्त है यह स्थूल। ऐसे ही कोईसा भी पदार्थ, उस पदार्थ का परिणमन हुआ, नई अवस्था हुई। सो कहीं उस अवस्था में पदार्थ का उत्पाद नहीं हुआ, कोई नया पदार्थ नहीं बन गया और न उस पदार्थ का विनाश हुआ। द्रव्य रह गया अनादि अनंत, उसकी अवस्थायें चलती रहती हैं, उनका उत्पादव्यय है। कैसा सीधा वस्तु का सुगम प्ररूपण है कि वहाँ कुछ युक्तियाँ नहीं बनानी पड़ती, कुछ कृत्रिमता नहीं करनी पड़ती। जैसा है वैसा ही व्याख्यान किया गया। जैसे मिट्टी से घड़ा बना तो घड़े से पहले क्या था? वह एक पिण्ड था, उसका बना दिया घड़ा। तो मिट क्या गया? लोंधा। तो अवस्था मिटी, कहीं मिट्टी का विनाश नहीं हुआ, और बना क्या? घड़ा। तो घड़ा बनने से कोई नया द्रव्य नहीं बन गया, किन्तु वह मिट्टी ही तो है जो पहले से सत् है । द्रव्यदृष्टि से न उत्पाद है, न विनाश। जीव संसार में रुल रहा। मनुष्य भव पाकर उस जीव ने ऐसा पौरुष किया कि अपने आपके स्वरूप को देखने में, उसके श्रद्धान में, उसमें रमने में उस जीव को मोक्ष लाभ हो गया। तो संसार पर्याय का नाश हुआ और मुक्ति पर्याय का उत्पाद हुआ। नाश वहाँ जीवद्रव्य का नहीं हुआ कि संसार पर्याय मिट गई तो लो जीव ही मिट गया। मोही जन तो ऐसा विश्वास

किए हुए हैं कि हमारा यह संग मिट गया तो मैं ही मिट गया, यह शरीर मिट गया तो मैं ही मिट गया और ये क्षणिक दार्शनिक यह कहते हैं कि वह मूलभूत पदार्थ ही मिट गया। पदार्थ तो एक समय को आता है, फिर रहता ही कहाँ? ऐसा तो यहाँ नहीं हुआ। मुक्त पर्याय हो जाने पर संसार अवस्था का तो विनाश है, संसार पर्याय का विनाश हो जाने पर मुक्त पर्याय का उत्पाद है। सो गुणपर्याय में उत्पादव्यय होता है, कहीं जीव का नाश हो गया हो और जीव को देखकर अन्य कोई द्रव्य बंध गया हो मुक्त होने पर ऐसा तो नहीं है। जो जीव था वही अब निरुपाधि हो गया, और जब ऐसा है कि द्रव्य अनादि अनन्त है और ऐसे प्रत्येक पदार्थ अनादि अनन्त हैं और उनमें परस्पर अत्यन्ताभाव है तथा निरन्तर पर्यायों में उत्पादव्यय किया करते हैं तो सप्तभङ्गी घटती गई। स्यात् अस्ति में भी सप्तभङ्गी बन गयी,स्यात् नित्य की भी सप्तभंगी हो गई, स्यात् अवक्तव्य की भी सप्तभङ्गी हो गई। कैसा स्पष्ट पदार्थ का स्वरूप है। फिर वे दार्शनिक उन पदार्थों में जबरदस्ती कोई अपनी बात लाना चाहते हैं।

क्षणिकत्वैकान्तवाद में संवाद और प्रवर्तन का लोप—देखो वस्तु कथञ्चित् नित्य है, कथञ्चित् अनित्य है, ऐसा माने बिना कोई इस भव की जिन्दगी चला सकता क्या? दुकान, व्यवहार आदिक कोई कर सकता क्या? मानो ऐसा एकान्त कर लिया कि जीव तो क्षण-क्षण में नया-नया बनता है और बना कि मिट गया, ऐसा मानने वाले दुकान चला लेंगे क्या अपनी? भोजन भी खा सकेंगे क्या? अरे जीव क्षणभर को हुआ और मिट गया तो धर्म कौन करे? कौन प्रवृत्ति करे? एक समय आत्मलाभ का है, दूसरा समय कुछ काम करने को था सो दूसरे समय तो रहता नहीं तो कोई काम ही नहीं कर सकता, और फिर मान लो कोई कहे कि काम कोई नहीं कर सकता, मगर जो नया आत्मा पैदा हुआ और उस सिलसिले में जिस धारा में वह पैदा हुआ तो पूर्व जीवों का संस्कार रहता है, इसलिए आगे-आगे का जीव अपना व्यवहार बनाता रहता है। जैसे कोई अफसर स्थगित कर दिया गया तो वह दूसरे को चार्ज सम्हला देता है, ऐसे ही क्षणिकवादी कहते हैं कि आत्मा तो एक समय में उत्पन्न हुआ और मर गया, मगर वह अपना सर्वस्व एक नये आत्मा को सौंप देता है। तरकीब तो अच्छी दृढ़ निकाली, मगर यह न सोचा कि उस नये आत्मा को अपना ज्ञान दें गया वह ताकि नया आत्मा यह बात का स्मरण करता रहे तो आत्मा को तो वह नया आत्मा अत्यन्त निराला है अन्य–अन्य है तो और शरीर में उत्पन्न होने वाले आत्मा को क्यों नहीं सौंप जाता यह ज्ञान? उसी शरीर में होने वाले आत्मा को ही क्यों सौंपा? और सौंपता क्या? वह तो हुआ और गुजर गया। सौंपने को समय ही कहाँ मिला? कोई प्रवृत्ति नहीं हो सकती। तब ही तो एक कथा बहुत प्रसिद्ध है कि एक क्षणिकवादी सेठ की गाय एक ग्वाला चराने ले जाया करता था। उस ग्वाले ने खूब चराया। जब महीना पूरा हो गया तो वह ग्वाला सेठ के पास जाकर कहता है कि मालिक हमारी चराई दीजिए, हमारा महीना पूरा हो गया । तो वह क्षणिकवादी सेठ कहता है अरे काहे की चराई? देखो जिसने तुम को गाय चराने को दी थी वह अब नहीं रहा और जिसको गाय चराने को दी थी वह भी नहीं रहा, पैसे का क्या सवाल? तो ग्वाला अपना मुख लेकर चला आया। अब वह सोचने लगा कि सेठ से कैसे पैसे वसूल किए जायें? उसकी समझ में आ गया। दूसरे दिन उसने गाय को अपने घर बाँध लिया, सेठ के घर न भेजा। तो अब सेठ को चिन्ता हुई, वह पहुंचा ग्वाले के घर, ग्वाले से पूछा—अरे भाई तुमने गाय हमारे घर क्यों नहीं भेजी? तो ग्वाला बोला—देखो सेठजी ! जिसने गाय दी थी वह अब नहीं रहा और जिसने गाय चराने को ली थी वह भी अब नहीं रहा, तो गाय लेने-देने का क्या सवाल? सेठ ने माफी मांगी, अपनी भूल पर पछताया। जब ग्वाले को चराई दी तब गाय वापिस पायी। तो पदार्थ को द्रव्यदृष्टि से नित्य और पर्यायदृष्टि से अनित्य न मानने पर व्यवहार नहीं चल सकता।

नित्यत्वैकान्तवाद में भी संवाद और प्रवर्तन का लोप—जो लोग नित्य एकान्तवादी हैं, वस्तु है और ज्यों की त्यों रहती है, वस्तु में परिणमन नहीं होता, ऐसा कूटस्थ नित्य कहने वाले भी कुछ नहीं कर सकते। रोजिगार क्या करे? कौन करे? परिणमन तो होता ही नहीं। कौन खाये पिये? परिणमन तो होता ही नहीं। सर्वथा नित्य में व्यवहार नहीं, सर्वथा अनित्य में व्यवहार नहीं । व्यवहार धर्म वाले भी मुक्ति नहीं पा सकते और सर्वथा अनित्य मानने वाले भी मुक्ति नहीं पा सकते। जीव है वह उपाधि के संसर्ग में, मलिन अवस्था में है। उपाधि के अभाव में उसकी पवित्र अवस्था हो जाती है। चीज वही रही, वस्तु वही रहा, जीव वही रहा, ऐसी जीवद्रव्य की बात है। सभी द्रव्यों की बात ऐसी है। दृष्टान्त में जीव ले लो। जीवद्रव्य में प्रतिसमय पर्यायें बनती रहती हैं और नवीन पर्याय बनने के मायने यह नहीं हैं कि जीवातिरिक्त अन्य कुछ द्रव्य बन गया हो और पुरानी पर्याय मिटने के मायने यह नहीं हैं कि जीवद्रव्य ही खतम हो गया। अपने आप पर घटित करो—मैं द्रव्यदृष्टि से नित्य हूँ, सदाकाल रहने वाला हूँ । लगता भी यह ही है। बचपन में भी हम थे, जवानी में भी हम थे, बुढ़ापे में भी हम ही हैं। इससे पहले भव में भी हम थे, तो हमारा उत्पाद होने की तो जरूरत क्या? विनाश कभी हो सकता नहीं। हम न हों, तो उत्पाद की जरूरत समझें। हम सत् हैं, उत्पाद की क्या वहाँ बात? और जिस जिसका भी उत्पाद होता है, कहीं कोई अपूर्व चीज नहीं उत्पन्न होती। जो है उसकी ही एक दशा नई बन गई। इस तरह जो भाव है, द्रव्य है, वस्तु है उसका तो नाश नहीं है और जो है नहीं उसका उत्पाद नहीं है। पर उत्पादव्यय चल तो रहा है, वह सब गुणपर्यायों में चल रहा है।

दृष्टान्त पूर्वक स्थायित्व और सर्ग संहार का परिचय—एक दृष्टान्त और लो—गाय का दूध ले लो, उसे क्या बोलते? गोरस। दूध का दही बन गया तो भी वह गोरस ही तो रहा, अर्थात् दूध का दही बन गया तो कहीं गोरस नहीं मिट गया याने दूध मिट गया उसके मायने यह नहीं कि गोरस मिट गया। और दही बन गया तो इसके मायने यह नहीं कि वह और कुछ बन गया, गोरस न रहा, किन्तु अन्य कुछ बन गया, ऐसा नहीं है और उन दोनों अवस्थाओं में गोरसपने का ध्रौव्य है। ऐसी ही हमारी बात है। लोग क्यों घबड़ा जाते कि उनको द्रव्यदृष्टि से अपने सहज सत्व का परिचय नहीं है। हाय मैं मिट गया, यह मिट गया, यह मोह की दुनिया, यह कितनी विडम्बना है, उसमें कितनी आपत्तियाँ भरी हैं? रंच भी मोह इस जीव को बरबाद करने वाला है। कोई कहे कि हम को दुनिया में किसी से मोह नहीं रहा, सिर्फ एक बच्चे से या एक अपनी स्त्री से मोह है, बाकी अनन्त जीवों के प्रति हमारा मोह खतम हो गया है। सो देखो बहुत सम्यक्त्व तो मेरे पैदा हो गया, क्योंकि अन्य किसी जीव में हम को ममता नहीं है। हम में ९९ प्रतिशत सम्यक्त्व तो पैदा हो गया है, सिर्फ एक प्रतिशत सम्यक्त्व होना हममें बाकी रह गया है, क्योंकि हम में सिर्फ एक स्त्री भर का मोह रह गया है, तो उसका यह कहना मिथ्यात्व है। अरे एक भी प्राणी में ममता है तो वहाँ सारा मोक्षमार्ग ढक गया। अब तो वह धर्म के मार्ग में चलने वाला ही न रहा। धर्म की धुन में लोग काम तो बहुत-बहुत कर डालते, पर जो असली बात है मोह मिटना सो धर्म है इसको गौण क्यों करते? इसका उद्देश्य ही नहीं है कि धर्म इसमें मिलता है । व्रत कर लिया, दशलक्षण कर रहे, सोलह कारण कर रहे, उपवास चल रहे, शुद्ध धोती पहिनकर खा रहे? कोई छुवे नहीं, बस वहाँ तो याद है कि हम धर्म कर रहे, पर यह याद भी नहीं रखता, इस ओर दृष्टि भी नहीं जाती कि धर्म तो मोह के विनाश का नाम है सो हमने वह कितना विनाश कर पाया? और कोई तत्त्वज्ञान उत्पन्न करके मोह का विनाश करे और वह न कर पाये व्रत, तपश्चरण तो उसका मोक्षमार्ग में नाम तो आ ही गया। धर्म करने की चाह है। तो पहली बात यह मानो कि मेरा किसी भी प्राणी में मोह मत जगे। अरे छोड़ना तो है ही सब। रहेगा तो कुछ नहीं, पर यहाँ ज्ञानबल से सही बात विचारकर छोड़ दें तो यहाँ आत्मानुभव करते रहेंगे, वह सत्य, आनंद तो मिलता रहेगा। मोह के त्याग में धर्म है और उसकी अपने में परख कर लें। अगर आपका धन

आपके परिजनों पर ही खर्च हो पाता है, आपके ममता के साधनों में ही खर्च हो पाता है, अन्य के लिए एक पैसे की भी गुंजाइश नहीं, इतना कठिन जिसके जड़ वैभवों में लगाव है उसे आप क्या कहेंगे? मोही ही कहेंगे ना, धर्मात्मा तो न कहेंगे। मोह का त्याग करे तो धर्म है। मोह का विलास बनाये तो धर्म नहीं। चाहे ऊँचे से भी ऊँचे कठिन तपश्चरण कोई कर ले, पर यदि मोह है तो वहाँ धर्म नहीं।

सकलसंकटमूल मोह के विनाश का उपाय—अब जीवों में मोह न रहे, इसके लिए उपाय क्या है? मोह नाम किसका? दो या अनेक वस्तुओं में परस्पर भिन्नता का बोध न रहे और इसका यह कुछ है, ऐसा अज्ञान रहे उसे कहते हैं मोह। तो मोह मिटाना है तो क्या करना है? ऐसा ज्ञान जगाना कि जिस ज्ञान में यह स्पष्ट जंचे कि मेरा कहीं कुछ नहीं। अकिंचनोऽहं। मैं केवल अपने ही चैतन्यप्रकाशमात्र हूँ । ज्ञानी और अज्ञानी की पटरी नहीं बैठती, क्योंकि ज्ञानी तो मोह का त्याग करता है। बच्चों में भी मोह नहीं, वैभव में भी मोह नहीं, और अज्ञानी लोग यों देखते कि यह पागल हो रहा क्या? न घर सम्हालता, न बच्चों को देखता और अहर्निश अपनी धुन में मस्त रहता है। तो मोहियों की और निर्मोही की कहाँ पटरी बैठी? निर्मोही की प्रक्रिया अलौकिक है और मोहियों की प्रक्रिया संसार में रुलने की है। पर जो इतना विजित है कि जिसको यह चाह न रही कि लोग हमारी प्रशंसा करें वह पुरुष ज्ञानी है और वह अपनी अन्तर्धुन में रहकर अपना कल्याण कर लेता है। दुनिया के ये लोग मेरे प्रभु हैं क्या? जो ऐसी आशा लगाये कि ये तो मुझे अच्छा समझें, ये तो मेरे हृदय के गुण समझें, क्या पड़ी है? कोई प्रभु हैं क्या मेरे, जो भविष्य को सुधार दें या बिगाड़ दें? तो अन्य द्रव्य से हमारा क्या सम्बंध है? आया है इस जीव में और परिणम गया है कुछ ज्ञान साधन तो इसका सदुपयोग बनायें। मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ । श्रद्धा बनाये, पकड़ें अपने अन्त:नाथ को । मैं सहजज्ञानमात्र हूँ, अन्य कुछ नहीं हूँ । दूसरे की चिंता रखने से कहीं उसका पालन नहीं होता, दूसरे की उपेक्षा रखने से कहीं उसका विनाश नहीं हो जाता। दूसरे का अच्छा होना, बुरा होना, यह सब उसकी क्रिया पर निर्भर है। तो जब वस्तु का ऐसा अलौकिक स्वरूप है, पृथक् है परस्पर तो बस यह ज्ञान जहाँ जगा वहाँ मोह नहीं ठहरता। मोह में कायरता जगती है। अपने भीतरी दिल को तौल लो। मोह में अपना विघात है। मोह दूर हुआ कि निराकुलता रहती है। यह मोह मिटता है तत्त्वज्ञान से, पदार्थों के स्वरूप के निर्णय से । एक पदार्थ का दूसरा कुछ भी नहीं लगता। बिल्कुल स्पष्ट बात है, सामने है। जब एक का दूसरा कुछ नहीं है, ऐसा दिखेगा तो यह पर से कुछ न चाहेगा, और पर में कुछ करने के लिए कमर न कसेगा। सहजवृत्ति बने, इतना साहस अन्त: जगे तो इस जीव का उद्धार हो सकता है। केवल एक साधारण ऊपरी मन, वचन, काय की चेष्टा करने में धर्म नहीं। जहाँ धर्म है वहाँ उसका मधुर फल अवश्य मिलेगा—शान्तिलाभ। ऐसी ही एक अलौकिक शान्त दशा पाने के लिए वस्तुस्वरूप का निर्णय चल रहा। वस्तु वही का वही अनादि अनन्त है और उसका पर्यायों में उत्पाद और व्यय हुआ करता है।

गाथा १६

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा।।१६।।

सर्व बाधाओं को दूर करने का उपाय अन्तस्तत्त्व का परिचय—सर्व बाधाओं को दूर करने का उपाय सिवाय तत्त्वज्ञान के, सिवाय तत्त्व दृष्टि के अन्य कुछ न किसी के हुआ और न कभी अन्य हो सकेगा। जीव यदि एक अपने आपके स्वरूप को ही निरख ले और यहाँ ही संतुष्ट हो सके तो वह कृतार्थ है। केवल एक मोह बुद्धि ही है जो किसी परपदार्थ के सम्बंध से अपने आपको यह जीव सुखी शान्त समझता है। वह केवल भ्रम है, जिसका फल बुरा होता है। तो चाहिए यह कि सब तरफ से ध्यान हटकर आत्मा का जो सहज चैतन्यस्वरूप है, यही मेरा सर्वस्व है, इस ही में सदा रहना है और अपने स्वरूप के अनुसार दृष्टि बन गई तो पवित्रता हो जाती है और सारे संकट दूर हो जाते हैं। वह तत्त्वज्ञान क्या है ?

तत्त्व क्या है, उसके विषय में सब वर्णन चल सकता है। तत्त्व वह है जो सत् है अर्थात् पदार्थ, जिसमें उत्पादव्ययध्रौव्य होता है, जो गुणपर्यायों में तन्मय है, अपने स्वरूप से है, अन्य सबके रूप से कतई नहीं है, ऐसा अन्य सबसे निराला स्वयं कोई एक याने प्रत्येक पदार्थ तत्त्व है। मैं भी एक पदार्थ हूँ, अपने स्वरूप से हूँ, अन्य अनन्तानन्त जीवों से जुदा हूँ, समस्त पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल से जुदा एक अमूर्त शुद्ध चैतन्यस्वरूप यह मैं आत्मा अपने लिए सर्वस्व हूँ । अपने में आत्मा की पहिचान करना है—मैं क्या हूं?

पदार्थव्यक्तित्व का परिचय—पदार्थ की पहिचान बनती है, उसकी शक्ति जानें, उसकी अवस्था जानें। दो परिचयों से पदार्थ का परिचय होता है। तो आत्मा का स्वरूप बतला रहे हैं कि आत्मा में गुण क्या है और आत्मा की पर्यायों का क्या हुआ करता है, इन दो बातों का इस गाथा में प्रतिपादन है। लोक में समस्त पदार्थ ६ जाति के हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। अन्य दार्शनिकों ने बहुत कोशिश की यह समझने की, बताने की कि सारे पदार्थ कितने होते हैं, मगर किस कुञ्जी से इसका उत्तर मिलता है उस कुञ्जी को छोड़ देने से पदार्थों की संख्या अथवा नाम सही नहीं कर सकता। कुञ्जी यह है कि एक परिणमन जितने में पूरे में हो और जिससे बाहर न हो वह एक पदार्थ कहलाता है। याने एक पदार्थ की अवस्था जो भी बने वह उस पदार्थ की एकदेश में न बनेगी, पूरे में बनेगी। अगर एक देश में बने तो समझो वह एक पदार्थ नहीं है, अनेक पदार्थ है। जैसे चौकी का खूंट काट डाला या आग लग गई तो सारी चौकी तो नहीं जलती। तो वह चौकी एक चीज नहीं है। वह अनन्त परमाणुओं का समूह है, सो कुछ जल गई, कुछ नहीं जल रही। अगर एक चीज हो तो जो भी अवस्था बनेगी, वह पूरे में बनेगी, आधे में न बनेगी। यह एक पदार्थ की पहिचान है और वह अवस्था उस एक के प्रदेश से बाहर न रहेगी। यह एक पदार्थ की पहिचान का उपाय है। यह भी व्यक्तिगत बात। अब ऐसे पदार्थ अनन्तानन्त हैं।

पदार्थों की जाति का परिचय—सर्व पदार्थों में अब जाति की बात देखो—जिस रूप से जितने पदार्थ पूरे एक समान हों, जरा भी अन्तर न आये तो वे एक जाति के पदार्थ कहलाते हैं। मगर और बात में पूरे समान हैं केवल एक बात में फर्क है तो भी वे एक जाति के पदार्थ न होंगे। वह जाति न्यारी हो जायगी। जैसे जीव एक जाति है, इसमें कितने जीव आ गए? अनन्त। सिद्ध महाराज भी, निगोदिया जीव भी, अन्य संसारी जीव भी, अरहंत भगवान, सब एक जाति में आ गए, उनमें जरा भी फर्क नहीं। भव्य और अभव्य जीव में फर्क नहीं है। उसकी योग्यता, पर्याय, होनहार, इनका भेद पड़ गया, मगर जीव का जो निज में स्वरूप है उस स्वरूप की दृष्टि से भव्य और अभव्य के भेद न पड़ेंगे। अगर भव्य जीव बिल्कुल अन्य जाति के हों और अभव्य जीव अन्य जाति के हों तो पदार्थ ६ प्रकार के न कहकर ७ प्रकार के कहे जाते। इस जीव में भव्य अभव्य का भी अन्तर नहीं स्वरूप दृष्टि से । चाहे वह कभी मुक्त न जा सके, मगर स्वरूप चेतन है और वह सब में एक समान है। शक्ति, ज्ञान, दर्शन आदिक सब जीवों में एक समान हैं। भव्य में भी उतनी ही शक्तियाँ हैं, अभव्य में भी उतनी ही शक्तियां हैं। फर्क शक्ति की व्यक्ति होने की शक्ति में है याने जिसमें आत्मशक्ति व्यक्त न हो सके उसे अभव्य कहते हैं, जिसमें आत्मशक्ति व्यक्त हो उसे भव्य कहते हैं, मगर शक्तियाँ सबमें एक समान हैं। अगर शक्तियां न होती तो अभव्यजीव के केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण ये कर्म होने की जरूरत भी न थी, क्योंकि केवलज्ञान की शक्ति ही नहीं है अभव्य में तो केवलज्ञानावरण किसलिए? तो अभव्य में भी केवलज्ञान की शक्ति है और उसका आवरण करने वाला केवलज्ञानावरण सदा रहेगा। यह अन्तर तो है, मगर स्वरूप में शक्ति में भेद नहीं है। तो एक जीव जाति है जिसमें अनन्तानन्त जीव आये। पुद्गल जाति याने कुछ पदार्थ ऐसे हैं कि मिलकर एक

पिण्ड बन जाये और बिछुड़ भी जायें। ऐसी कला केवल पुद्गल में ही है। जीव-जीव परस्पर मिल नहीं सकते। धर्म अधर्म कोई भी पदार्थ नहीं मिलते। यहाँ तक कि जीव और पुद्गल भी परस्पर में मिलकर पिण्ड नहीं होते। अगल-अगल ही मिलकर पिण्ड बन जायें और बिखरकर परमाणु एक रह जाय, ऐसी कला जिन पदार्थों में है उनका नाम है पुद्गल। पूरण और गलन—यह प्रकृति जिसमें पायी जाय उसे पुद्गल कहते हैं। पुद्गल जाति में अनन्तानन्त पदार्थ हैं, जीव से भी अनन्तानन्तगुणे पदार्थ हैं, क्योंकि सिद्ध से अनन्त गुणे हैं संसारी जीव और एक-एक संसारी जीव के साथ अनन्त परमाणुओं का शरीर लगा है, कर्म लगे हैं, तो एक जीव के साथ ही अनन्त परमाणु हैं, फिर अनन्तानन्त जीवों के साथ कितने हैं? तो जीवों से अनन्तानन्तगुणे पुद्गल द्रव्य हैं। धर्म द्रव्य एक है उसमें एक यह ही कला है कि जीव पुद्गल चल सकते हैं एक जगह। यह तो एक निमित्तनैमित्तिकयोग की बात है। जैसे पानी हो तो उसमें मछली चल सकती है ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक योग है। तो इस लोक में धर्म द्रव्य एक है, जिसके होने से ये जीव पुद्गल चल सकते हैं। अब अधर्मद्रव्य एक है जिसके होने से चलता हुआ जीव पुद्गल रुक सकता है। कोई भी काम एक हो रहा हो और उसके खिलाफ कोई दूसरा काम हो तो कोई बाह्य निमित्त होता है तब होता है। अगर बाह्य कारण न हों तो जो परिणमन चल रहा वही-वही परिणमन एक समान चलता रहेगा। जीव पुद्गल चलते रहे और चलते हुए में रुक सके तो इसमें भी कोई कारण है । एक साधारण सहयोग, उसे कहते हैं अधर्मद्रव्य। आकाश अमूर्त है और जहाँ सब पदार्थ ठहर सकते हैं। कालद्रव्य लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु अवस्थित है और वह वहीं रहता हुआ समय-समय पर्याय के रूप से परिणमन करता है। जिसे कहते हैं वर्तना। उसी वर्तना का स्थूलरूप मिनट घड़ी घंटा सेकेण्ड आदिक बन जाते हैं। ऐसे लोक में ६ जाति के पदार्थ हैं, उन सब पदार्थों में शक्तियाँ क्या हैं और उनकी अवस्थायें कैसे बनती हैं, यह बात जानने की होती है, क्योंकि पदार्थ में शक्ति और पर्याय ये स्पष्ट समझ में आये तो यह सुगमतया भान रहेगा—एक द्रव्य का दूसरा द्रव्य कुछ भी नहीं लगता। भेदविज्ञान पाने के लिए पदार्थों का स्वरूप जानना अत्यन्त आवश्यक है।

जीव के गुण व पर्यायों की चर्चनीयता—जीव के विषय में इस गाथा में गुण पर्यायों का जिक्र है। जीव के गुण हैं चेतना और उपयोग। ये दो बातें कही गई हैं—चेतना और उपयोग। कहीं दो लक्षण नहीं हैं अलग-अलग कि किसी जीव में चेतना लक्षण हो, किसी जीव में उपयोग लक्षण हो, मगर ये दो बातें बताने का कोई रहस्य है। चेतना का अर्थ है चेतना, अपने आपको चेतना, यह ही एक मात्र दृष्टि है। अब अपने आपको यह जीव अगर सही रूप में चेतता है तो उसे कहते हैं ज्ञान चेतना। अगर कोई जीव अपने आपको किसी बाहरी पदार्थ, बाहरी भाव के कर्तारूप में चेतता है कि मैं इसका करने वाला हूँ तो वह कहलाया कर्म चेतना। कोई जीव कर्मफल के रूप से अपने को चेतता हो—मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं आनन्द भोग रहा हूँ, मैं सुख भोग रहा हूँ, किसी भी प्रकार भोगने की बात अपने आप में लगायें तो वह कर्मफल चेतना है। तो चेतना भेद बताकर तो यह बात दर्शायी गई कि जीव अपने को चेतते हैं। अब कैसे चेतते हैं, इसकी विशेषता पर संसार और मोक्षमार्ग की बात है। अपने को मैं शुद्धज्ञानमात्र हूँ । केवल ज्ञानात्मक जानन हो यह ही तो कर्तापन है। एक जानन रहे, यह ही भोक्तापन है। ज्ञान के इन परिणामों के अतिरिक्त मेरे में और कुछ कर्ताभोक्तापन नहीं है, ऐसी चेतना की दृष्टि से जीव का गुण चेतना कहा है और उपयोग एक बाह्य विस्तार समझने के लिए कि यह जीव क्या-क्या जानता है, कहाँ-कहाँ उपयोग चलता है, फिरता है, यह बाहरी विस्तार समझने के लिए उपयोग गुण बताया गया है। जैसे उपयोग गुण की कितनी ज्ञान पर्यायें हैं? आठ और चार दर्शन पर्यायें हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, ये तो अपूर्ण हैं मगर समीचीन हैं। कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये मिथ्या हैं, फिर भी ये सातों के ही सातों ज्ञान अशुद्ध कहलाते हैं, क्योंकि कर्म का क्षयोपशम साथ है। कर्म का आवरण लगा हुआ है इस ज्ञानी के

साथ, ऐसी दशा में ज्ञान हुए हैं, इस कारण ये ज्ञान अशुद्ध कहलाते हैं । शुद्ध तो एक केवलज्ञान है, क्योंकि कर्म का अभाव हो गया। ज्ञानावरणकर्म रहा नहीं, इस कारण वह ज्ञान तो शुद्धपर्याय है, शुद्ध दशा है, बाकी ७ ज्ञान अशुद्ध हैं। उन अशुद्ध में भी दो भेद पड़ते हैं। अशुद्ध होते हुए भी सही, अशुद्ध लेते हुए मिथ्या, ऐसे ८ प्रकार के जिसके ज्ञान परिणमन हैं उस गुण का नाम है उपयोग । इसी तरह चार दर्शन होते हैं, जिनमें केवलदर्शन तो शुद्ध अवस्था है और चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन ये अशुद्ध अवस्था हैं, क्योंकि इनके साथ आवरण लगे हुए हैं आवरण के क्षयोपशम के अनुसार चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन होता है। इस तरह ये उपयोग के भेद बताये, यह तो हुआ गुण। अब इसका और विस्तार बनाये तो श्रद्धान, चारित्र, आनन्द आदिक अनेक गुण हैं। मगर जीव के जिस गुण की पकड़ से लक्ष्य से जीव की बात चलती है अच्छी बुरी, मोक्षमार्ग चले संसारमार्ग चले वे ये दो गुण हैं—चेतना और उपयोग।

पदार्थों की द्रव्यपर्यायों का दिग्दर्शन—अब देखो जीव में पर्यायें क्या होती हैं? तो जीवद्रव्य में चूंकि जीव प्रदेशवान द्रव्य है, सभी द्रव्य प्रदेशवान होते हैं और गुण भी हैं तो गुणों के जो परिणमन होंगे उनका नाम तो है गुणपर्याय और जो प्रदेश में परिणमन होगा उसका नाम है द्रव्यपर्याय। देव, नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य ये द्रव्यपर्याय है। इनमें प्रदेशों के प्रसार की शकल बन जाती है। जैसा देह पाया उसी आकार के जीव के प्रदेश बने। तो यह कहलायी द्रव्यपर्याय, और जो गुण हैं ज्ञानादिक, उनकी अवस्था को गुणपर्याय कहते हैं। तो जीव की पर्याय जानने में जो प्रतिपादन हैं वे दो तीन तरह से पाये जाते हैं, मगर उनमें लक्ष्य एक है, समझ एक है। एक पद्धति यह है कि यह जानें कि जीव में पर्यायें दो तरह की होती हैं—(१) द्रव्यपर्याय और (२) गुणपर्याय। मायने जीव के प्रदेश का आकार बने, वह तो है द्रव्यपर्याय। अगर केवल जीवद्रव्य के ही आकार देखे जा रहे और विशुद्ध एक लक्ष्य से देखे जा रहे तो उसे कहेंगे शुद्ध द्रव्यपर्याय। वे हैं सिद्ध भगवान। और जीव पुद्गल के मेल से जो पर्याय बनती है वह है अशुद्धपर्याय—देव, नारक आदिक। तो चार गतियों की जो पर्यायें हैं वे विभाव द्रव्य पर्याय कहलाती हैं, यह द्रव्य पर्यायों का भेद हुआ। द्रव्यपर्याय वही है, अनेक द्रव्यों के मेल से जो परिणमन बने, आकार बने उसे कहते हैं द्रव्य पर्याय याने अनेक पदार्थों में एक है, ऐसी जानकारी का जो विषयभूत है वह द्रव्यपर्याय है। जैसे पशु, मनुष्य, काठ, इनको देखकर कोई एक ही बात तो समझी जाती है और चेष्टा से जहाँ शरीर जाय वहाँ जीव जाय, जहाँ जीव जाय वहाँ शरीर जाय, तो ऐसे अनेक द्रव्यों में एकता की प्रतिपत्ति का जो कारण है, अनेकों में एक प्रतिपत्ति बनने में जो बात बनती है वह है द्रव्यपर्याय। सो अनेक द्रव्यों की मिलकर जो बात बनती है वह तो है अशुद्धपर्याय और एक ही द्रव्य का जो आकार रहता है वह है शुद्ध द्रव्यपर्याय। तो ऐसी जो ये द्रव्यपर्यायें हैं, अनेक पदार्थ मिलकर बन जायें तो ऐसे अनेक पदार्थ एक ही जाति के हैं तो उनका नाम है समानजातीय द्रव्यपर्याय। जैसे जितने पुद्गलस्कंध दिखते हैं ये सब समानजातीय द्रव्यपर्याय हैं याने अचेतन पुद्गल परमाणु मिल-मिलकर यह पिण्ड बना। समानजातीय द्रव्यपर्याय केवल पुद्गलों को होगा। और असमानजातीय द्रव्यपर्याय ये जीव के होते हैं, याने जीव और पुद्गल परमाणु शरीर के अणु, कर्म के अणु, इन सबके बन्धन में जो एक दशा बनती है वह है असमानजातीय द्रव्यपर्याय। तो समानजातीय द्रव्यपर्याय होना और असमानजातीय द्रव्यपर्याय होना, यह सब अशुद्ध द्रव्यपर्याय कहलाती है, क्योंकि अनेक के मेल से बना, मायारूप है, बिखर जायगा। स्वभाव की बात नहीं है, इसलिए इसे अशुद्ध पर्याय कहा गया।

पर्यायों के यथार्थ परिचय का महत्त्व—पर्यायों के सही परिचय से यह बात सामने आ जाती कि यह पुत्र है या घर का कोई है तो यह है क्या? समानजातीय द्रव्यपर्याय है। हम से इसका क्या मतलब? बहुत से परमाणु मिल गए व यह जीव है, इसका कर्म इसके साथ है, यह असमानजातीय पिण्ड है, मेरे से

उसका कोई ताल्लुक नहीं है। केवल मोह में कल्पना से मानते। दूसरे का लड़का हो वह क्या कोई और तरह से बना हुआ है? अरे जैसे आपका यह लड़का बना है अनेक द्रव्यों के मेल से ऐसे ही दुनियाभर के बच्चे, वे भी अनेक द्रव्यों के मेल से बने हैं। जरा भी फर्क नहीं है कि यह तो आपका कहलाये और यह गैर कहलाये। स्वरूप की ओर से किसी भी जीव में, बच्चे में कोई भेद की बात न आनी चाहिए। और भेद आता है तो वह सब मोह और राग का परिणाम है। स्व पर का पर में भेद है नहीं, सब जुदे-जुदे हैं। तो समानजातीय अनेक द्रव्यपर्यायों के जान लेने से यह स्पष्ट विचार रहता है कि मेरा क्या मतलब इससे? भिन्न वस्तु है, केवल एक गृहस्थी में गुजारा करने के लिए ही परस्पर में राग है, पर एक का दूसरा कुछ नहीं है। समानजातीय द्रव्यपर्याय, देखिये ये सब भीत हैं, सोना है, चाँदी है, वैभव है, उसके प्रति एक ममता जगती है, वह वैभव है क्या? अनेक परमाणुओं का पिण्ड है। जब तक इकट्ठा है, बिखर रहा तो बिखर रहा, वह कोई सारभूत तो नहीं है। मकान हो, जेवर हो, कोई भी वस्तु हो वह सारभूत चीज नहीं है, मायारूप चीज है, अनेक परमाणुओं के मेल से बना है, सो जब तक मिला हुआ है सो मिला है, बिखर गया तो बिखर गया। इन सब पर्यायों के बोध से ममत्व के विनाश का उपाय बनता है। तो ये अनेक द्रव्यपर्याय जीव पुद्गल में ही सम्भव हैं, अन्य द्रव्य में नहीं, क्योंकि सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं एक तो संश्लेष सम्बन्ध और एक-एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध। तो सम्बन्ध तो हमारा सभी द्रव्यों से है। जहाँ जीव है वहाँ ही पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदिक सभी पदार्थ हैं। तो सम्बन्ध है ना, मगर इन सम्बन्धों से कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सब अपने-अपने में अपने अनुसार परिणम रहे हैं। संश्लेष सम्बंध का इससे निकट सम्बंध है, जैसे जीव का कर्म, जीव का शरीर। सो जीव का धर्म, अधर्म, आकाश, काल किसी के साथ भी संश्लेष सम्बन्ध नहीं है और द्रव्यपर्याय बनती है तो संश्लेष सम्बन्ध में बनती है, केवल क्षेत्रावगाह के सम्बन्ध से भी नहीं बनती। इस कारण धर्मादिक द्रव्यों में द्रव्यपर्याय नहीं होती। यह तो द्रव्यपर्यायों की चर्चा हुई।

जीव के गुणपर्यायों का दिग्दर्शन और उसके परिचय का लाभ—अब गुणपर्याय देखिये तो गुणपर्याय समझने की कुञ्जी यह है कि एक ही द्रव्य का परिणमन जहाँ देखा जा रहा है वह गुणपर्याय है। भले ही कषायादिक भी तो गुणपर्याय हैं और वे कर्म अनुभाव का निमित्त पाकर होते हैं, सो भले ही कितने ही निमित्त हों, पर परिणमा तो केवल जीव ही कषायरूप। इस कारण से वह गुणपर्याय कहलाता है। एक ही द्रव्य में जो पर्याय बनती है दूसरे द्रव्य की मिलकर नहीं बनती परिणति, वह सब गुणपर्याय कहलाती है या यों कहो कि अन्य-अन्यरूप जो परिणति है, उनमें जो एकत्व को किए हुए हो वह गुण है और उसकी ये पर्यायें गुणपर्याय कहलाती हैं। जैसे पुद्गल में देखो किसी भी फल में रूप, रस, गंध, स्पर्श बदलते भी रहते हैं तो यह परिणमन जीव में देखो तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञानादिक के परिणमन चलते हैं। ये गुणपर्यायें कहलाती हैं। अब गुणपर्यायों को दो रूप में देखिये—(१) स्वभावगुणपर्याय (२) विभावगुणपर्याय। और एक होता है सूक्ष्मगुणपर्याय तो सूक्ष्मगुणपर्याय तो अवक्तव्य है जिसे शुद्ध अर्थपर्याय कहते हैं। मायने एक परिणमन के बाद उसमें जो दूसरा परिणमन आता है तो वह षड्गुणहानिवृद्धिरूप लिए आता है और यह अवक्तव्य है, आगमगम्य है। सूक्ष्म बताया गया और अन्य गुणपर्याय दो प्रकार से हैं—(१) स्वभावगुणपर्याय, (२) विभावगुणपर्याय। केवलज्ञानादिक स्वभाव गुणपर्याय हैं और लेश्या आदिक विभावगुणपर्याय हैं और इन पर्यायों का बहुत अच्छा व्यापक प्रचार करना है तो यों करना चाहिए कि पदार्थ में दो प्रकार की पर्यायें हैं—(1) व्यञ्जनपर्याय और (2) अर्थपर्याय। अर्थपर्याय तो सूक्ष्म है । षड्गुणहानिवृद्धिरूप अवक्तव्य जो एक आधार मात्र है, न हो षड्गुणहानिवृद्धिरूप परिणति तो स्थूल परिणति कहां से हो? इसलिए स्थूल परिणमनों का वह सूक्ष्म षड्गुणहानिवृद्धि एक आधार है और सर्वद्रव्यों में साधारण है। और व्यञ्जनपर्याय के दो भेद

हैं—(१) द्रव्यव्यञ्जनपर्याय और (२) गुणव्यञ्जनपर्याय। द्रव्यव्यञ्जनपर्याय तो आकार का नाम है। जो-जो कुछ आकार की पर्याय कही थी वह सब द्रव्यव्यञ्जनपर्याय में आता है और आकार को छोड़कर शेष जो पर्यायें हैं वे सब गुणपर्याय कहलाती हैं। तो जीव में गुणपर्याय जो कुछ भी हो रही है उसका सम्बन्ध जीव से है, अन्य से नहीं है। तो एक पदार्थ का दूसरा पदार्थ कुछ भी नहीं है—यह बात समझने के लिए प्रत्येक पदार्थ का गुण और पर्याय ठीक समझना चाहिए। जिससे यह बोध हो कि किसी पदार्थ का किसी अन्य पदार्थ के साथ न तो गुण का सम्बन्ध है, न पर्याय का सम्बन्ध है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में न गुण को रखता है, न पर्याय को रखता है, ऐसी दृष्टि स्पष्ट हो जाती है तो वहाँ ममता को अवकाश नहीं रहता। ममत्व न रहे, इसी में जीव का कल्याण है।

गाथा १७

मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो।।१७।।

पर्यायरूप से उत्पादव्यय होने पर भी जीवत्व का अनुत्पाद व अव्यय—पूर्वोक्त गाथा में जीव की गुणपर्यायों का वर्णन था। अब पर्यायों का उत्पादव्यय होता है और गुण ध्रुव रहता है । उसी विषय से सम्बंधित बात इस गाथा में कही गई है कि यह जीव पर्यायरूप से नष्ट होता है और नवीन पर्यायरूप से उत्पन्न होता है। फिर भी जीवरूप से न नष्ट होता है, न उत्पन्न होता है, वह तो शाश्वत अनादि अनंत है। पर्यायों की जो संतति चलती है धारा, एक पर्याय के बाद दूसरी पर्याय होना और इस तरह पर्याय होते चले जाना, इस पर्याय संतति का कभी विच्छेद नहीं होता, क्योंकि द्रव्य का स्वरूप ही यह है कि वह प्रतिसमय परिणमन रहे और एक परिणमन से दूसरा परिणमन होने में अगुरुलघुत्वगुण की हानि वृद्धिरूप परिणाम होता है। तो प्रतिसमय जो अगुरुलघुत्वगुण की हानि वृद्धि चलती रहती हो उससे रचा गया जो स्वभाव पर्याय है उसकी संतति का विच्छेद नहीं होता। सो यह तो वस्तु का स्वरूप है कि इसमें पर्याय संतति चलती ही रहे। अब उनकी उपाधि साथ में है तो सोपाधि पर्याय बन उठती है। तो सोपाधि पर्याय जैसे मनुष्य है, मनुष्यत्व के रूप से यह जीव विनष्ट हो जाता है और सोपाधि पर्याय ही एक नवीन बनती है तो उस नवीन पर्यायरूप से उत्पन्न हो जाता है, पर पर्यायरूप में मनुष्यत्वादिरूप में नष्ट हो गया, इससे कहीं जीवत्व नष्ट नहीं हो जाता या देवादिक रूप से उत्पन्न हो गया तो इससे कहीं जीव ही नहीं उत्पन्न हुआ, वह तो अनादि से ही है। इस तरह जीव में उत्पादव्ययध्रौव्य यह द्रव्यपर्यायों में और गुणपर्यायों में घटित होता जा रहा है। सो इस जीव का विनाश उत्पाद पर्यायार्थिकनय से है। द्रव्यार्थिकनय से न उत्पाद है, न विनाश है। पर्यायार्थिकनय से उत्पादव्यय चल रहा है, तिस पर भी द्रव्यार्थिकनय से देखने, पर उत्पादव्यय नहीं है, किन्तु वह तो वही ही शाश्वत है। यहाँ दोनों नयों की दृष्टियों का विषय बताने से नित्य एकान्त और क्षणिक एकान्त का निराकरण स्वयमेव हो जाता है। मनुष्य, देव आदिकरूप से उत्पन्न हुआ, पूर्वपर्याय से नष्ट हुआ तो यह ही यह सिद्ध करता है कि द्रव्य सर्वथा याने एकान्त नित्य नहीं है और जीव, जीवत्व वही रहता है। इससे यह सिद्ध होता कि क्षणिक एकान्त नहीं है। तो यह द्रव्यत्व के नाते से व्यवस्था है, ऐसी ही व्यवस्था समस्त द्रव्यों की है कि वह नवीन पर्याय से उत्पन्न हुआ और पूर्वपर्याय से नष्ट हुआ और उसमें संतति का विच्छेद नहीं है, उसका आधारभूत द्रव्य सदा रहता है। यह ही बात जीव में भी समझना है कि वह मनुष्यादिकरूप से नष्ट हुआ, मगर जीवादिक से नष्ट नहीं हुआ।

गाथा १८

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।
उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मरणुसुत्ति पज्जाओ।।१८।।

जीववस्तु की उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकता का एक प्रकाश—द्रव्य और जीव उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त हैं, इसी के समर्थन में यह गाथा बतायी जा रही है। जो द्रव्य पूर्वपर्याय के वियोग से एक अवस्था बनाता है और उत्तरपर्याय के संयोग से अवस्था बनती है तो दोनों ही अवस्थाओं को यह आत्मा अपने रूप करता हुआ तो नष्ट और उत्पन्न होता दिखाई देता है, पर दोनों अवस्थाओं में रहने वाला जो एक तत्त्व है जीवत्व, वह न उत्पन्न होता, न नष्ट होता है। अतएव पर्यायों के साथ इस जीवद्रव्य का स्वपना हो रहा है। सो कह लीजिए कि जन्म है और मरण है, पर जीवद्रव्य तो वही एक है। उसका न जन्म है, न मरण। जैसे कोई मनुष्य पुराने घर को त्याग करना ये घर में रहने लगे तो उसका मरण नहीं कहा जाता। किसी का भी मरण नहीं है। घर है, अपने में है। स्थान है अपने में है। यहाँ एक शंका की जा सकती है कि उत्पादव्ययध्रौव्य तीनों एक साथ कैसे एक पदार्थ में रहते हैं क्योंकि उत्पादव्यय तो अनित्यपने का धर्म है और ध्रौव्य होना नित्यपने का धर्म है। तो अगर नित्य है तो अनित्य कैसे और अनित्य है तो नित्य कैसे? जैसे ठंड और गर्मी इन दोनों का विरोध है, तो जहाँ ठंड है वहाँ गर्मी कैसे, जहाँ गर्मी है वहाँ ठंड कैसे? इस शंका का समाधान यह है कि कोई भी पदार्थ एकान्त से न नित्य है और एकान्त से न अनित्य है । जो एकान्तत: नित्य अथवा अनित्य माने वहाँ ही दोष सम्भव है, किन्तु यहाँ नित्यपना अनित्यपना अपेक्षा से है याने मूलतत्त्व की दृष्टि से तो पदार्थ नित्य है और अवस्था की दृष्टि से पदार्थ अनित्य है। तो जहाँ अपेक्षा से नित्य और अनित्य माना जाय वहाँ यह दोष सम्भव नहीं है। जिस अपेक्षा से नित्य माना उसी अपेक्षा से अनित्य कहा जाता तो अवश्य ही विरोध की बात थी, या जिस अपेक्षा से अनित्य माना उसी अपेक्षा से नित्य मान ले तो विरोध है, परन्तु द्रव्यार्थिकनय से द्रव्यपने की अपेक्षा तो नित्यपना है और पर्यायार्थिकनय से पर्याय की अपेक्षा से पदार्थ में अनित्यपना है और वे दोनों एक साथ घटित होते हैं। तब मूल में यह बात युक्त है कि द्रव्य और पर्याय दोनों रूप ही सत् होता है। यदि कोई कुछ है तो वह सदाकाल रहेगा और उसकी अवस्था प्रतिसमय बनती रहेगी। द्रव्य और पर्याय ये दो तत्त्व अनिवार्य हैं पदार्थ में । तो जब द्रव्य और पर्याय का विरोध नहीं है तो नित्य अनित्य का भी विरोध उसमें सम्भव नहीं है, क्योंकि पर्याय रहित द्रव्य नहीं होता और द्रव्य रहित पर्याय नहीं होता। याने है क्या कोई वस्तु ऐसी कि जिसकी अवस्था कुछ होती ही नहीं और वह सत् हो? या है कोई क्या ऐसी वस्तु कि जिसमें पहले और बाद की अवस्थायें न पायी जाती हों और सत् हो। तो पर्यायमात्र भी कुछ नहीं और जो द्रव्यरूप हो ही नहीं, केवल एक पर्यायरूप ही हो, ऐसा भी कुछ है नहीं, क्योंकि जो किसी रूप में भी पहले नहीं है, उसका कोई रूप नहीं बनाया जा सकता। असत् का उत्पाद नहीं और सत् का विनाश नहीं। इस कारण द्रव्यार्थिकनय को जब मुख्य करके बोलते हैं तो जीव नित्य प्रतीत होता है और जब पर्यायार्थिकनय को मुख्य करके कहते हैं तो पदार्थ अनित्य प्रतीत होता है। पदार्थ में प्रतिसमय नवीन-नवीन पर्यायें होती रहती हैं। बस नवीन पर्याय हुई उसही का अर्थ यह है कि पुरानी पर्याय विलीन हो जाती है। इस तरह वस्तु कथञ्चित् नित्य और कथञ्चित् अनित्य स्वरूप है।

गाथा १९

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो।
तावदिओ जीवाणं देवो मणुसो त्ति गदिणामो।।१९।।

उत्पादव्यय होने पर भी जीववस्तु की शाश्वत एकरूपता—जीव सत् है उसका कभी विनाश नहीं होता, और जो पर्यायें नजर आती हैं, पर्यायोंरूप से जीव का होना देखा जाता है तो उसमें कहीं असत् पदार्थ का उत्पाद नहीं होता। यदि वास्तव में जीव मरता हो तो यह कहा जाय कि सत् का नाश हो गया या जीव जन्म लेता हो याने पहले कुछ नहीं है और जब जीव पदार्थ बन गया तो कह सकते कि असत् का उत्पाद हो गया, लेकिन स्थूलदृष्टि से भी देखो तो जो जीव मरता है वही तो जन्म लेता है । विनाश

कैसे होगा? और जो जीव जन्म लेता है वही तो मरता है, तो इसमें सत् का विनाश और उत्पाद नहीं है, किन्तु उसही सत् की ये अवस्थायें बतायी जाती हैं, और चूंकि अवस्था होने का ही नाम उत्पादव्यय है, उसही समय में नवीनपर्याय की दृष्टि से उत्पाद है और पुरानी पर्याय के रूप से विनाश है। जीव का न उत्पाद है, जीव का न विनाश है, ऐसी बात समझने से यह एक साहस जगता है कि मैं जीव तो सदा रहने वाला पदार्थ हूँ । मेरा न नाश है, न जन्म है, और पर्यायरूप से मैं उत्पन्न और नष्ट होता हूँ । तो जो अब तक अज्ञान की पर्याय मिलती आयी उसका विनाश हो सकता है और जो शान्ति, निर्मलता, पवित्रता अब तक नहीं उत्पन्न हुई है उसकी उत्पत्ति हो सकती है, ऐसा आत्मकल्याण के सम्मुख जीव अपने आपको हित के मार्ग में प्रेरित कर लेता है। जीव में मनुष्यपना और देवपना आदिक क्यों होते हैं? तो यह जीव जैसे भाव करता है उस भाव के अनुसार कर्म बन जाते हैं। कर्म यद्यपि अपने आप में ही हैं और वे अपनी ही सत्ता बनाते हैं तो उन कर्मों का जब उदय होता तो जैसे-जैसे गति नामकर्म का उदय हुआ वैसे ही उनको फल मिलने लगता है। तो देव और मनुष्य पर्यायों को रचने वाला देव गति नामकर्म, मनुष्य गति नामकर्म होता है और वह जब तक उदय में रहता है तब तक उस भव में मनुष्य आयु समाप्त होने पर वह उस भव में नहीं रहता। तो जिनको अपने इस शरीर में अज्ञान नहीं है, भेद प्रकाश है तो वह अन्त: अपने को पर्यायरूप नहीं अनुभव करते, इसीलिए उनके आगामी शरीर परम्परा मिलें, ऐसे कर्म नहीं बंधते। जीव तो अमर्यादित है, तीनों काल रहने वाला है। एक जीव द्रव्य है और उसमें पर्याय और गुण दोनों भाव बने रहते है। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से तो इसकी सत्ता है, दूसरे के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से इसकी सत्ता नहीं है। तो इन पर्यायों में अटककर, इन पर्यायों में व्यापकर रहने वाला जो एक त्रैकालिक भाव है, चैतन्य स्वरूप है उसमें ही यह मैं हूं ऐसा अनुभव हो तो उसका संसार मार्ग छूटता है। अपना सारा भविष्य अपने इस ही निर्णय पर आधारित है कि मैं क्या हूँ, इसका जो उत्तर होगा उसही रूप इसका परिणाम बनेगा। तो अपने चैतन्यस्वरूप को भूलकर जो शरीर में यह मैं हूँ, ऐसा अनुभव बनता, यह घोर अंधकार है और इस अंधेरे में रहने वाला जीव अपने आपको विपत्ति से नहीं बचा सकता। ऐसा यह जीव जीवद्रव्य से शाश्वत अपने आप में ही विहार करने वाला है। जो इस शाश्वतस्वरूप की ओर अपनी धुन लगाये है तो वह नियमत: संसार संकटों से छूटकर उत्तम निर्वाण सुख में पहुंच सकता है। इस तरह इस जीवद्रव्य का शाश्वतपना इन गाथाओं में बताया गया है—पर्यायरूप से उत्पन्न विनष्ट होकर यह जीव वस्तु न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है, किन्तु वह शाश्वत एकरूप है।

गाथा २०

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा।
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो।।२०।।

ज्ञानावरणादिककर्म के क्षय से जीव की अभूतपूर्व सिद्धदशा—ज्ञानावरणादिक कर्म के द्वारा यह खूब अवरुद्ध हुआ है, उन कर्मों का अभाव करके जीव सिद्ध बनता है जो अभूतपूर्व बात है। सिद्ध होना अभूतपूर्व बात है याने जो कभी हुआ नहीं और हो गया और उस अभूतपूर्व की बहुत बड़ी महिमा है कि हो जाने के बाद फिर कभी वह मिटे नहीं। तो यहाँ यह संसारी जीव अज्ञान भार से लदा है। इसका परिचय ऐसे दृष्टान्त से करिये कि जैसे कोई बाँस किसी ढंग से रंगा है जहाँ चित्र-विचित्र नाना फोटो भी रचे गए हैं, कुछ भाग अचित्रित है। आवरण से अब वह समूचा ढका है, तो जितने अंश में उसका आवरण दूर हुआ, उससे कुछ जाना तो सही कि आत्मस्वभाव दृष्टि से निर्मल है, लेकिन जो थोड़ा बहुत चित्र-विचित्र रंग देखो तो वहाँ यह बोध होता है कि चाहे यह रंगा हुआ हिस्सा हो, चाहे बिना रंगा, दोनों में वही एक बांस है। इसी तरह जीव की पर्याय मलिन चल रही है, मगर यह मलिनता तो दम भर के नहीं है, क्योंकि यह केवल एकत्वगत जीव के मलिनता नहीं बनती। बाहरी पदार्थों के अनुकूल संयोग हो तो

इनकी ऐसी स्थितियाँ बना करती हैं। तो उस समय ज्ञानावरणादिक अनुभाग का उदय हो तो भाव कर्म स्वयं हो जाता है। उन कर्मों में बंध से पहले ही ८ प्रकार का भेद पड़ा हुआ था योग्यता रूप में । तब ही तो जब जीव कषाय करता है तो कहते हैं कि कितना अधिक अनुभाग बँधा, किस किसका कर्म, सो बँधते समय उन कर्मों में यह भेद पड़ जाता है। बस जैसा उन कर्मों का उदय है वैसा ही तो जीव का तिरस्कार है। इन आपत्तियों को जो मेटे वह ही अभूतपूर्व सिद्ध होता है । भीतर में एक जीवद्रव्य के स्वरूप को निरखकर चिन्तन किया जाय तो चूंकि वह स्वयं का ही रूप है और स्वयं ही चिन्तन करने वाला है और स्वयं उसही परिणति द्वारा चिन्तन होता है तो वहाँ इस जीव द्रव्य को अपने लिए सर्वस्व एकाकी दृष्टिगत होगा। उस एक समयसार कारण परमात्मतत्त्व इसका आलंबन होने से पूर्व बँधे हुए कर्म खिरते हैं और नवीन कर्म जो आ सकते थे उन सब कर्मों का बंध रुक जाता है। तो यहाँ त्रैकालिक जीवद्रव्य को अपनी दृष्टि में रखने से कल्याण का मार्ग चलता है।

गाथा २१

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च।
गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो।।२१।।

जीव के भावभाव, अभावाभाव, भावाभाव, अभावभाव आदि का एक संक्षिप्त दिग्दर्शन—यहाँ तक द्रव्य का सामान्य वर्णन चल रहा है। उसमें जीवद्रव्य के बारे में यह सब घटित करो। अभिप्राय से यहाँ उसका तथ्य बताया जा रहा। इस जीवद्रव्य का भाव का अभाव, अभाव का भाव बना, भाव का भाव, अभाव का अभाव रहा—ये चार बातें सभी द्रव्यों में हैं, सो जीवद्रव्य में भी हैं, सो किस तरह से? चूंकि जीवद्रव्य नित्य है और वह जीवरूप से होता रहता है, इस कारण भाव ही भाव, सद्भाव ही सद्भाव रहा और उसी जीव का देव, मनुष्य आदिक पर्यायरूप से उत्पाद होता हो और उसही जीव का मनुष्यादिक पर्यायरूप से व्यय होता हो तो वहाँ जीव के भाव का अभाव व अभाव का भाव होगा। जीव क्या-क्या करता है? भाव का भाव करता, मायने जीवत्वभाव है और उस जीवत्वभाव को बनाये रहता है। अभाव का करने वाला है याने पररूप से जीव असत् है, सो ऐसी बात वह निरन्तर बनाये हुए है। तीन काल में भी कोई पदार्थ कितना ही छोटा हो, कितना ही बड़ा हो, वह अपना अस्तित्व नहीं मिटाने का । तो इस तरह यह बात निर्दोष हुई कि प्रत्येक वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक होता क्या पूरे गुण की भी कथा छोड़ दें तो वह द्रव्य से ही अन्तर्भूत हो जाता है, मगर द्रव्य और पर्याय ये दो बातें प्रत्येक वस्तु में माननी पड़ती हैं। है ही ऐसा। तो जितना यह व्याख्यान चल रहा है वह द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय—इन दोनों में मुख्य और गौण की विधि से चल रहा है। सो जब इस जीव को पर्याय की गौणता से बताया जाता है तो सहज ही वह बात सिद्ध हुई कि उसमें द्रव्य की मुख्यता विवक्षित है। तो इस विवक्षा में न जीव का उत्पाद है और न जीव का विनाश है। जब पर्याय की मुख्यता से जीव का वर्णन किया जाता है तो नवीन पर्याय को उत्पन्न किया, यह बात आती है। तो पर्यायदृष्टि में तो उत्पादव्यय है, द्रव्यदृष्टि से उत्पादव्यय नहीं है। यह सब एक स्याद्वाद में प्रसिद्ध है कि जो वस्तु का पूर्णरूप से परिचय करा दिया जाता है और उन सब धर्मों के परिज्ञान करने में कहीं भी कुछ विरोध नहीं आता है।

[गाथा २६ तक के प्रवचन सहारनपुर में प्रेस वाले ने गुमा दिये हैं।]

।।पंचास्तिकाय प्रवचन प्रथम भाग समाप्त।।